

आधुनिक हिन्दी कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन

**AADHUNIK HINDI KAHANI KA
SAMAJSASTRIY ADHYAYAN**

Thesis

Submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

Hindi

Under the Faculty of Humanities

By

बीना पी.जे.

BEENA P.J.

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

OCTOBER 2009



**DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022, KERALA, INDIA**

Prof. (Dr.) A. ARAVINDAKSHAN
Dean, Faculty of Humanities
Cochin University of Science and Technology

Phone: (Off) 0484-2575954
(Res) 0484-2424004
Mobile: 9447667313

Certificate

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled “**Aadhunik Hindi Kahani Ka Samajsastriy Adhyayan**” is an authentic record of research work carried out by Smt. Beena P.J. under my supervision at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, in partial fulfillment of the requirements for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in Hindi and that no part thereof has been included for the award of any other degree.

Dr. A. Aravindakshan
Professor
Supervising Guide

Place :
Date :

Declaration

I hereby declare that the thesis entitled “**Aadhunik Hindi Kahani Ka Samajsastriy Adhyayan**” is the bonafide report of the original work carried out by me under the supervision of Dr. A. Aravindakshan at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and no part there of has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

Place :

BEENA P.J.

Date :

भूमिका

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय है "आधुनिक हिंदी कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन"। शीर्षक में प्रयुक्त "आधुनिक" शब्द पर विचार करना आवश्यक लगता है। सन् पचास के बाद की कहानियों के लिए हिंदी में प्रचलित और स्वीकृत शब्द है "नई कहानी"। नई कहानी शब्द के बदले में "आधुनिक कहानी" शब्द को स्वीकार किया है, इसके पीछे कुछ कारण हैं— प्रस्तुत शोध प्रबंध के विषय का जोर समाजशास्त्रीय अध्ययन पर है। किसी भी भारतीय भाषा की कहानी का समाजशास्त्रीय संदर्भ में विश्लेषण करते समय हमें भारतीय परिवेश को समेटना पड़ता है। सन् पचास के बाद भारतीय भाषाओं की कहानियों को लेकर प्रयुक्त शब्द है आधुनिक कहानी। हिंदी कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करते समय हमें अक्सर हिंदी से बाहर आना पड़ता है। अतः मुझे लगा कि "आधुनिक कहानी" शब्द "नई कहानी" की तुलना में अधिक प्रासंगिक है।

समाजशास्त्र साहित्य से भिन्न और स्वतंत्र अनुशासन है। दरअसल, सामाजिक संबंधों तथा गतिविधियों का अध्ययन करनेवाले विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का विकास हुआ है। समाजशास्त्र का इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, नृतत्वशास्त्र, मनोविज्ञान आदि अन्य सामाजिक विज्ञानों से गहरा संबंध है। जिस तरह ये सारे सामाजिक विज्ञान समाज के अलग अलग

व्यवहारों का अध्ययन करते हैं, वैसे ही समाजशास्त्र समाज की विभिन्न स्थितियों और समस्याओं के अध्ययन में सहायक है। समाजशास्त्री समाज की स्थिति का पूरा जायजा लेता है और सामाजिक परिवर्तन के मापदण्ड से विभिन्न घटकों का विश्लेषण करता है। विश्लेषण के अलग अलग तरीके होते हैं। समाजशास्त्री अक्सर सांख्यिकी का सहारा लेता है। एक विशेष प्रवृत्ति को गहराई से विश्लेषित करने के लिए यह आवश्यक है। समाज की मूल मानसिकता तक पहुँचने के लिए सांख्यिकीय विश्लेषण याने statistical analysis अनिवार्य है। Case studies के आधार पर भी समाजशास्त्री सामाजिक उन्मुखताओं- -social attitudes – का तथा सामाजिक समस्याओं – social problems- - का अध्ययन करता है। इस तरह समाजशास्त्र की, स्वतंत्र अनुशासन के रूप में, कई प्रवृत्तियाँ हैं।

साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य की समीक्षा के लिए एक अपरिहार्य आयाम है। वह समाजशास्त्र की एक शाखा मात्र नहीं, बल्कि अपने आप में पूर्ण अनुशासन है। समाजशास्त्रीय अध्ययन से गुजरते समय हमें उस विवेच्य समाज का पूरा नक्शा मिल जाता है जो कहानी में संकेतित है। उसकी गतिविधियों से हमारा परिचय हो जाता है। कई अनावृत तथ्यों पर प्रकाश पडता भी है। साहित्य जब समाजशास्त्र का सहारा लेकर अध्ययन प्रस्तुत करता है तो उसका लक्ष्य सपाट सामाजिकता का सामान्य अंकन नहीं है, अपितु गहन सामाजिकता की गंभीर स्थितियों का आकलन करना है। आधुनिक युग में हिंदी साहित्य जगत में एक नये अध्ययन शास्त्र के रूप में समाजशास्त्र का विकास हुआ है। बच्चन सिंह, डॉ.नगेन्द्र, मैनेजर पाण्डेय,

विश्वम्भर दयाल गुप्ता, डॉ.रघुवीर सिन्हा, रमेश उपाध्याय आदि हिंदी के जाने-माने विद्वानों ने इस अध्ययन विधि को समृद्ध किया है और उसे आगे बढ़ाया है।

कहानी के आस्वादन के संदर्भ में सामान्यतः किसी बहिरंग अनुशासन की सहायता की आवश्यकता नहीं है। किसी अवलंब के बिना भी आस्वादन होता है। उसे हम आत्मनिष्ठ आस्वादन कह सकते हैं। कहानी के आस्वादन और अध्ययन जब व्यक्ति के अलावा वस्तुनिष्ठ स्तर पर होते हैं तो उसके लिए अन्यान्य अनुशासनों का सहारा लेना इसलिए उचित है कि हम एक रचना को सामाजिक उद्पाद्य के रूप में देखते हैं। यह बात सर्वविदित है कि रचना के बाद कृति का संबंध रचनाकार से कम है और समाज से अधिक है। अर्थात् रचना के बाद कृति समाज की संपत्ति हो जाती है। अतः इस संदर्भ में यह व्यक्त करना आवश्यक है कि समाजशास्त्र की दृष्टि से कहानी को परखते समय कहानी की वस्तुनिष्ठता के बहुलार्थी संदर्भ ही विवृत होते हैं।

यह शोध प्रबंध पाँच अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय है "पूर्व आधुनिक युगीन हिंदी कहानी में समाज का स्वरूप"। इस अध्याय के आरंभ में प्रेमचंद के पूर्व की कहानियों का थोड़ा उल्लेख किया गया है। इस अध्याय के केन्द्र में प्रेमचंद की कहानियों का विश्लेषण है। प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियों में हल्कापन दिखाई देता है। लेकिन उनकी कहानियों की प्रगति का ग्राफ अपनी ऊँचाई की ओर ही दिखाई देता है। इसका प्रमुख कारण प्रेमचंद की कहानियों की गंभीर सामाजिकता है। उन्होंने अपने आदर्श को प्रतिष्ठित करने के लिए जो कहानियाँ लिखीं, उनका समाज भी हल्का-पुल्का नहीं है।

गंभीर कहानियों के बारे में यहाँ विस्तारपूर्वक उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इस अध्याय में प्रेमचंद से लेकर जयशंकर प्रसाद, कौशिक, सुदर्शन आदि से होते हुए, प्रेमचंदोत्तर युग के यशपाल, अज्ञेय, उपेन्द्र नाथ आशक, रांगेय राघव आदि कहानीकारों की कहानियों में उपलब्ध समाज विश्लेषण का विषय बना है। इस विश्लेषण के अन्तर्गत कहानियाँ समाज के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित हुई हैं।

दूसरा अध्याय है "आधुनिक हिंदी कहानी का प्रवृत्तिगत अध्ययन"। इस अध्याय की विश्लेषण-विधि दो तरह से संपन्न हुई है। कहानी की प्रवृत्तियों का विश्लेषण समाजशास्त्रीय प्रकरण में देखने-परखने का प्रयास और रूपबंध संबंधी प्रवृत्तियों के समाजशास्त्रीय पक्षों का उल्लेख। आधुनिक कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों में सामाजिक अंतर्विरोध और आम जीवन प्रमुख हैं। हर युग में सामाजिक अंतर्विरोध दिखाई पड़ते हैं। इस प्रवृत्ति के अनुरूप लिखी गई असंख्य कहानियाँ इस दौर में मिलती हैं। व्यक्ति-संबंध के विघटन और पारिवारिक मूल्य-विघटन के प्रकरण में लिखी गई इन कहानियों में अन्तर्विरोध-जन्य मूल्य विघटन विषय वस्तु के रूप में विन्यसित हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए इस विषय को लेते समय यह एक विधा-विशेष की प्रवृत्ति ही नहीं बल्कि वह हमारे समाज के अवांछित विकास को दर्शानेवाला गंभीर विषय है। रूपबंध संबंधी प्रवृत्तियों पर नज़र डालते समय हम पाते हैं कि आधुनिक कथा तंत्र का ढाँचा अब पूरी तरह से बदल गया है। यह परिवर्तन कहानी के बाहरी रूप का नहीं है। कथानक का हास वस्तुतः कथानक का विघटन या बिखराव नहीं है। जटिल जीवन परिस्थितियों ने जीवन की पुरानी मर्यादाओं

को तोड़ दिया है। उसकी आदिमध्यांतता अब रही नहीं है। अतः कथानक का हास हमारे यथार्थ के विघटन का प्रतिफलन है। रूपबंध के समाजशास्त्र पर विचार करते समय भी हम अंततः कहानी की सूक्ष्मभेदी सामाजिकता पर ही आ पाते हैं।

तीसरा अध्याय है "आधुनिक हिंदी कहानी में मध्यवर्गीय जीवन का समाजशास्त्र"। मध्यवर्ग हमारे समाज के सबसे अधिक ऊर्जा संपन्न वर्ग है। वह सबसे अधिक संवेदनशील भी है। जीवन के बहिरंग पक्षों में मध्यवर्ग की रचनात्मक उपस्थिति हम अनुभव कर सकते हैं। लेकिन उसके अंतरंग पक्षों में कई प्रकार के विघटन भी हम देख पाते हैं। वहाँ परंपरा और आधुनिकता की टकराहट के साथ जीवन मूल्यों के बदलाव भी लक्षित होते हैं। मध्यवर्गीय जीवन अपनी आधुनिकता के बावजूद रूढिवादी है। आधुनिक कहानी के दौर की अधिकतर रचनाओं में यह अपरिवर्तनशीलता के पर्याप्त संकेत मिलते हैं। परिवर्तन और अपरिवर्तनशीलता के द्वन्द का समाजशास्त्रीय अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

चौथा अध्याय है "आधुनिक कहानी के राजनीतिक आयामों का समाजशास्त्र"। राजनीति पर केंद्रित जितनी भी सामग्री है उनमें जनतंत्र के विरोध में विकसित होनेवाली राजनीति पर आलोचनाएँ प्राप्त होती हैं। यह एक सामाजिक यथार्थ है। इस यथार्थ को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य ही कहानीकारों ने किया है। उनमें सिर्फ राजनीतिक यथार्थ का आयाम ही नहीं, बल्कि मानवीय यथार्थ भी सगुंफित होते हैं। विभाजन की राजनीति

राजनीतिक आयामों में प्रमुख है। हिंदी में ही नहीं, बल्कि बहुत भारतीय भाषाओं में विभाजन पर कहानियाँ प्रस्तुत हुई हैं। राजनीतिक मूल्यविघटन को प्रस्तुत करनेवाली कहानियों के समाजशास्त्रीय पक्ष घोर अमानवीयता को प्रस्तुत कर रहे हैं। राजनीति के विभिन्न पक्ष कहानियों में मिलते हैं जिनमें रेखांकित अमानवीयता को तथा अधिकार केंद्रिता को विश्लेषित करने का कार्य इस अध्याय में हुआ है।

पाँचवाँ अध्याय है "आधुनिक हिंदी कहानी में ग्रामीणता का समाजशास्त्र"। हिंदी प्रदेश में गाँव एक बहुत बड़ा यथार्थ है। ग्रामीण जीवन उक्त यथार्थ की अंतरंगता है। हिंदी संस्कृति में भी ग्रामीण जीवन छाया हुआ है। आधुनिक हिंदी कहानी में इसके लिए आंचलिक शब्द भी प्रयुक्त है। यद्यपि ग्रामीण तथा आंचलिक में फर्क करने का प्रयास भी मिलते हैं तो भी मुख्यतः इस श्रेणी में आनेवाली कहानियों में हमारे लोक जीवन का यथार्थ ही केंद्र में है। इस अध्याय में कोशिश यह की गयी है कि लोक जीवन के सहज लोक पक्ष को रेखांकित किया जाय तथा लोक जीवन के भीतर सक्रिय सामाजिक यथार्थ को पहचाना जाय।

इस शोध प्रबंध की पूर्ति मेरे गुरुवर डॉ. अरविंदाक्षन जी के मार्गनिर्देशन में संपन्न हुई है। मैं उनके प्रति बहुत आभारी हूँ। उनके निर्देश और उपदेश शुरू से अंत तक मेरे पथ प्रदर्शक रहे। दिल की गहराई से मैं उनको कृतज्ञता अदा करती हूँ।

मेरे विषय-विशेषज्ञ डॉ. मोहनन जी के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपनी रायों से मेरे काम को प्रभावोत्पादक बना दिया। विभाग के अन्य अध्यापक श्रेष्ठों को भी मैं धन्यवाद देती हूँ। उनके संपर्क मेरे लिए लाभदायक रहे। मेरे प्रिय मित्रों और हितैषियों को मैं याद करती हूँ जिनके सहयोग और प्रेरणा मुझे हमेशा मिलते रहे। हिंदी विभाग के कर्मचारियों और सेन्ट्रल लाइब्रेरी के कर्मचारियों को मैं आभार प्रकट करती हूँ।

मेरे श्रेष्ठ माँ-बाप, भाई, बहिन, ननद, भतीजा, भतीजी, बहनोई, बन्धुजन सभी के प्रति मैं विशेष रूप से आभार हूँ क्योंकि उनकी प्रेरणा या सहयोग के बिना यह काम पूरा न होता। अंत में सर्वोपरी मैं सर्वेश्वर को धन्यवाद देती हूँ जिनके आशीर्वाद से ही मैं अपने यत्न में सफल हो गयी हूँ।

बीना पी.जे.

विषय सूची

अध्याय - एक

1 - 61

पूर्व आधुनिक युगीन हिंदी कहानी में समाज का स्वरूप

भूमिका

यथार्थवादी कहानियों का यथार्थ और समाज - प्रेमचंद युग

दलित समाज-कृषक समाज-स्त्री समाज का यथार्थ

प्रसाद की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

सुदर्शन की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

प्रेमचंदोत्तर युग

यशपाल की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

अज्ञेय की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

उपेंद्रनाथ अशक की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

रंगेय राघव की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

अध्याय - दो

62 - 95

आधुनिक हिंदी कहानी - प्रवृत्तिगत अध्ययन

आधुनिक हिंदी कहानी की आधुनिकता

आधुनिक हिंदी कहानी की पृष्ठभूमि

आधुनिक कहानी की विशेषतायें

कथानक का हास-जीवन के साथ सहस्थिति-पात्रों का निजत्व-भाषा

की नई भंगिमायें-नई शिल्प-दृष्टि

आधुनिक कहानी - प्रमुख प्रवृत्तियाँ

समाजबद्धता का बृहत्तर परिवेश-मूल्य-संबंधी परिवर्तन-संबंधों में आए

परिवर्तन-प्रेम के नए आयाम-आंचलिक जीवन का परिदृश्य-सांस्कृतिक

परिदृश्य

अध्याय - तीन

96 - 156

आधुनिक हिंदी कहानी में मध्यवर्गीय समाज का समाजशास्त्र

- मध्यवर्ग का उदय
- परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष
- हिंदी कहानी में मध्यवर्गीय जीवन के विविध आयाम
- मध्यवर्गीय मानसिकता की अभिव्यक्ति
- मध्यवर्ग का शिक्षित समाज
- मध्यवर्ग की सीमायें
- मध्यवर्ग की प्रतिरोधी मानसिकता

अध्याय - चार

157 - 213

आधुनिक हिंदी कहानी के राजनीतिक आयामों का समाजशास्त्र

- आधुनिक हिंदी कहानी में राजनीति
- विभाजन की राजनीति
- राजनीति और मूल्यविघटन
- राजनीति और अधिकार
- राजनीति और अमानवीयता
- कहानी में संकेतित राजनीतिक प्रसंगों का समाजशास्त्र

अध्याय - पाँच

214 - 267

आधुनिक हिंदी कहानी के ग्रामीण यथार्थ का समाजशास्त्र

- ग्रामीण कहानी बनाम आंचलिक कहानी
- ग्रामीण कहानियों का यथार्थ
- स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण यथार्थ का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य
- सामाजिक परिप्रेक्ष्य
- आर्थिक परिप्रेक्ष्य

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य
सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य
आधुनिक हिंदी कहानी में ग्राम जीवन का समाजशास्त्र
ग्रामीण सामाजिकता
राजनैतिक चेतना
सांस्कृतिक चेतना

उपसंहार	268 - 274
संदर्भ ग्रंथ सूची	275 - 290



अध्याय—एक

पूर्व आधुनिक युगीन हिंदी कहानी में समाज का स्वरूप

भूमिका

सामाजिक यथार्थ से निर्मित सामाजिक चेतना का एक विशिष्ट रूप है साहित्य जिसमें मानवीय सक्रियता प्रस्फुटित रहती है। यद्यपि साहित्य के रूप भिन्न-भिन्न रहे हैं, और इन रूपों के लक्ष्य भी भिन्न-भिन्न रहे हैं, तो भी इनका सीधा संबन्ध मानव-समाज और उनकी अन्तश्चेतना से हैं। श्रेष्ठ कृतियाँ अपने समय की सामाजिक अवस्थाओं के चित्र प्रस्तुत करती हैं और साथ ही साथ समाज के अंतर्विरोधों तथा संघर्षों की चर्चा भी करती हैं। जार्ज लूकाच ने लिखा है— “लेखक जितनी गहराई से किसी युग और उसकी महान समस्याओं को समझेगा, उतना ही उसका चित्रण विशिष्ट स्तर का होगा। कारण यह है कि रोज़मर्रा के जीवन में बड़े-बड़े अंतर्विरोध धुंधले हो जाते हैं; छोटी-छोटी असंबद्ध, आकस्मिक घटनाएँ इसप्रकार आड़ी-तिरछी होकर उन्हें दबा देती हैं कि वे अपने वास्तविक और पूरे रूप में उभर ही नहीं पाते। वे तभी उभर सकते हैं जब प्रत्येक अंतर्विरोध अपनी आत्यंतिक परिणतियों तक पहुँचा दिया जाये, जहाँ उसमें निहित हर चीज़ प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट हो जाए।”¹ कहानी साहित्य ऐसी एक विधा है जो छोटी होकर भी जीवन की समग्रता को उभारने

1. जार्ज लूकाच- राइटर एण्ड क्रिटिक-1970 -पृ-158

में सदैव सक्षम रही है। यह साहित्यिक विधा भारतीय जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है।

आख्यायिका, गल्प, लघुकथा जैसी संज्ञाओं से अभिहित इस विधा का मुद्रित रूप में आविर्भाव उन्नीसवीं शती के अंत में होता है। बीसवीं शती के पहले दशक में प्रकाशित कुछ कहानियाँ, कहानी-विधा की विकास-यात्रा के सीमाचिन्ह हैं। माधव प्रसाद मिश्र की 'मन की चंचलता' का प्रकाशन किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमति'(1900) से छः महीने पहले हुआ था तो मास्टर भगवनदास की 'प्लेग की चुड़ैल',(1902) रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय'(1903), राजेंद्र बाला घोष 'बंग महिला' की 'दुलाईवाली'(1907) चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था'(1914) जैसी कहानियाँ इस श्रेणी की हैं। इन कहानियों के प्रकाशन के आसपास ही प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियाँ छपने लगती हैं जोकि हिंदी कहानी-जगत में परिवर्तन की नींव डालने में सशक्त थीं।

यथार्थवादी कहानियों का यथार्थ और समाज – प्रेमचंद युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहानी कला का विकास भारतेन्दु युग से माना जाता है। भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग के लेखकों ने प्राचीन कथा साहित्य, लोक कथा साहित्य तथा जातक कथा साहित्य को आधार बनाकर कहानियों की रचना की। ये कहानियाँ अधिकांशतः कल्पनात्मक, चमत्कारिक तथा मनोरंजनात्मक थीं। इस युग में ऐसी कहानियाँ भी लिखीं गयीं जो समाज-

सुधार की भावना को जागृत करती हैं। हिन्दी कहानी के इस प्रथम विकास युग का प्रभाव आगामी युगों पर पडा जहाँ विषयों का विस्तार तथा कलात्मक परिपूर्णता साथ-साथ दृष्टिगोचर होती हैं। इस समय कहानी कला का विशेष रूप से विकास हुआ। कहानीकारों ने जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक पक्षों का सम्यक चित्रण प्रस्तुत किया है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार प्रेमचंद का आविर्भाव और उनका कथा-जगत इस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है।

साहित्य के इतिहास में जिसे प्रेमचंद युग माना जाता है, उस काल में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन आदि ने भी कहानियाँ लिखीं, पर कहानी-परंपरा प्रेमचंद के नाम से आगे बढ़ी। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रेमचंद ऐसे एक समर्थ कथाकार थे, जो अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ की समस्याओं का पर्दाफाश कर सके। उन्होंने ही पहली बार साहित्य में सामान्य जनता को प्रविष्ट कराया और अपनी लेखनी से उसके जीवन-यथार्थ को कुरेदने का प्रयास किया। "प्रेमचंद में जो सबसे प्रमुख गुण माना जाता है, वह यह है कि उन्होंने अपनी कहानियों में "भारत की आत्मा" को जितनी कुशलता से चित्रण किया उतना कोई अन्य लेखक नहीं कर पाया। भारत की आत्मा उसके नगरों में नहीं है, वह उसके गाँवों में है जहाँ उसके निरीह और मूक किसान रहते हैं। प्रेमचंद उसी भारत के भूखे-नंगे और मूक किसान के कंठस्वर बने। उनका परिवेश सामाजिक और पारिवारिक यथार्थ है। उनके मूल्य इसी परिवेश के मूल्य हैं। इसलिए उनकी कहानियों ने

तत्कालीन जन-मानस को जकड़ लिया और वे उनकी जुबान पर चढ़ गये। उन्होंने कहानी को अदुभुत और अलौकिक जगत से निकालकर जीवन की वास्तविक भूमि पर खड़ा किया।¹

प्रेमचंद ने साहित्य को केवल मन बहलाने का साधन न मानकर उसे मानव-जीवन के प्रतिफलन का माध्यम माना। शोषितों, पीड़ितों और अछूतों की समस्याओं को चित्रित करके अन्याय और अनीति के विरुद्ध मानवीय चेतना को जागृत करना उनके अनुसार साहित्य का उद्देश्य है। उनकी नज़र में वही साहित्य श्रेष्ठ रहता है जिसमें उच्च चिंतन के साथ साथ जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो। वे ऐसा मानते थे कि वही सच्चा साहित्यकार है जो आम जनता के जीवन के साथ-साथ चले और उसे सही रास्ता दिखाये। अपने समय के समाज की विद्वपतों को चाहे वे जातीयता, वर्ग वैषम्य या राजनैतिक शिथिलताओं के कारण उत्पन्न हो, रचनात्मक दिशा देकर प्रस्तुत करने में वे सदा सक्रिय रहे। उनकी कहानियों का विषय-क्षेत्र इतना विशाल तथा व्यापक है कि उनमें व्यक्ति, समाज, राजनीति, धर्म, रीति-रिवाज़, प्रकृति सब कुछ अपनी-अपनी गरिमा के साथ समाविष्ट हैं।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में तत्कालीन समाज का जैसा का तैसा चित्रण किया है, तो कहीं, कुछ सुधार का भाव भी दिखाया है। इसी कारण से कुछ कहानियों का अन्त कभी पाठकों के मन को द्रवीभूत कर देता है तो कभी

1. विष्णु प्रभाकर-प्रेमचंद-कथाकार के रूप में-सं.कल्याणमल लोढ़ा और रामनाथ तिवारी-प्रेमचंद-परिचर्चा-प्रेमचंद शताब्दी-1979-80-पृ.7

उनको एक सीख भी देता है। "प्रेमचंद के युगांतरकारी कथाकार होने का कारण यह होता है कि उन्होंने भारतीय समाज की उन आधारभूत समस्याओं को उठाया जो उनसे पहले साहित्य का विषय नहीं बनी थी और जो उनके बाद भी समाज में अपना समाधान माँगती हुई उपस्थित है।"¹ मार्कण्डेय का कथन है-"वस्तु जगत की सत्यता को प्रमाण मानने और सारी सामाजिक व्यवस्था को उसी के अनुकूल नैतिक एवं भौतिक व्याख्या प्रदान करने की ओर प्रेमचंद का प्रयास भारतीय साहित्य में सबसे पहला था।"² प्रेमचंद के निराले विचार उनके साहित्य द्वारा उजागर हुए जिनमें वर्तमान समाज के स्पंदन के साथ साथ गरिमामयी प्रचीन भारतीय संस्कृति, इतिहास और पाश्चात्य चिंतन के पुट पाये जाते हैं। "प्रेमचंद के विषय में विभिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किये गये हैं। किसी विचार में प्रेमचंद प्राचीन भारत का गौरवगान करते हैं। कोई उन्हें किसानों तथा मज़दूरों का साथी बताता है, किसी के विचार में प्रेमचंद गाँधीवादी है, कोई उन्हें साम्यवादी कहता है। आधुनिक वैज्ञानिक तथा भौतिक स्रोतों को जीवन-आधार माननेवालों को प्रेमचंद में पाश्चात्य चिंतन दीख पड़ता है। कोई उनकी चर्चा आधुनिक भारतीय संवेदना की आधारभूमि मानता है।"³

प्रेमचंद की कहानियों से गुज़रते वक्त मालूम पडता है कि समाज का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जिसे उनकी लेखनी ने स्पर्श न किया हो। प्रेमचंद

-
1. रमेश उपाध्याय - कहानी की समाजशास्त्रीय समीक्षा-1999- पृ.151
 2. मार्कण्डेय-नयी समीक्षा की भूमिका, युवा, अक्टूबर 1974- पृ.106
 3. जाफर रज़ा-प्रेमचंद:कहानी का रफनुमा-2005- पृ.10

की सफलता का प्रमुख आधार ही अपने समय के समाज के प्रति उनकी संवेदनात्मकता है। चाहे वह दलित समाज हो या कृषक समाज, नारी समाज हो या मज़दूर समाज एक जागरूक समाजशास्त्री की दृष्टि से उन्होंने अपने समय के समाज का विश्लेषण किया है।

दलित समाज

दलित सदियों से शोषित और दमित था। समाज उन्हें अस्पृश्य और अछूत समझता था। यह सिलसिला वर्णाश्रम प्रथा से प्रारंभ हुआ जब से मनुष्य वंश भिन्न भिन्न वर्गों में बांटा गया। इस वर्गीय व्यवस्था में ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सेवा वृत्ति करने की नौबत शूद्रों पर आ गयी जो बाद में आकर दलित वर्ग के नाम से जाने लगे। समय के बहाव ने यद्यपि उसके नाम को बदल दिया तथापि उसके कर्म क्षेत्र को जैसा का तैसा रख दिया। समाज की मुख्यधारा से वे हमेशा धकेलते रहे, क्योंकि अब भी वे अपवित्र या अछूत रहे। राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र उन्हें सामाजिक अंग की हैसियत देने से इन्कार करते रहे। उनकी आर्थिक स्थिति नकारात्मक थी। शिक्षा और नौकरी से वंचित रहने के कारण इस वर्ग के जीवन-स्तर की प्रगति कथापि नहीं हुई।

दरअसल धार्मिक क्षेत्र की निरंकुशता या यों कहे कि कट्टर धार्मिक अनुष्ठान और आचार-व्यवहार ने ही दलित ज़िंदगी को अवसाद का पर्याय बना दिया है। प्रेमचंद ने जब से तूलिका चलायी, दुनिया आधुनिकता के रथ में लोटने लगी थी। मनुष्य-मनुष्य की समानता दुनिया-भर के लोगों की विशेष और प्रबल सोच बनने लगी थी। स्वभावतया प्रेमचंद की विशाल दृष्टि इस उपेक्षित वर्ग की ज़िंदगी पर पड़ी और उनका संवेदनात्मक चित्त द्रवीभूत हुआ।

प्रेमचंद अपने समय के महान नेता महात्मा गाँधी और बाबा साहेब अम्बेडकर के समकालीन थे। दलित समाज के उद्धार हेतु दोनों नेता अपना अपना योगदान प्रस्तुत कर रहे थे। प्रेमचंद को अम्बेडकर की नीतियाँ स्वीकार्य नहीं थीं, क्योंकि वे दलितों के लिए एक अलग राजनीतिक अधिकार की माँग करते थे। अतः उन्होंने गाँधीजी का साथ लिया। गाँधीजी द्वारा संचालित "दलितों के मंदिर में प्रवेश का आन्दोलन", "दलितों के लिए अलग राष्ट्रीयता के विरुद्ध आमरण अनशन" आदि में प्रेमचंद पूरे मनोयोग के साथ सम्मिलित हुए। दलितोद्धार गाँधीजी के लिए राजनीतिक संग्राम में जहाँ अनिवार्य अंग था वहाँ प्रेमचंद के लिए सामाजिक संतुलन का मुख्य घटक रहा। अतः उन्होंने सबसे पहले दलितों की आर्थिक सुस्थिरता पर बल दिया। उन्होंने "जागरण" में लिखा—"यदि हम अपने भाइयों को उठाना चाहते हैं, तो हमें ऐसे संसाधन पैदा करने होंगे, जो उन्हें उठने में सहायता करें, विद्यालयों में उनके लिए छात्रवृत्तियाँ निश्चित करना चाहिए, नौकरियाँ देने में उनके साथ थोड़ी छूट करनी चाहिए।"¹

दलितों पर ब्राह्मणों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों का वे खुल्लम खुल्ला खंडन करते रहे। वाराणसी में सनातनधर्मी लोगों के बीच में रहकर भी, वे उन पर प्रहार करते रहे। अछूत की कोटि पर रखे गये इन लोगों से मंदिर बनवाने या दक्षिणा माँगनेवाले ब्राह्मणों की वे खिल्ली उड़ाते हैं—"अछूत के पैसे तो आप बेधड़क लेते हैं, अछूत कोई मंदिर बनावे, आप दलबल के साथ

1. अमृतराय-प्रेमचंद:विविध प्रसंग, खण्ड-2-1919- पृ.455

जायेंगे, मंदिर में देवता की स्थापना करेंगे तब माल खायेंगे ही,— अछूत ने इसे छुआ न हो, दक्षिणा लेंगे, इसमें कोई पाप नहीं, न होना चाहिए, लेकिन अछूत मंदिर में नहीं जा सकता, इससे देवता अपवित्र हो जायेंगे। अगर आपके देवता ऐसे निर्बल हैं कि दूसरों के स्पर्श से अपवित्र हो जाते हैं, तो उन्हें देवता कहना ही मिथ्या है। केवल वही देवता है जिसके सम्मुख जाते ही चाण्डाल भी पवित्र हो जाये। हिन्दू उसीको अपना देवता समझ सकता है। पतितों का उद्धार करनेवाले ठाकुर ही हमारे ठाकुर हैं, जो पतितों के दर्शन मात्र से पतित हो जाए, ऐसे ठाकुर को दूर से ही नमस्कार है।¹ "मंदिर" नामक कहानी में उन्होंने चमारिन सुखिया से यह सवाल उठाया है—"सरकार, वह तो संसार के मालिक हैं। उनके दरशन से तो पापी भी तर जाता है, मेरे छूने से उन्हें कैसे छूत लग जाएगी?"..... "तो क्या भगवान ने चमारों को नहीं सिरजा है? चमारों का भगवान कोई और है?"² अपने बच्चे के प्राण की मनौती करने आयी उस विधवा पर पूजारी तथा दूसरे भक्त जन इसलिए बरस पड़ते हैं कि वह एक चमारिन है। झूठी वर्ण-व्यवस्था ने लोगों के दिलों को इतना कठोर बना दिया है कि असहाय और गरीब लोगों के दर्द की सही पहचान नहीं हो पाती।

चातुर्वर्ण्य की वर्गान्धता से निरंतर संघर्ष करते आये प्रेमचंद को क्रांतिकारी की संज्ञा से अभिहित किया जाए तो उसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। "जो लोग अपने यथार्थ-बोध तथा ऐतिहासिक विवेक से सामाजिक प्रगति के

1. अमृतराय-प्रेमचंद:विविध प्रसंग, खण्ड-2-1919-पृ.448

2. मुंशी प्रेमचंद-मंदिर-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ-1987-पृ.476-477

मार्ग की बाधाओं को समझ लेते हैं और सामाजिक परिवर्तनों के नियमों के अनुसार अपने यथार्थ में परिवर्तन के लिए सक्रिय होते हैं, वे अनिवार्यतः क्रांतिकारी होते हैं, चाहे वे राजनीति के क्षेत्र में हो, चाहे विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, कला, साहित्य अथवा संस्कृति के किसी अन्य क्षेत्र में।¹ प्रेमचंद ने अपने समय के यथार्थ से लड़ा और प्रगति के पथ पर विघ्न बननेवाली अमानवीयता को नकारात्मक धरातल पर ला खड़ा किया। प्रेमचंद की क्रांतिकारी संवेदना समाज में समानता लाने के विरुद्ध खड़ी हुई ब्राह्मणों की पारंपरिक शोषण-नीति पर चोट करती रही। ज़रूरत पड़ने पर ब्राह्मण वर्ग दलितों से सहायता की माँग करते हैं, पर जब अपनी ज़रूरतें पूरी हो जाती हैं तो उन्हें दूर भगा देते हैं। "दूध का दाम" कहानी द्वारा उन्होंने इसे स्पष्ट किया है। ज़मींदार महेशनाथ का बेटा सुरेश दलित माँ भूंगी के दूध पर पला था। जब भूंगी मर जाती है तो उसका अपना बच्चा मंगल अनाथ बन जाता है। खेल में जब हमेशा दूसरों का घोडा बननेवाला मंगल जब सवारी बनना चाहता है तो उसे इन्कार कर दिया जाता है। प्रेमचंद की क्रांतिकारी संवेदना मंगल द्वारा प्रकट होता है—"मैं कब कहता हूँ कि मैं भूंगी नहीं हूँ; लेकिन तुम्हें मेरी ही माँ ने अपना दूध पिलाकर पाला है। जब तक मुझे भी सवारी करने को न मिलेगी, मैं घोडा न बनूँगा। तुम लोग बड़े चघड़े हो। आप तो मज़े से सवारी करेंगे और मैं घोडा ही बना रहूँगा।"² ब्राह्मणों की अवसरवादी

1. रमेश उपाध्याय-कहानी की समाजशास्त्रीय समीक्षा-1999-पृ.47

2. प्रेमचंद-दूध का दाम-पचास कहानियाँ-1963-पृ.478

मानसिकता महेशनाथ की पत्नी द्वारा प्रकट होती है कि वह मंगल को भरपूर गालियाँ देकर भगा देती है। एक दलित जाति के बच्चे की समानता का अधिकार प्राप्त करने की ख्वाहिश कुचली जाती है। निम्न जातियाँ उच्च वर्ग के लिए जितना भी बलिदान करें फिर भी वे कठोर बने रहते हैं। मंगल के इस कथन में पूरे दलित समाज की निराशा झलकती है – "लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।"¹

"ठाकुर का कुआ" इस कोटि की एक अन्य रचना है। प्राण को बनाये रखने के लिए अत्यंत ज़रूरी चीज़ पानी के लिए संघर्ष करनेवाले चमार दंपति गंगी और जोखू की कहानी ने जातिभेद की समस्या के प्रति पाठकों के मन में जागरूकता उत्पन्न की है। प्रेमचंद की कई विद्रोही चिंतायें गंगी द्वारा प्रकट हुई हैं। गंगी अपने आप से पूछती है-"हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डालते हैं? यहाँ तो जितने हैं, एक-से एक छूटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की एक भेड चुरा ली थी और बाद को मार कर खा गया। इन्हीं पंडितजी के घर में बारहों मास जुआ होता है। यही साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में है हम से ऊँचे। हाँ, मूँह से हम से ऊँचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे हैं। कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रसभरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने

1. प्रेमचंद-दूध का दाम-पचास कहानियाँ-1963-पृ.481

लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊँचे हैं।"¹ जातीय भेदभाव से उत्पन्न अस्पृश्यता की वेदना जोखू के इन शब्दों से व्यक्त होता है- "ब्राह्मण देवता आर्शीवाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पाँच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है। हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता।"²

जाति के नाम पर की गयी भिन्नता इतनी गहन तीव्रता के साथ मनुष्य-मन में समाविष्ट हुई है कि मनुष्यता ही नष्ट हुई है। जातीय सामाजिक व्यवस्था में इन अस्पृश्यों और बहिष्कृतों की दयनीय दशा का वर्णन करती है "सद्गति" नामक कहानी। ब्राह्मण जो अपने आप को पंडित समझते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, पर इतना नहीं जान पाते कि भूखे को कुछ भोजन दे। अपनी बेटी की सगाई का मुहूर्त निश्चय करने के लिए पंडितजी को बुलाने उसके घर आये दुखी से पंडित घासीराम घर के काम करवाता है, पर खाने-पीने को कुछ नहीं देता है। ब्राह्मण पंडित की इस द्विमुखी मानसिकता पर व्यंग्य करते हुए गोंड कहता है- "पचने को तो पच जायेगी; पहले मिले तो। मूछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये; तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म दिया। ज़मींदार भी कुछ खाने को देता है। हाकिम भी बेगार लेता है, तो थोड़ी-बहुत मजूरी देता है। यह उनसे भी बढ गये। उस पर धर्मात्मा बनते हैं।"³ ब्राह्मण

1. मुंशी प्रेमचंद-मंदिर-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ-1987-पृ.87

2. वही-पृ.86

3. प्रेमचंद- सद्गति-पचास कहानियाँ-1963-पृ.303

घासीराम चमार दुखी के मृत शरीर को इस तरह दफनाता है जैसे किसी जानवर के साथ करता है - "पंडितजी ने एक रस्सी निकाली उसका फंदा बनाकर मुरदे के पैर में डाला, और फंदे को खींचकर कस दिया। - -पंडितजी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर घसीट ले गये। वहाँ से आकर तुरंत स्नान किया, दुर्गा पाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का।" प्रेमचंद विश्वास करते हैं कि दलित वर्ग के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण उनकी अपनी नियती पर अखंड विश्वास है जो धार्मिक अंधविश्वास से उत्पन्न हुआ है। एक ऐसी धारणा लोगों के दिल में उत्पन्न करने में जाति-व्यवस्था सफल हुई है कि ब्राह्मणों को अपवित्र करने पर ईश्वर क्रुपित हो जायेगा। पंडिताइन द्वारा फेंकी गयी आग की बड़ी चिनगारी सिर पर पड़ने पर दुखी का मन कहता है-"यह एक पवित्र ब्राह्मण के घर को अपवित्र करने का फल है। भगवान ने कितनी जल्दी फल दे दिया।"² धन और धर्म हमेशा इन्हें आखेटते रहे। उच्च वर्ग धनवान हुए, केवल इनसे मज़दूरी करवाकर, उच्च वर्ग पवित्र और पूजनीय हुए केवल इन्हें अस्पृश्य और अशिक्षित बनवाकर। डा. अरुण कुमार मिश्र का मत उल्लेखनीय है-"ये लोग न केवल आर्थिक शोषण के शिकार हैं वरन् अपने धार्मिक अंधविश्वासों के कारण स्वेच्छा से भी अपनी हीनता को स्वीकार करके उच्च वर्णों के आतंक में रहते हैं।"³

1. प्रेमचंद- सद्गति-पचास कहानियाँ-1963-पृ.306

2. वही-पृ.302

3. डॉ.अरुण कुमार मिश्र-जातीय संदर्भ और प्रेमचंद-1998-पृ.1284

सहानुभूति या अनुकंपा से प्रेरित प्रेमचंद की इन कहानियों में कहानी की उच्च स्तरीय संवेदना तो प्रतिफलित है ही। बावजूद इसके ये कहानियाँ समाज का एक ऐसा नक्शा भी प्रस्तुत करती हैं कि उनमें अंकित समाजशास्त्रीय प्रकरणों पर अलग से विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है। सामंतीय समाज की जीर्ण स्थिति का समाजशास्त्र ही इन कहानियों में प्रस्तुत हुआ है।

प्रेमचंद का मकसद स्पष्ट है। अपने समाज के इस दमित वर्ग का नवोत्थान वे चाहते थे। "अधूरा जीवन जीते हुए अधूरी आकांक्षाओं के साथ दुनिया से चल बसनेवालों की कटु यातनाओं को प्रेमचंद ने विषय बनाया। वे हमारे समाज की उस तथाकथित पवित्र समझी जानेवाली न्यायिक व्यवस्था पर कुठाराघात कर रहे थे।"¹

भारत की जनगणना में दलितों की संख्या आभिजात्य वर्ग से कहीं ज्यादा है। अतः समाज की ही नहीं सारे देश की प्रगति इनकी प्रगति पर आधारित रहती है। एक सच्चे नागरिक और यथार्थवादी साहित्यकार की हैसियत से प्रेमचंद ने दलित वर्ग की दयनीयता को लोगों के सामने प्रस्तुत किया। इनके पिछड़ेपन तथा दयनीयता के कारण ढूँढ़े। एक समाजशास्त्री के दृष्टिकोण से उन्हें सुलझाने की रास्ता बताया।

1. डॉ.ए.अरविंदाक्षन-प्रेमचंद का सौन्दर्यबोध-सं.पी.वी.विजयन-प्रेमचंद:साहित्य और संवेदना-2005-पृ.32

कृषक समाज

कृषक समाज हमेशा प्रेमचंद की सहानुभूति का विषय रहा है। अशिक्षित, निरीह और परिश्रमी कृषक कभी भी ज़मींदार, साहूकार तथा शोषक वर्ग के पंजों से छूट नहीं सके थे। सामंती-महाजनी सभ्यता में दबे हुए किसानों की मुक्ति वे चाहते थे। वे आशा करते थे कि भारत में भी रूस की जैसी क्रांति आ जाए जिससे गरीब किसानों को सामाजिक व्यवस्था में समानता का अधिकार प्राप्त हो और वे भी आनंद का मज़ा लूटे। वे इसे ही आदर्श सामाजिक व्यवस्था मानते थे। वे अपने देश में संगठित किसान सभा या व्यवस्थित किसान आन्दोलन की कमी महसूस करते थे। यद्यपि 1919 से देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में किसान आन्दोलनों की शुरुआत हुई थी मगर देश भर के किसान या तो अज्ञता से या किसी नेतृत्व के अभाव में उनमें शामिल नहीं पा रहे थे। निम्न स्तर के कृषकों की अपेक्षा उनमें उच्च स्तर के कृषक हिस्सा ले रहे थे। 1930-32 के "सविनय अवज्ञा आन्दोलन" से ही किसान आन्दोलनों में अधिक प्रखरता आ गयी है। सच कहे तो राष्ट्रीय आन्दोलन को नगरों से देहातों तक ले जाने का श्रेय किसान आन्दोलनों का है। सविनय अवज्ञा आन्दोलन की सफलता का मुख्य आधार कृषक समाज की हिस्सेदारी थी।

यह भी ध्यान देने की बात है कि शुरू शुरू में राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने किसान आन्दोलन में विशेष सहयोग नहीं दिखाया था। कांग्रेस नेतृत्व के उच्च स्थानीय वर्ग इन देहाती या अनपढ़ समाज की स्वीकृति में

हिचकते थे। मात्र यह नहीं कि वे इनके सशस्त्र आन्दोलन प्रणाली का विरोध भी करते थे। ज़मींदारों और सामंतों के विरुद्ध भडक उठे किसान आन्दोलन ने आगे चलकर साम्राज्यवाद विरोधी रूप ले लिया।

प्रेमचंद अपने समय के कृषक समाज पर होनेवाले शोषण और दमन को, चाहे वह अंग्रेजी सरकार की कूटनीति से हो या अपने ही देश के उच्च वर्ग की प्रताड़ना से हो रहे हो, भली भाँति परिचित थे। उन्होंने खुलकर बता दिया कि किसानों की हालत रोज़-ब-रोज़ खराब होती जा रही है। उन पर लगान बढ़ता जाता है और उनके हितों की रक्षा करनेवाला कोई नहीं है।

उन्होंने अपनी कहानियों में सेठ-साहूकारों, ज़मींदारों, ब्राह्मण पंडितों और ब्रिटीश सत्ता के दमन से पीड़ित धरती-पुत्र किसान के आत्मसंघर्ष का चित्रण किया है और उनको विद्रोह करने की प्रेरणा भी दी है। खेती करने पर भी आजीविका केलिये तडपनेवाले किसानों को अंत में आकर मजूरी करके पेट भरना पड़ता है। जो कुछ उसे मजूरी में मिलता है, उसे भी खेती में डालना पड़ता है—यह उनकी ज़िंदगी की विडंबना है। "पूस की रात"की मुन्नी के इन शब्दों में ऐसी खेती से वितृष्णा तथा ज़िंदगी के प्रति घोर निराशा झलकती है—
 -"बाकी चुकाने केलिए ही हमारा जनम हुआ है। पेट केलिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए"।¹ बढ़ते जानेवाले लगान, प्रकृति-कोप, जंगली जानवरों का आक्रमण आदि कृषक समाज की चुनौतियाँ थीं। खेती करने में परंपरागत

1. मुंशी प्रेमचंद-पूस की रात-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ-1997-पृ.99

प्रणाली अपनानेवाले भारतीय कृषक मौसम पर आश्रय लेते थे। खराब मौसम फसलों को खराब कर देता था। सरकार की ओर से गुण संपन्न बीज या खाद की कोई व्यवस्था नहीं होती थी। बाढ़ और अकाल से उन्हें कभी भी रक्षा नहीं होती थी। ज़मींदार खेती का अधिकांश भाग अपने हिस्से में लेते थे। ऐसी अवस्था में किसानों को मज़दूरी करने के अलावा और कोई मार्ग नहीं था।

इस कहानी का सहना उन साहूकारों का प्रतिनिधि है जो गरीब लोगों की ज़िंदगी से खून चूसकर जीता है। समाज के असहाय लोगों पर इन साहूकारों का कितना प्रखर और भयानक प्रभाव है, वह हल्कू के इस छोटे से प्रश्न से इस तरह प्रतिकृत होता है—"तो क्या गाली खाऊँ ?"¹ हल्कू की विवशता भरे इस प्रश्न में जो कठोर सत्य है, उससे मुन्नी तडप उठती है और रुपये देने को मज़बूर हो जाती है। साहूकार की भर्त्सना से पूस की ठंड ही उसे सहनीय लगी होगी। दरिद्र लोगों पर राज करनेवाले साहूकारों का आतंक इन लोगों को सदा सताता रहता है। हड्डी तोड़-तोड़ करके फसल उपजाना, रात में, विशेषकर, पूस की कठोर ठंड में, जंगली जानवरों से फसल बचा लेना; बेचारे किसानों की बुरी किस्मत यहाँ समाप्त नहीं होती है। एक साधारण सी कंबल खरीदना उनको ज़िंदगी की सबसे बड़ी अभिलाषा बन जाती है।

प्रेमचंद यह दिखाना चाहते हैं कि दिन-रात एक करके, सर्दी-गर्मी की दरद को झेलते हुए अपनी खेती की रखवाली करनेवाले किसानों की ज़िंदगी,

1. मुंशी प्रेमचंद-पूस की रात-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ-1997-पृ.11

वास्तव में, समाज के दूसरे लोगों के लिए अर्पित है। हल्कू के ये शब्द इसके उत्तम उदाहरण हैं-"तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मज़ा दूसरे लूटें।"¹ महाजनी सभ्यता ने किसानों को अपनी खेती से विमुख कर दिया है। अपनी मेहनत का फल भोगने का सौभाग्य उन्हें नहीं मिलता है। नीलगायों द्वारा फसल कुचल दिये जाने पर भी अलाव की आग के सुख से हटने को तैयार न होनेवाले हल्कू को अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति जकड़ रखा। जहाँ मुन्नी उदास हो जाती है वहाँ हल्कू प्रसन्न मुख से कहता है-"रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।"¹

प्रेमचंद ने निरीह और असहाय किसानों को विद्रोह करने की तरीका सिखाना चाहा। निरीहता और असहायता जीवन में कुछ ला नहीं सकतीं मगर ज़िंदगी के सब कुछ ले सकती हैं। ये दोनों गुण अपनी पराकाष्ठा में दासता की कोटि में आ जाते हैं। निर्जीव और निस्तेज प्राणी का कोई भी कुछ भी कर सकता है। अपने भीतर सुप्त शक्ति को जगा देना और हिम्मत को बनाये रखना अच्छी ज़िंदगी बिताने के सूत्र हैं जो निर्भाग्यवश भारतीय किसान-समाज में दिखाई नहीं पड़ते थे। एकता के बल से अनजान इस समूह के लिए एक सबक है "दो बैलों की कथा" नामक कहानी। हीरा और मोती नामक दो बैल शोषण के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले सजग और सक्रिय किसानों के प्रतीक हैं। निरीह किसान जानने लगे कि उनकी दर्दनाक ज़िंदगी की वजह उनका

1. प्रेमचंद-पूस की रात-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ—1997-पृ.100

2. वही-पृ.102

अपना सीधापन है जो दूसरों की कुटिलता पहचानने में बाधक बन जाता है। कहानी में हीरा मोती से कहता है-"हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।" तो मोती उत्तर देता है-" इसलिए कि हम इतने सीधे हैं।"¹ दरअसल, अपनी कमियों को पहचानना विजय प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है। किसान आन्दोलनों की शुरुआत के पीछे यही समझदारी ही कायम रहती थी।

कहानी में प्रेमचंद ने विद्रोह करने का तरीका भी दिखाया है। बैलों के मार्ग में जब साँड आया तो दोनों ने मिलकर लड़ने का इरादा किया। क्योंकि साँड इनसे ताकतवर है, अतः अकेला लड़ना पराजय को स्वीकार करना होगा। दोनों की एकता ने सफलता प्रदान की। साँड बेदम होकर गिर पड़ा। यहाँ साँड उच्च वर्ग और सामंती व्यवस्था को संकेतित करता है। इन प्रबल और ताकतवर शक्तियों से लड़-भिड़ने के लिए एकता और समझदारी की जरूरत है। संगठित होकर, मिल-जुलकर विद्रोह करने की सीख देकर प्रेमचंद ने अपने कृषक समाज को उत्तेजित किया है।

प्रेमचंद ने महसूस किया कि किसान समाज की दुर्गति का सबसे प्रमुख कारण वर्ग चेतना का अभाव है। पारस्परिक सौहार्द और प्रेम भाव इस वर्ग में नहीं के बराबर हैं। मामूली सी बात पर कलह मच उठता था। जीवन की सुख-समृद्धि व्यर्थ दुश्मनी में चली जाती थी। किसानों को इससे सचेत बनाने के लिए उन्होंने "मुक्तिमार्ग" नामक कहानी लिखी। महतो झींगूर और

1. प्रेमचंद-दो बैलों की कथा-वही-पृ.467

गड़रिये बुद्ध की दुश्मनी का अंत अपने हरे-भरे खेत और बहुसंख्यक भेड़ों के नाश पर हो गया और अंत में आकर दोनों को अपने गाँव से दूर, शहर में मज़दूरी भी करनी पड़ी। इनकी दुश्मनी का लाभ ब्राह्मण देवता को मिला। उन्हें अच्छे भोजन, गायें और पैसे मिले—"ब्राह्मण देवता का भी उसका प्रायश्चित कराने में कल्याण होता था। भला ऐसे अवसर पर कब चूकनेवाले थे। फल यह हुआ कि बुद्ध को हत्या लग गयी। ब्राह्मण भी उससे जले हुए थे। कसर निकालने की धाम मिली। तीन मास का भिक्षा-दंड दिया फिर सात तीर्थस्थानों की यात्रा; उस पर 500 विप्रों का भोजन और 5 गउओं का दान"।¹ अबोध किसान नहीं जानते हैं कि उनकी दुश्मनी का लाभ उठानेवाले उनके साथ ही हैं। उनके नष्ट को अपना लाभ माननेवाले इन छल-कपटों से किसानों की मुक्ति प्रेमचंद का लक्ष्य रहा। मधुरेश का मन्तव्य उल्लेखनीय है—"प्रेमचंद इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि अपनी सारी सादगी, सहजता और स्वेच्छा के बावजूद ध्वंस प्रायः सामंती व्यवस्था और नवागत पूँजीवाद के दोहरे दबाव के फलस्वरूप भारतीय किसान की नियति को बदल पाने के लिए एक महत्त और निर्णायक संघर्ष अपेक्षित है।"²

किसान की आर्थिक विपन्नता प्रेमचंद को सदा सताती रही। 1933 ई. मई 8 के जागरण में उन्होंने लिखा—"भारतीय किसानों की इस समय जैसी दयनीय दशा है, उसे कोई शब्दों में अंकित नहीं कर सकता। उनकी दशा को

-
1. प्रेमचंद-मुक्तिमार्ग- इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ-1997-पृ.426
 2. मधुरेश-हिंदी कहानी का विकास-1996-पृ.33

वह स्वयं जानता है या उनका भगवान जानता है। ज़मींदार को समय पर मालगुज़ारी चाहिए, सरकार को समय पर लगान चाहिए। खाने को दो मुट्ठी चावल, पहनने के लिए चीथड़ा चाहिए, चाहिए सब-कुछ, पर एक ओर तुषार और अतिवृष्टि फसल को चौपट कर रही है, एक ओर आँधी उनके रहे-सहे खेत को भी नष्ट कर रही है। दूसरी ओर रोग, प्लेग, हैजा, शीतला उनके जवानों को हरी-भरी और लहलहाती जवानी में उसी तरह दुनिया से उठाये लिये चली जा रही हैं, जिस तरह लहलहाता खेत अभी छह दिन पूर्व के पत्थर-पाले से जल गया। गल्ला पैदा हो रहा है, पर भाव इतना मंदा है कि कोई दो वक्त भोजन भी नहीं कर सकता। स्त्री के तन पर जो दो चार गहने थे, वे साहूकार के पेट से पचकर सरकारी मालगुज़ारी के पेट में चले गये। नन्हें बच्चे जो चीथड़ा ओढ़कर जाड़ा काटते थे, वही अब उनका पिता पहनकर अपने तन की लाज ढाँक रहा है। माता के पास केवल इतना ही वस्त्र है, जितने से वह घूँघट काढ सके-धोती चाहे ठेहुने तक क्यों न खसक आये।" मर्मभेदी शब्दों से खींचा गया यह चित्र उनके लिए अनुभूत सत्य था। भारतीय जनगणना के पौने भाग के अधिकारी कृषक समाज के कल्याण द्वारा एक नवभारत की सृष्टि उनका स्वप्न था।

स्त्री-समाज का यथार्थ

स्त्री समाज का यथार्थ समाजशास्त्रीय विश्लेषण के लिए सार्थक प्रकरण है। कारण स्पष्ट हैं। स्त्री-समाज भारतीय सामाजिक संदर्भ में हाशियीकृत समाज है। इसलिए यह शोषण के अधीन में चरमरानेवाला समाज है।

झूठी वैयक्तिकताओं के तले दबे हुए समाज के रूप में भी स्त्री-समाज को देखा जा सकता है। अधिकार केंद्रित सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण के लिए स्त्री-समाज की परख अनिवार्य है।

प्रेमचंद ने अपनी बहुत सी कहानियों में भारतीय स्त्रीत्व के विभिन्न रूप दर्शाये हैं। भारतीय स्त्री की पतित अवस्था हमेशा प्रेमचंद के मन को कचोटती रही। वे मानते थे कि इसका मुख्य कारण सामाजिक और धार्मिक आचार-रीतियाँ और सनातन मूल्य संहितायें हैं। धार्मिक अंधविश्वास और रूढियाँ, सामाजिक गठबंधन, विदेशी आक्रमण आदि ने बचपन से ही उसे विवाहिता, विधवा, वेश्या और दासी की भिन्न भिन्न अवस्थायें प्रदान कीं। अशिक्षा और आर्थिक असुरक्षा ने उसकी ज़िंदगी को नरक से भी हेय बनायी। पुरुष-प्रधान समाज ने अपने अधिकार और अर्थ से स्त्री को हमेशा वंचित रखा।

यद्यपि प्रेमचंद के समय में भारतीय स्त्री की पारंपरिक दशा में कुछ बदलाव आ गया था, मगर वह उच्च और संपन्न वर्ग तक सीमित रही। पढी-लिखी और नौकरीपेशा स्त्रियों की संख्या बहुत कम थी। इन अल्पसंख्यकों का भी सामाजिक स्तर शोभनीय नहीं था। भारत की अधिकाँश नारियाँ पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में किसी न किसी यंत्रणा से पीड़ित रहीं। स्त्रियों की हैसियत बढ़ाने और उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए तत्कालीन सामाजिक सुधारक और राजनीतिक नेता प्रयत्नशील थे। उन्नीसवीं सदी में राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद विद्या सागर, विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द जैन आदि के निरंतर प्रयास से स्त्री-शिक्षा का

प्रसार होने लगा। फलस्वरूप लड़कियाँ स्कूल जाने लगीं, पर वे स्कूल जाने योग्य उम्र के अनुपात में बहुत कम थीं। ये आठ-नौ बरस तक आते आते स्कूल छोड़ती थीं। 1911-12 ई. में भारत में साक्षरता का प्रतिशत छह था और केवल 2.7 प्रतिशत लड़कियाँ ही स्कूल जा पाती थीं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध भारतीय जन-मानस में जो मान्यतायें थीं, वह कम होने लगीं और सरकारी और गैर सरकारी प्रयत्नों के फलस्वरूप लड़कियों के लिए भारत भर में कालेजों और स्कूलों की स्थापना हुई।¹ 1926-27 की अवधि में भी उनमें पढनेवाली लड़कियों की संख्या में आशाजनक वृद्धि नहीं हुई। इसके मूल में भारतीय जन-मानसिकता है जिसने स्त्री शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दी थी। अशिक्षित होने के कारण अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, भाग्यवाद, दुराचार आदि के प्रति उनमें आस्था बनी हुई थी। इनसे मुक्ति पाने या इनके विरुद्ध आवाज़ उठाने की शक्ति उनमें नहीं थी।

आगे चलकर सामाजिक सुधार आन्दोलनों, कृषक आन्दोलनों और स्वाधीनता आन्दोलनों के फलस्वरूप स्थिति में कुछ सुधार आने लगे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद स्त्रियाँ भी नारी मुक्ति आन्दोलनों में भाग लेने लगीं। 1917 में स्त्रियों का पहला प्रतिनिधि मंडल तत्कालीन "सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया", लॉर्ड मोण्टेग्यू से मिला और स्त्रियों के लिए समान मताधिकारों की माँग की।² स्त्रियों ने अनेक जन-सभाएँ आयोजित कीं और सरकार के पास

1. शंभूनाथ-प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन-1988-पृ.120

2. वही-पृ.123

अपनी माँगें पेश कीं। 1917 के इंडियन नेशनल कांग्रेस के अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता एनी बेसेण्ट ने की थी, स्त्रियों के लिए समान राजनीतिक अधिकार की माँग स्वीकार की गयी। 1929 ई. तक प्रत्येक प्रन्तीय असेम्बलियों ने स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया।

स्त्रियों के अपने ढंग का पहला संगठन 1927 में स्थापित हुआ जिसका नाम था "द आल इंडिया वुमेन्स कॉन्फेरेन्स"। इसने नारी शिक्षा और सामाजिक उद्धार का कार्य किया। इसने विवाह, तलाक, उत्तराधिकार आदि से संबंधित कानून बनाने की माँग कीं। पर समाज के रूढ़िवादी वर्ग के विरोध और सरकार की उदासीनता के कारण ये कानून बन न सके। गाँधीजी के आह्वान के फलस्वरूप 1930 में हज़ारों स्त्रियाँ पर्दा त्यागकर दंडी मार्च में भाग लिया। फिर धीरे-धीरे राष्ट्रीय आन्दोलन ज़ोर पकड़ता गया तो मज़दूरों और कृषक वर्ग की स्त्रियाँ उसमें सम्मिलित होने लगीं। 1931 में शारदा एक्ट पास हुआ जिसके अनुसार विधवाओं को अपने पति की संपत्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होती है। इसका समर्थन करते हुए प्रेमचंद ने "हंस" में संपादकीय टिप्पणी लिखी। इसके कुछ दिनों बाद "नारी जाति के अधिकार" नामक दूसरी टिप्पणी लिखी जो समाज में स्त्री की हैसियत को बढ़ाने में सहायक हुआ। वे इसप्रकार हैं—एक विवाह का नियम स्त्री-पुरुष दोनों ही के लिए समान रूप से लागू हो, कोई पुरुष पत्नी के जीवन-काल में दूसरा विवाह न कर सके; पुरुष की संपत्ति पर पत्नी का पूरा अधिकार हो, वह उसे रेहन-रेहन बिक्री बिक्री जो चाहे कर सके; पिता की संपत्ति पर पुत्रों और पुत्रियों का समान अधिकार

हो; तलाक का कानून ज़ारी किया जाए और वह स्त्री-पुरुष दोनों ही के लिए समान हो; तलाक के समय स्त्री पुरुष की आधी सम्पत्ति पाये और यदि मौरूसी जायदाद हो, तो उसका एक अंश आदि।¹ स्पष्ट है, प्रेमचंद अपने समय के यथार्थ को जानने में जागरूक थे। उनकी रचनायें समय का साक्षी हैं।

प्रेमचंद के आधुनिकतावादी दृष्टिकोण ने स्त्री को पारंपरिक संकुचित दायरे से ऊपर उठाने की शक्ति प्रदान की। मगर उन्होंने इसके लिए कभी भी पश्चिमीकरण को नहीं अपनाया। उनके चिंतन में खुलापन था, समाज में स्त्री के समान अधिकार पर उन्होंने ज़ोर दिया, लेकिन पाश्चात्य संस्कृति पर, जो अभी तक भारत भर में व्याप्त हुई थी, उनका विश्वास नहीं था। पश्चिमी सभ्यता का उन्मुक्त जीवन, पारिवारिक संबंधों की शिथिलता, आत्मीयता की कमी आदि से वे विमुखता प्रकट करते थे। उन्होंने पश्चिमी सभ्यता के पूजारी जवाहरलाल नेहरू से अधिक गाँधीजी का समर्थन किया जो सच्ची शिक्षा और घरेलू उद्योगों से स्त्री का सम्मान बढ़ाना चाहते थे।

"बड़े घर की बेटी" का चित्रण भारतीयता की महत्ता को उद्घोषित करने के लिए था। परिवार का आधार ही स्त्री है। जिस परिवार में स्त्री बिगड़ी हुई है, उस परिवार का टूटन अवश्यभावी है। स्त्री की सहिष्णुता, करुणा और त्याग से ही परिवार सुदृढ़ और समर्थ बनता है। आनंदी के बड़प्पन का आधार भी यही है। पाश्चात्य परिवारों की शिथिलता का आधार इस बड़प्पन

1. शंभूनाथ-प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन-1988-पृ.25

का अभाव है। परिवार में कलह, शोर और टूटन स्वाभाविक है जब दूसरे घर की लड़की बहू के रूप में आती है। नयी बहू उसे बिगाड़ भी सकती है और बना भी सकती है। अपने पति श्रीकंठ और उसके छोटे भाई लालबिहारी सिंह का वैमनस्य मिटाने में आनंदी का विवेक और उसकी दया सहायक निकले। पिता बेनी माधवसिंह का कथन प्रेमचंद का ही कथन है- "बड़े घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं। बिगड़ता हुआ काम बना लेती है।"¹

राजनीति के क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में शुरू हुई। गाँधीजी का आह्वान इसका प्रेरक घटक रहा। 1925 अक्टूबर 8 के "यंग इंडिया" में उन्होंने इसका आह्वान किया था। देश की स्वतंत्रता प्रेमचंद की बड़ी अभिलाषा थी। 1930 में उन्होंने "विशाल भारत" में लिखा- "इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वाधीनता संग्राम में सफल हो। मैं दौलत और शोहरत का इच्छुक नहीं हूँ।...हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्च कोटि की रचनायें छोड़ जाऊँ, लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतंत्रता प्राप्ति ही हो।"² स्वतंत्रता संग्राम में स्त्रियों की भागीदारी ने, दरअसल, संग्राम की तीक्ष्णता ही नहीं बढ़ायी अपितु स्त्रियों का अपना व्यक्तित्व, नेतृत्वगुण और उत्तरदायित्व बोध को भी बढ़ावा दिया। "पत्नी से पति" नामक कहानी की नायिका गोदावरी के पति की नौकरी स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के कारण चली जाती है। पर वह साहसपूर्वक पति की ज़िम्मेदारी का भार

1. प्रेमचंद-बड़े घर की बेटि-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ-1997-पृ.80

2. शंभूनाथ-प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन-1988-पृ.14

उठाती है। गोदावरी का यह बदलाव स्वतंत्रता संग्राम की देन है। "समर यात्रा" नामक कहानी में प्रेमचंद ने बूढ़ी औरत नोहरी का चित्रण करके यह दिखाया है कि एक बूढ़ी ग्रामीण स्त्री किस तरह युवकों के जुलूस का नेतृत्व कर रही है। "जेल" नामक कहानी में मृदुला जो जुलूस निकालती है उसमें पचास हज़ार आदमी शामिल होते हैं। उसकी साहसिकता इतनी बढ़ जाती है कि वह गिरफ्तार होने में तैयार हो जाती है। "आहुति" नामक कहानी में रूपमणी नामक युवती की वीरता का चित्रण है। वह धनी युवक आनंद की जगह एक गरीब, मगर देशप्रेमी विश्वंभर से विवाह करके स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भागीदारी को और भी मज़बूत बनाती है।

प्रेमचंद ने नारियों की एक ऐसी विवशता को भी चित्रित किया है जो उन्हें समाज में वेश्या-जीवन बिताने के लिए बाध्य करती है। यह स्त्री-जीवन का एक कारुणिक पक्ष है जिसे आज तक किसी समाज सुधारक या कोई सरकार सुलझा नहीं सका। यह अवस्था इसलिए करुणिक बन जाती है कि कोई भी स्त्री अपनी मर्ज़ी से वेश्या बनना नहीं चाहती। इस अवस्था के कई कारण हो सकते हैं। सबसे पहला कारण पुरुष प्रधान समाज है जहाँ स्त्री केवल भोग्या है। सामंती सभ्यता दूसरा कारण होता है जिसमें स्त्री भोगविलास और दासता का माध्यम मात्र है। अशिक्षा और एक कारण है जिसके कारण छल-कपट और शोषण के शिकार होकर उसे वेश्यावृत्ति को अपनाना पड़ा। आर्थिक विपन्नता के कारण भी स्त्री को वेश्या बनना पड़ता है जिससे जीवन-यापन में कुछ सहायते मिले। वेश्या को समाज हमेशा उपेक्षा की दृष्टि से

देखता है। उसके परिवार, बच्चे सब दूसरों की दृष्टि में हेय माने जाते हैं चाहे वे सत्मार्ग की ज़िंदगी बितानेवाले हों। प्रेमचंद ने "'दो कब्रें"' नामक कहानी में जुहरा नामक वेश्या की पुत्री सुलोचना और उसके पति रामेन्द्र की ज़िंदगी का वर्णन किया है जिन्हें समाज के परिहास और व्यंग्य से अपनी ज़िंदगी खो जाती है। यद्यपि रामेन्द्र उच्च विचारवाला है तथापि कुत्सित मनवालों के व्यवहार से उसके मन में सुलोचना के प्रति शंका उत्पन्न होती है और वह सुलोचना की आत्महत्या में परिणत हो जाती है। कहानी का दूसरा पात्र कुंवर साहब द्वारा प्रेमचंद व्यक्त करते हैं कि वेश्यावृत्ति एक मज़बूरी है। इसे मिटाने के लिए समाज के प्रतिष्ठित लोगों द्वारा उन्हें सम्मानित कराना चाहिए— "'बहुत संभव था कि एक प्रतिष्ठित आदमी से नाता रखने का अभिमान उसके जीवन में एक नये युग का आरंभ करता।"¹

प्रेमचंद का समाज भारतीय समाज का अच्छा-खासा चित्र ही प्रस्तुत करता है। उनकी यथार्थ दृष्टि की कुछ विशेषतायें हैं। सामाजिक यथार्थ का सामान्य चित्र प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य नहीं था। वे यथार्थ में गुंफित यथार्थ को अक्सर रेखांकित करते हैं। यथार्थ का आंतरिक विस्तार इस कारण से उनकी कहानियों में संभव हो पाता है। यथार्थ की कई पतें उनकी कहानियों में मिलती हैं जो उस समय के समाजशास्त्र को पहचानने में सहायक हैं।

1. प्रेमचंद-दो कब्रें-इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ-1997-पृ.314

प्रसाद की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद समकालीन थे। प्रेमचंद जिस सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिवेश से गुजरे थे, प्रसाद भी उसके सहभागी थे। प्रेमचंद पूर्णतया समाज-सापेक्ष सत्य से जुड़े साहित्यकार के रूप में जाने गये। मगर प्रसाद सामाजिक सापेक्षताओं से अधिक वैयक्तिक और कल्पनापरक लोक में अधिक विचरण करनेवाले रहे। फिर भी उनकी कहानियों में सामाजिक विषमताओं, नैतिक मूल्यों के विघटन और युगीन परिस्थितियों के चित्रण मिलते हैं जो गहराई से पाठकों के मन पर अंकित होते हैं। रूमनियत के बावजूद वे अपने समाज के प्रति सचेत, सजग और सामाजिक कुरूपताओं से क्लान्त और उद्विग्न थे। "जैसे प्रेमचंद आदर्श से चलकर यथार्थ तक पहुँचे थे, उसीप्रकार प्रसाद जी रूमनियत से चलकर यथार्थ तक पहुँचे हैं। जैसे प्रेमचंद जी अपनी आदर्शवादिता से अंत तक पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाए उसीप्रकार प्रसाद जी भी अपनी रूमनियत से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाए।"¹ प्रसाद की कहानियाँ भारतीय परंपरा, आधुनिकता और अपने निजी व्यक्तित्व का सम्मिश्रण हैं।

जयशंकर प्रसाद की "आकाश-दीप" नामक कहानी भारतीय नैतिकता बोध को उजागर करनेवाली कहानी है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी इस कहानी में प्रसाद ने चंपा के द्वारा अपने मनोगत को व्यक्त किया है। चंपा

1. डॉ.हरदयाल-कहानीकार जयशंकर प्रसाद-हिंदी कहानी परंपरा और प्रगति-2005-पृ.94

आदर्शनिष्ठ भारतीय मन का प्रतीक है। अपने प्रेमी जलदस्यु बुद्धगुप्त का प्रेम या उसकी अपार धनराशी से उसका मन कभी भी चंचल नहीं होता। बुद्धगुप्त तो अपनी प्रेमिका को रानी बनाना चाहता है और उसके प्यार में अपने प्राण को विसर्जित करना चाहता है। बुद्धगुप्त के बार बार इन्कार करने पर भी चंपा विश्वास करती है कि उसके प्रिय पिताजी का घातक बुद्धगुप्त ही है। वह यह भी जान लेती है कि उसके चरित्र में अब भी कोई परिवर्तन नहीं आया है। वह उस पर ऐसा आरोप करती है- “तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी परंतु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हैं। मेरे आकाश-दीप पर व्यंग्य कर रहे हैं।”¹ चंपा संकल्प कर लेती है कि एक कुत्सित ग्रन्थीवाले पति के साथ रहने के बजाय अविवाहिता बनकर रहना ही बहत्तर है। अपने प्रेमी का, चंपा का तिरस्कार, उच्च भारतीय नैतिकता बोध है। चंपा के द्वारा प्रसाद ने भारतीय संस्कृति का यशोगान किया है जो हमारे समाज बोध से भिन्न नहीं है।

"ममता" नामक कहानी में विधवा ममता के आदर्श व्यक्तित्व का चित्रण भी प्राचीन गौरवशाली महनीय गुण त्याग और ममता के आधार पर किया गया है जो आधुनिक काल की स्वार्थलिप्सा युक्त जीवन के अंधकार में प्रकाश-स्तंभ की तरह आलोकित रह सकता है। अपनी यौवनावस्था में विधवा बन जाने पर भी, पिता द्वारा भेंट की गयी सारी संपत्ति का त्याग, एक विदेशी को, विशेषकर, अपने पिता के वध के कारण बन गये विधर्मी को विपत्ति की वेला में शरण देना, अपना

1. जयशंकर प्रसाद-आकाश-दीप- प्रसाद की संपूर्ण कहानियाँ-1988-पृ.111

शेष जीवन दुखितों के लिए समर्पण आदि भारतीय स्त्रीत्व की महिमार्थें हैं। "पुरस्कार" कहानी की पृष्ठभूमि भी ऐतिहासिक है। मगर संवेदनायें आधुनिक हैं। वैयक्तिक प्रेम और देशप्रेम दोनों को साथ साथ निभानेवाली मधूलिका प्रसाद की दार्शनिक दृष्टि की परिचायिका है। उसमें त्याग और समर्पण हैं। अपने जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन खेती को राजा को समर्पित कर, इसके लिए राजा द्वारा दिये गये धन जो उसकी खेती के वास्तविक मूल्य से चौगुना था, त्यागना और दूसरी ओर अपने देशद्रोही प्रिय प्रेमी का साथ निभाने के कारण राजा से प्राणदंड की माँग आदि उसके नीतिबोध के अनुकूल है।

विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

कौशिक प्रेमचंद की धारा में लिखनेवाले उनके लगभग समकालीन कथाकार हैं। जनवादी दृष्टिकोण अपनाने के कारण वे प्रेमचंद के समकक्ष ठहरते हैं। प्रेमचंद की तरह आदर्शवादिता और यथार्थोन्मुखता उनकी कहानियों की विशेष मुहर हैं। रामदरश मिश्र दोनों की तुलना यों करते हैं- "दोनों ही लेखकों ने सामाजिक और पारिवारिक विषमताओं और समस्याओं का उद्घाटन करते हुए मनुष्य के भीतर निहित सदाशयता को उजागर किया है और उसी सदाशयता से विषमता या समस्या का समाधान प्रस्तुत होता हुआ दीखता है।"¹

सामाजिक सोच्छेद्यता से लिखी गई उनकी कहानियों में समाज के विभिन्न पक्ष के लोग प्रत्यक्ष होते हैं। ये लोग जीवंत होकर पाठकों के सामने

1. रामदरश मिश्र-हिंदी कहानी: अंतरंग पहचान-1977-पृ.13

इसलिए खडे होते हैं कि उनकी ज़िंदगी की समस्यायें और उनके संघर्ष प्रासंगिक हैं। उनकी कहानियाँ प्रमुखतः समाज के मध्य वर्ग, निम्न मध्य वर्ग और निम्न वर्ग की जनता को लक्ष्य करके लिखी गई हैं। कौशिक जी ने पाया कि इन्हें ज़िंदगी की जो मज़बूरियाँ झेलनी पड़ीं इनका आधार किसी न किसी सामाजिक उलझन या वैयक्तिक या सत्ता केंद्रित अनैतिक आचार हैं। इसलिए उन्होंने अपनी कहानियों में उन्हें सुलझाने की कोशिश में किसी न किसी हल को भी प्रस्तुत किया है।

कौशिकजी पाते हैं कि सामाजिक विषमता का एक कारण अधिकार और पद प्राप्त होते वक्त व्यक्ति में होनेवाला चारित्रिक परिवर्तन है। यह चारित्रिक परिवर्तन बहुताया राजनीति के क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। ईमानदार और आदर्श व्यक्ति जनता के इष्ट पात्र बन जाने से चुनाव में जीत जाते हैं। मगर हमेशा यह दिखाई पड़ रहा है कि ऊँचे पद पर उपविष्ट होने से उनके आदर्श और ईमानदारी विलुप्त हो जाते हैं और वे ही जनता के मुख्य शत्रु बन जाते हैं। उनकी कहानी "कुपात्र" का नायक शिवसिंह इन लोगों का प्रतिनिधि है। वह अंग्रेज़ी पढा-लिखा गाँव का एकमात्र युवा है जिसका गाँव में काफी मान था। शिवसिंह की सलाह और परामर्श का गाँववाले बड़ा आदर करते थे। अंग्रेज़ी पढा-लिखा होने के कारण गाँव पर पुलिस का बेजा दबाव भी नहीं पड़ने देता था। इसलिए गाँव के मुखिया के निर्वाचन के अवसर पर लोगों के लिए और विकल्प की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। हर राजनीतिक नेता की पृष्ठभूमि भी यही होती है। उनके वास्तविक स्वरूप का बहिर्गमन यहाँ से शुरू

होता है जैसेकि शिवसिंह का हो गया। उसकी आवाज़ और उसके व्यवहार में खरापन आने लगा। वह लोगों को गालियाँ देने और धमकियाँ देने लगा। उसे आते देख उसकी सलामी न करने से उसने रामचरण को ऐसे धमकाया कि "आइन्दा ऐसा कभी न हो। हम गाँव के मुखिया हैं—जानते हो—सरकार ने हमको मुखिया बनाया है। हम जिसे चाहें बना दें जिसे चाहें मिट्टी में मिला दें। इसलिए ज़रा सावधान रहना।"¹ दूसरी बार एक वयोवृद्ध से कहा कि "हम गाँव के मुखिया हैं, गाँव के हाकिम। हम जो चाहेंगे करेंगे—उसमें किसी दूसरे को बोलने की ज़रूरत नहीं है।"² अधिकार और धन कोमल संवेदनाओं को कड़ा बना देते हैं। घमंड की इस नशा को उतारने के लिए कहानीकार एक अच्छा सा उपाय भी देते हैं कि जनता इकट्ठे होकर इनका सामना करे। गाँववाले शिवसिंह की पिटाई करते हैं और पुलिस में रिपोर्ट देने पर गवाही देने कलिए कोई भी नहीं था। कहानीकार का आदर्शवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। वे जनता से आह्वान करते हैं कि कमीनेपन को विद्रोह से सामना करना चाहिए, इसीमें ही समाज की भलाई है।

सरकार और ज़मींदारों द्वारा किसान लोगों पर होनेवाले शोषणों और अत्याचारों के प्रति वे असहिष्णु थे। किसान एक ओर प्राकृतिक विषमताओं से त्रस्त थे तो दूसरी ओर साहूकारों, ज़मींदारों और सरकार के अन्यायों से भी पीड़ित थे। किसान सभा और किसान आन्दोलनों की शुरूआत से उन्हें इन

1. विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक—कुपात्र-जीत में हार (क.सं)-1959, पृ.56

2. वही—पृ.57

अत्याचारों से कुछ राहत मिलने लगी थीं। कांग्रेस के प्रवर्तक शोषकों के विरुद्ध इन्हें सचेत करने लगे। किसान भी अब सजग बनने लगे। उनकी "औचित्य" नामक कहानी में कांग्रेस से डरनेवाले ज़मींदार का जिक्र है—"दारोगा जी, किसानों का भय नहीं है, भय कांग्रेसवालों का है। ये लोग कहीं किसानों को भड़का न दें। यदि कांग्रेसवाले न भड़कावें तो किसानों का इतना साहस नहीं हो सकता कि वे हमारे सामने सिर उठावें। इसके अतिरिक्त यह भी डर है कि मार-पीट करने में कहीं कोई मर-मरा गया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। हम लोगों की तो हर तरह मुसीबत है।"1 सरकारी अफसरों की रिश्तखोरी और उनके अत्याचार से भी लोग जागृत हो उठे हैं। गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस कार्यकर्ता ऐसे लोगों के विरुद्ध खड़े हो गये। प्रस्तुत कहानी में ज़मींदार और दारोगा के संवाद से यह स्पष्ट होता है—"अजी आपकेलिए क्या कमी है। आपके लिए ऊपर की आमदनी काफी है।"....."सो भी कांग्रेस वालों के मारे बन्द है। आज कल तनख्वाह पर ही दारोमदार है।"2

महात्मा गाँधी के अहिंसा सिद्धांत का कौशिक जी पर गहरा प्रभाव पड़ा है। फसल अच्छे न होने पर लगान वसूल न कर सकनेवाला ज़मींदार जब कृषकों पर भड़क उठने लगा तो त्रिपाठी के उपदेश का आधार भी यही है—"दारोगा जी का क्या बिगड़ेगा, वह कल बदल कर दूसरे थाने में चले जायेंगे। आपको यहीं रहना है। दारोगा जी सरकार से तनख्वाह पाते हैं, आपका काम

1. विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक-औचित्य-जीत में हार(क.सं.)-1959-पृ.74

2. वही-पृ.75

इन्हीं किसानों से चलेगा। इसलिए आपको इस समय किसानों का साथ देना चाहिए। यदि इस समय आप इनका उद्धार कर लेंगे तो भविष्य के लिए ये लोग आपके गुलाम हो जाएँगे और जो आपने मार-पीट कराई तो सदा के लिए उनके दिल में आपकी ओर से खोट पैदा हो जायेगा जो आपके लिए हानिकारक होगा।¹ कौशिकजी मानते हैं कि अहिंसात्मक विद्रोह ही खून बहानेवाले विप्लव से जनता की भलाई करेगा। भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद जैसे क्रांतिकारियों की नीति से, वे गाँधीवाद की ओर आकृष्ट हुए।

मध्यवर्गीय ज़िंदगी की विडंबनायें कौशिकजी की कहानियों के विषय रही हैं। संक्रमण काल के बहाव में मध्यवर्ग अपने अस्तित्व को भूलने लगे। फलतः वे उच्च वर्ग की हैसियत भी न पा सका, न निम्न वर्ग से हिल मिल सका। ज़िंदगी की सफलता के लिए वे तरह तरह के सिद्धांत अपनाते लगे जो खोखले होने पर सफलता नहीं मिली। वे आदर्शवान होने का डींग मारने लगे, पर सचमुच वे आदर्शविहीन हो गये। उनके लिए धन, संपत्ति और पद जीवन के सबसे प्रमुख घटक बन गये। इससे संबंधों और रिश्तों का टूटना भी उनके लिए नगण्य हो गया। दहेज और उससे संबंधित कई समस्यायें सदा समाज को चुनौती देती रही हैं। संबंधों का विच्छेद, तलाक, बहुओं की आत्महत्या, उनका वध आदि इससे जुड़ी हुई समस्यायें हैं। आजकल लोग दहेज नहीं माँगते, पर यह माँग पेश करते हैं कि वर के समाज के पोज़िशन के अनुसार कुछ देना। अगर यह काफी नहीं है तो तय की गयी शादी को

1. विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक-औचित्य-जीत में हार(क.सं.)-1959-पृ.82

ठुकराने में भी वे नहीं हिचकते। अंत में लोक-लाज के भय से लड़कीवाले सब शर्तों के लिए तैयार हो जाते हैं। "जाल" नामक कहानी का प्रतिपाद्य विषय यही है। वर्माजी की लड़की की शादी मुंशी सीताराम के लड़के के साथ तय हो जाता है तो यह निश्चित हुआ कि लेन-देन के बावत कुछ नहीं कहना है। लेकिन शादी के दिन आते आते लड़केवालों से वर्माजी को एक लंबी सूची मिलती है जिनके अनुसार उन्हें सामान इकट्ठा करना है। इसको लेकर वर्माजी और मुंशी के साथ कुछ कहा-सुनी हो जाती है, लेकिन अंत में वर्माजी को सब शर्तें माननी पड़ती हैं। अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण से कौशिकजी इस समस्या का हल ऐसा करते हैं कि पहले लड़कीवालों को उनके शर्तों को स्वीकार करना चाहिए और शादी हो जाने के बाद अपनी मर्जी के अनुसार उन्हें टालते रहना है। कौशिक जी लोगों को यह चेतावनी देते हैं कि "ठहरौनी न करनेवाले ठहरौनी करनेवालों से ज़्यादा खतरनाक होते हैं।"¹

कौशिक की कहानियाँ प्रेमचंद के रचना-संसार से भिन्न नहीं है। समाज का यथार्थ, जीवन की समस्याएँ आदि उनके विषय रहे। जो समाज उन्होंने सृजित किया वह प्रेमचंद की तरह गतिशील ही रहा।

सुदर्शन की कहानियों में समाजिक मूल्यों के संकेत

प्रेमचंद के बाद के साहित्यकारों में सुदर्शन का विशेष महत्व है। प्रेमचंद की यथार्थवादी कहानी की परंपरा को उन्होंने आगे बढ़ाया। अपने समय की माँग उनकी कहानियों में मुखरित हुई है।

1. विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक-जाल-जीत में हार(क.सं.)-1959-पृ.126

विदेशी सत्ता के अधीन त्रस्त होनेवाले अपने देशवासियों को विदेशियों के विरुद्ध खड़ा करने के लिए उन्होंने अपनी रचना को माध्यम बनाया। सच्चा गाँधीभक्त होने के कारण उन्होंने गाँधीवाद का प्रचार किया। गाँधीजी द्वारा आयोजित विदेशी वस्त्रों के बायकॉट पर लिखी गई कहानी है "हार-जीत"। जनता में देशप्रेम की चेतना को जागृत करनेवाली इस रचना का विशेष महत्त्व है। समाज के संपन्न वर्गों को इस धारा में ले जाना बहुत मुश्किल हुआ था, क्योंकि ऐशे-आराम की जिंदगी बितानेवाले ये लोग हमेशा अंग्रेजों के स्तुति-गायक थे। साधारण मध्य वर्ग के लोगों से वे कोसों दूर रहे। कभी कभी वे यह भी भूल गये कि ये साधारण जनता भी अपने देश के ही लोग हैं। ऐसे लोगों का मन-परिवर्तन लेखक का उद्देश्य रहता है। सेठ नरोत्तमदास बड़े प्रसिद्ध व्यापारी हैं। विलायती कपड़ों के बहिष्कार के आन्दोलन को वे तुच्छ मानते थे, साथ ही परिहास भी उड़ाते थे—"देखिए साहब, यह गुल-गपाडा केवल चार दिन का है। थोड़े दिन और ठहर जाइए। फिर वही विलायती माल और वह यह लोग। क्या आप समझते हैं, कि विलायती कपड़े की मार्केट बन्द हो जाएगी! कुछ ही दिनों में देख लेना, लोग इस खादी से तंग आ जायेंगे।"¹ लेकिन अपने बेटे और अपनी पत्नी के प्रभाव में आकर उन्होंने अपने मन को बदल डाला और वह स्वदेशी वस्त्र धारण करने लगा।

समाज की कुरूपताओं के प्रति वे जागरूक थे। सरकारी अफसरों की भ्रष्टता, दायित्वहीनता और सामान्य जन का शोषण उसके संवेदनात्मक

1. सुदर्शन-हार-जीत-सुदर्शन की श्रेष्ठ कहानियाँ-1977-पृ.16

दिल को कचोटते रहे। इसका प्रतिफलन "राजा" नामक कहानी में प्रकट होता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह कहानी बीते हुए दिनों की यादगार है। वे समझाते हैं कि जनतांत्रिक व्यवस्था के पहले राजाओं के शासन काल में जनता संतुष्ट और राजा अपनी प्रजाओं के प्रति सजग और उत्तरदायी थे। जनता के बीच से, जनताओं द्वारा चुने जानेवाले आजकल के जननेता, मगर, आदर्शहीन तथा सुखी हो गये हैं। जनता की माँगों से वे मुँह फेरते हैं। उनके कष्टों में सहायता करनेवाला कोई जन-नेता आज नज़र नहीं आता है। कहानीकार पूछते हैं—"आज ऐसा राजा लोग क्यों नहीं नज़र आते? उनको भ्रमण का शौक है, विषय-वासना का चाव है, परन्तु अपनी प्रजा के हित-अहित का ध्यान नहीं?"¹ अपने समय की जर्जरता को दूर करने के लिए वह इतिहास की याद दिलाकर जनता को सचेत करते हैं।

"अपनी तरफ देखकर" नामक कहानी सामाजिक सोच्छेयता पर लिखी गयी है। समाज में ऐसे अनेक लोग होते हैं जो अपनी गलतियों को छिपाकर दूसरों को उपदेश देने पर तुले हुए हैं। ऐसा भी होता है कि अपनी गलतियों को छिपाकर दूसरों को पुलिस के हवाले कर देते हैं। नेकी और ईमानदार साधूराम ने दफतर से इसलिए रुपयों की चोरी की कि उसकी पत्नी बीमार पड़ी थी और उसका और कोई आश्रय नहीं था। जब चोरी पकड़ी गयी तो उसकी कई बार की विनती के बावजूद, दफतर के सुपरिन्डेंट उसे पुलिस के हवाले करने की कोशिश करता है। पर अचानक सुपरिन्डेंट को अपने बीते

1. सुदर्शन-राजा-सुदर्शन सुमन(क.सं.)-1961-पृ.17

दिनों की याद आती है कि उन्होंने भी एक बार ऐसा किया था। मगर सौभाग्यवश चोरी पकड़ी नहीं गयी। उसका अन्तर्मन उसे कचोटने लगा तो वह साधूराम को क्षमा देने को तैयार हुआ। लाचारी और मज़बूरी मनुष्य को मुज़रिम बना देते हैं। ऐसे लोगों को दंड न देकर, उसकी मज़बूरी को समझना ही मानुषिकता है। बेबेसी के अवसर पर दिये जानेवाला दंड कभी कभी मनुष्य को चोर, गुण्डा या हत्यारा बना देता है। सूपरिन्डेंट के आदर्शात्मक चरित्र निर्माण द्वारा कहानीकार ने इस तथ्य को समझाया है।

सुदर्शन अपनी कहानियों में नष्ट होनेवाले नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की कोशिश करते हैं। "हार की जीत" नामक कहानी के द्वारा वे लोगों के सामने यह संदेश देते हैं कि छल या धोखेबाज़ी कैसे महनीय मानवीयता के सामने हार जाती है। डाकू खड्गसिंह के छल पर पंडित बाबा भारती की प्रतिक्रिया उसी मानवीयता को वहन करती है— "लोगों को अगर इस घटना का पता लग गया तो, तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे। दुनिया से विश्वास उठ जायेगा।" ¹ "मेरी प्रार्थना केवल यह है कि घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।" ² यह गहरी मानवीयता एक छल और धोखेबाज़ के मन में परिवर्तन की लहर उठाती है। वह घोड़े को वापस कर देता है। कहानीकार हिंसा को अहिंसा से जीतने का आह्वान करते हैं। गाँधीवाद का स्पष्ट झलक इस कहानी के द्वारा व्यक्त होता है।

1. सुदर्शन-हार की जीत-तीर्थयात्रा(क.सं.)-1961-पृ.93

2. वही-पृ.93

प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंदोत्तर युग जैसा कथा-यात्रा-विभाजन कहानी की अंतर्वस्तु में परिवर्तन के कारण है। उस दौर के तीन कहानीकारों ने सामाजिक यथार्थ से व्यक्ति के यथार्थ को अधिक मुखर बना दिया था। लेकिन उन्हीं के समय प्रेमचंद की परंपरा को ही यशपाल ने आगे बढ़ाया था। यह दौर प्रेमचंद-युग और आधुनिक युग के बीच एक तरह से संक्रमणशील समय को दर्ज करनेवाली कहानियों का है।

यशपाल की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

यशपाल सक्रिय क्रांतिकारी और सजग साहित्यकार हैं। प्रेमचंद के बाद यथार्थवादी साहित्यकारों में उनका विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपने बहुआयामी संघर्षमय जीवन में जो देखा-जाना-भोगा, उसको पूरी ईमानदारी और सहजता के साथ प्रस्तुत किया। पहले वे राजनीतिज्ञ थे, बाद में साहित्य के क्षेत्र में आये। राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ ही वे सामाजिक परिवर्तन और पुनर्गठन की चाह करते थे। सबसे पहले वे महात्मा गाँधी के अहिंसा-सिद्धांत और असहयोग आन्दोलन के प्रभाव से राजनीति के क्षेत्र में आये पर बाद में, गाँधीवाद के विचार-दर्शन और राजनीतिक अन्तर्विरोध से निराश होकर "हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र सेना" नामक संगठन के प्रवर्तक हुए।

स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने से 1932 से 1938 तक वे जेल में थे। उस अवधि में राजनीति के क्षेत्र में ऐतिहासिक घटनायें हो चुकी थीं-भगतसिंह,

राजगुरु, सुखदेव और चंद्रशेखर आजाद शहीद हो चुके थे। जेलवास के बीच उन्हें मार्क्सवादी दर्शन के अध्ययन का अवसर मिला जिसके प्रति वे पहले ही आकर्षित थे। दरअसल यह घटना उनके वैयक्तिक जीवन में एक नया मोड़ लाया। जेल से लौटने के बाद राजनीतिक क्षेत्र से उनका नाता टूट गया। फिर भी मार्क्सवाद से उनका इतना गहरा लगाव रहा कि उन्होंने "विप्लव" नामक पत्रिका में "मार्क्सवाद की पाठशाला" शीर्षक स्तंभ शुरू किया। यशपाल की कहानियों में मार्क्सवादी रुझान के कारण प्रगतिशीलता का आग्रह है। श्री दूधनाथ सिंह का कथन है - "प्रेमचंद मार्क्सवाद की जानकारी के बगैर भारतीय वर्गों के भीतरी अंतर्विरोधों और उनके विचित्र से संघर्ष को अपनी संपूर्ण प्रामाणिक यथातथ्यता में चित्रित करने के कारण, और समाज के अगुवा वर्गों-किसान-मज़दूर-की सच्ची पक्षधरता के कारण जहाँ सही मायनों में प्रगतिशील हैं- वहाँ यशपाल मार्क्सवाद का उपयोग व्यक्तिगत और सामाजिक स्थितियों को परिभाषित करने केलिये करते हैं।"¹

उन्होंने अपनी कहानियों में समाज के दोनों पक्षों-शोषक एवं शोषित-को लिया जिनके द्वारा समाज का अध्ययन पूँजीपति और सर्वहारा, दो वर्गों में बाँटकर किया गया है। समाज के सांस्कृतिक पक्ष को लेकर पुरातन धार्मिकता और परंपरा की कटु आलोचना की गयी है तथा अर्थहीन मनुष्य की मानसिक संकीर्णताओं तथा घुटन का पर्दाफाश भी किया है। उनकी राय में

1. दूधनाथ सिंह- हिंदी कहानी (भूमिका)-सार्थक कहानियाँ-1987-पृ.19

समाज में दो श्रेणियाँ हैं—एक, धन-संपत्ति की अधिकता में सुख का भोग करनेवाला धनिक वर्ग और दूसरा, अपना खून-पसीना बहाकर भी दो जून रोटी न कमा पानेवाला दरिद्र वर्ग। उनकी कहानियों का विश्लेषण करते समय जान पड़ता है कि उनकी सहानुभूति हमेशा दरिद्र वर्ग के प्रति है।

"दुख का अधिकार", "दुख" आदि कहानियों में उन्होंने आर्थिक समस्या को उठाया है। मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव ने उन्हें आर्थिक समस्या को ही सामाजिक समस्याओं का निदान मानने को प्रेरित किया। अतः उनकी बहुत सारी कहानियों में आर्थिक संकट को कथानक का आधार बनाया है। "दुख का अधिकार" कहानी का प्रमुख पात्र बुढ़िया खटीकन, अपने इकलौते बेटे की मृत्यु हो जाने पर, और कोई आसरा न पाकर खरबूजे बेचने पर बाज़ार चली जाती है। मगर सफेदपोश, खाते-पीते लोगों को यह अच्छा नहीं लगता। एक आदमी ने घृणा से थूकते हुए कहा - "क्या ज़माना है। जवान लड़के को मरे पूरा दिन नहीं बीता और यह बेहया दूकान लगा के बैठी है"। दूसरे साहब अपनी दाठी खुजलाते हुए कह रहे थे - "अरे जैसी नीयत होती है अल्ला भी वैसी ही बरकत होता है"। सामने फुटपाथ पर खड़े एक आदमी ने दियासलाई से कान खुजलाते हुए कहा - "अरे, इन लोगों का क्या है, यह कमीने लोग रोटी के टुकड़े पर जान देते हैं। इनकेलिए बेटा-बेटी, खसम-लुगाई, धर्म-ईमान सब रोटी का टुकड़ा है।"¹ उत्पीड़ित और शोषित वर्ग के

1. यशपाल- दुख का अधिकार-संपूर्ण कहानियाँ (भाग1)-2002-पृ.234

पक्षधर यशपाल उनकी विवशता इन शब्दों में व्यक्त करते हैं - "कल जिसका बेटा चल बसा, वह बाज़ार में सौदा बेचने चली है, हाय रे पत्थर का दिल! शोक करने, गम मनाने के लिए भी सहूलियत चाहिए और दुखी होने का भी एक अधिकार होता है।"¹ असहाय और विधवा के संरक्षण या देखभाल के लिए कोई व्यवस्था समाज में मौजूद नहीं है। समाज वृद्ध जनों के प्रति उपेक्षाभाव रखते हैं—इस तथ्य की ओर यशपाल इशारा करते हैं।

"दुख" उनकी ऐसी एक कहानी है जिसमें उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि गरीबी से बढ़कर संसार के सारे दुख ऊपरी और झूठे हैं। समाज का एक वर्ग दुख को फैशन और शोक की तरह लिया जाता है। जिनके पास खाने-पहनने को पूरा है, वे छोटी-छोटी बातों को दुख का कारण मानकर दुखी होते हैं। इस कहानी के द्वारा उन्होंने ऐसे लोगों के दुख की धारणा को गलत और निराधार सिद्ध किया है। कहानी के नायक दिलीप की पत्नी ऐसे ही एक विलक्षण दुख से पीड़ित रहती है। उसका दुख इस बात को लेकर है कि दिलीप उसके सहेली के साथ दूसरे शो में सिनेमा देखने चला गया था। दिलीप भी पत्नी के इस आचरण और उपेक्षा से दुखी हो जाता है और उसी की झोंक में उसे दिखाई देता है, सच्चा दुख—गरीबी का दुख। ठिठुरनेवाली सर्दी की रात में अपनी तथा माँ की भूख मिटाने के लिए सौदा बेचने वाले लड़के को पाकर उसे अपना दुख बड़ा बनावटी और नकली लगने लगता है। पत्नी के पत्र की यह पंक्ति, "मैं तो दुख देखने के लिए ही पैदा हुई हूँ"—पढ़कर उसके मन में घोर

1. यशपाल— दुख का अधिकार—संपूर्ण कहानियाँ (भाग1)—2002-पृ.235-236

वितृष्णा जागती है और वह पत्र फाड़कर फेंक देता है। इस कहानी के माध्यम से यशपाल ने एक बड़े सत्य की तरफ संकेत किया है— सुख आदमी को स्वार्थी, झक्की और आत्मकेंद्रित बनाता है। कोई दूसरा उसे छीन न ले यह आशंका आदमी-आदमी के बीच अविश्वास को जन्म देती है। दुख आदमी को दूसरे से जोड़ता है, अपना दुख दूसरे से बाँटकर आदमी विश्वास और मनुष्यता का संबन्ध बनाता है। "मनुष्य-मनुष्य में कितना भेद होता है, परंतु मनुष्यत्व एक चीज़ है जो कभी-कभी भेद की सब दीवारों को लांघ जाता है।"¹ कहानी इस बड़े सत्य से हमारा साक्षात्कार कराती है।

उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त झूठी प्रतिष्ठा-पालन की बुराई पर करारी चोट की है। दरअसल, भारतीय लोगों की इस विचित्र मानसिकता के पीछे अर्थाभाव की समस्या ही मुख्य कारण रही। साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी व्यवस्था के शिकार बना मध्यवर्ग अपनी गरीबी और विवशता पर परदा डालकर रईसों की ज़िन्दगी बिताना चाहता है। "परदा" नामक कहानी में लेखक ने ऐसे एक परिवार का चित्र प्रस्तुत किया है जो निर्धन होते हुए भी अपने अतीत गौरव की रक्षा करने के लिए घोर कष्ट सहकर, अपनी गरीबी दूसरों की दृष्टि से छिपाने की प्राण-प्रण से चेष्टा करता है। झूठी प्रतिष्ठा की रक्षा का यह चित्र अत्यंत हृदयद्रावक है। चौधरी पीरबख्श जिस परदे के पीछे अपने घर की महिलाओं की निर्वस्त्रता छिपाये हुए थे, वह जब खान द्वारा खींच

1. यशपाल-दुख-पिंजरे की उडान(क.सं.)-1963-पृ-139

फेंका जाता है, तो वे इस तरह संज्ञा-शून्य हो जाते हैं, जैसे उनके जीवन का अब कोई अर्थ ही नहीं रह गया—"ड्योठी से परदा हटने के साथ ही जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गई। वह इगमगाकर ज़मीन पर गिर पड़ा"¹ अब चौधरी मुहल्ले के लोगों केलिये एक प्रतिष्ठित व्यक्ति नहीं रह गये। यही कारण है कि जब खान स्वयं लज्जित होकर उलटे पाँव लौट जाता है तब भी चौधरी साहब उस परदे को दुबारा टाँगने का प्रयास नहीं करते। इस कहानी में यशपाल ने निम्न-मध्यवर्गीय समाज की उस वास्तविक विवशता का चित्रण किया है जो सामाजिक मान-प्रतिष्ठा केलिये तड़पती है। कहानी का यह भाग बड़ा हृदयस्पर्शी निकला है- "इस दृश्य को देख सकने की ताब चौधरी में न थी, परंतु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा घर की लड़कियाँ और औरतें परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आँगन के बीचों-बीच इकट्ठी हो, खड़ी काँप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गयीं, जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर-भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था।"² "अर्थाभाव से पीड़ित मानवता का बाह्य तो बनावटी हँसी के आवरण से ढका हुआ है, परन्तु उसके अन्दर अनेक करुण भावों की आँधी बह रही है, अनेक भावों का झझावत झकोरे मार रहा है, इसको बड़ी ईमानदारी से यशपाल ने अपनी कहानी में व्यक्त किया है।"³ "चारआने" नामक कहानी में इर्शाद हुसेन का मसूरी के राजा साहब से लेकर समाज के बड़े बड़े

1. यशपाल-परदा-प्रतिनिधि कहानियाँ-1997-पृ.30

2. वही-पृ.31

3. डॉ.श्रीपती शर्मा त्रिपाठी-कहानी कला, विकास और इतिहास-1962-पृ.213

अफसरों तक पहुँच था। मगर कभी भी उन्होंने अपनी जिंदगी की विवशता किसी के पास नहीं खुला या किसी से भी उन्होंने सहायता की माँग की। उल्टे सबके सामने अमीरी का नाटक खेला— "इर्शाद हुसेन अपनी रैकेट तथा टेनिस के ज़ोर से सम्मनित समाज के बड़े बड़े महारथियों तक पहुँच रखते थे। कहीं जास्टिस विकसन उनके हाथ मिला रहे हैं, कहीं कलक्टर साहब उनसे शेक हैंड कर रहे हैं, कहीं राजा साहब बिन्दौर उन्हें कारलटन हाटेल में चाय पीने के लिए निमंत्रित कर रहे हैं, और कहीं नवाब साहब बिल्लूर उन्हें रायल हाटेल में भोजन के लिए बुला रहे हैं। परंतु सब होते हुए भी उनकी नौकरी की समस्या नहीं हल हो पाती। उनके वालिद मियां शाहनाह हुसैन पर एक सेठ का चार-पाँच हज़ार का कर्ज हो गया था, उनके मरने के बाद घर की दशा बिगड़ती गयी। सारी उम्मीद इर्शाद हुसेन से थी। झूठी परम्परा निभाने के लिए घर में पूरा स्वाँग बनाना पड़ता था"।¹ अंत में मसूरी में राजा साहब के साथ शानदान जिन्दगी बिता देने के बाद जब लौटा तो स्टेशन में सामान उतारनेवाले कूली को देने के लिए उसके पास चार आने तक नहीं था। अपने झूठे वैभव की रक्षा के लिए इन लोगों को कितना रूपक बांधना पड़ता है, इसे देखकर हृदय में करुणा ही उत्पन्न होती है।

यशपाल ने किसान-मज़दूरों की सामाजिक समस्या के साथ साथ शहरी मध्यवर्ग और गाँव के किसान की वर्गीय मनोवृत्तियों को आत्मसात किया है। "सच बोलने की भूल" नामक कहानी में यह स्पष्टतया दृष्टव्य है।

1. यशपाल-परदा-संपूर्ण कहानियाँ (भाग1)-2002-पृ.235-236

पहाड़ पर सैर-तफरीह और स्वास्थ्य-लाभ केलिए गये हुए आदमी और ठेठ पहाड़ी किसान के चरित्र की बारीकियों का उद्घाटन इस कहानी का उद्देश्य है। किसान अपने दरवाजे पर बिन-बुलाये शहरी मेहमान को देखकर इसलिए झुंझलाता है कि उसकी झोंपड़ी में न तो शहरी लोगों के उठने-बैठने या आराम करने की जगह है और न ही मेहमान-नवाज़ी केलिए आटा-दाल। उसका क्रोध दरअसल अपनी दरिद्र स्थिति पर है। लेकिन शहरी आदमी उसे क्रूर और हृदयहीन समझ लेता है। एक ठेठ, अनौपचारिक, स्वाभाविक सारल्य का चित्रण ही यशपाल का लक्ष्य है जो उस किसान के माध्यम से उन्होंने रखा है। घर में मेहमान को आश्रय देने के बाद किसान दंपति को यह चिंता भी सताने लगती है कि अतिथि-सत्कार तो ज़रूरी है। इसकेलिए किसान अपनी बची हुई दो मुर्गियों को काट लेता है। मुर्गी को ज़िबह करने का जो संवाद है, शहरी आदमी उस संवाद से भी गलतफहमी में पड़ जाता है। उसे लगता है कि किसान उसकी तथा उसकी बच्ची की हत्या की योजना बना रहा है। ये दोनों वर्गों के अपने-अपने वर्गीय संस्कार हैं जो कहानी में अलग-अलग धरातल पर सामने आता है।

"कर्मफल" भी इस कोटि की कहानी है। इसमें उन्होंने "कर्मफल" जैसी सामाजिक रूढ़ि की निंदा करके, समाज के असहाय तथा गरीब लोगों की दर्दनाक ज़िंदगी का पर्दाफाश कर दिया है। लोगों की अवधारणा है कि गरीबी, बीमारी और कष्टता जनम-जनम के पापकर्मों के फल हैं। सेठ की बच्ची के कथन का आधार यह विश्वास है-"यह कोई बड़ी पापिन होगी माँ जो ऐसे रो

रही है।¹ यशपाल मानव समाज की आँख खोलना चाहते हैं कि उक्त समस्यायें जिंदगी की विडंबनायें हैं जिनको इनसे जूझने की नौबत आती है, उनकी सहायता करना दूसरों का धर्म है। यशपाल ने इस कहानी में समाज के दो भिन्न स्तर की जिंदगियों को उभारा है— एक संपन्न वर्ग जो संपूर्ण सुख-सुविधाओं में जिंदगी काटता है तो दूसरा, दरिद्र वर्ग, जिसे ठिकाने के लिए जगह नहीं है। कड़ी सर्दी से बचने के लिए सेठ जैसे अमीर बड़े बड़े लिहाफों में अपने को आराम कर देते हैं तो बेजगहवाले इन लोगों की हवेलियों की आड़ में पैर रखने के लिए मार-पीट करते हैं। समाज के दो तलों की मातृत्व की तुलना भी इसमें हुई है। एक अमीर मातृत्व जो अपनी बीमार बेटी की नींद हराम करनेवाली को कोसती है तथा शाप देती है। दूसरी, भूख से तड़पते अपने नन्हे बच्चे की जान बचाने की कोशिश में हार कर उसकी मृत्यु में चीखती है। सच तो यह है कि अपने बच्चे की मृत्यु पर वह भिखारिन चीख भी नहीं सकती, क्योंकि उसकी चीख संपन्न वर्ग की सुखमय नींद को हराम कर देती है।

यशपाल समाज में नारी की स्वतंत्र अस्मिता पर बल देनेवाले हैं। वे स्त्रियों को पुरुष के अधीन या समाज के अनैतिक मूल्यों या रूढ़ियों के शिकार होने नहीं देते। वे उन्हें असहाय या अबला न मानकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और अधिकार के योग्य बनाना चाहते हैं। उनकी कहानियों के नारी-पात्र जीवन की विषम परिस्थितियों से विवश तो अवश्य है, परंतु वे उन विषम परिस्थितियों से समझौता करनेवाली नहीं हैं। "करवा का व्रत" की नायिका

1. यशपाल-कर्मफल-पिंजरे की उड़ान-1963-पृ.126

लाजवन्ती जब यह पहचानती है कि उसके प्रति उसके पति के व्यवहार में रूखापन है तो पति के लिए करवा का व्रत लेना उसे असंगत जान पड़ती है। उसके मन का बदलाव अपने व्यक्तित्व को पहचानने की कसौटी बन जाती है। बेवजह अपने ऊपर गुस्से करनेवाले पति को जनम-जनम पति के रूप में मिलने-के लिए भूखों मरना अब उसके लिए असह्य बन जाता है। अगले जन्म को भी बरबाद करने के लिए वह तैयार नहीं होती है। वह उपवास के फल से बचने के लिए रोटी खा लेती है और एक गिलास पानी भी पी लेती है। हेमराज की सिखाई नीति पर चलता हुआ कन्हैयालाल पत्नी पर निरंतर अत्याचार करता रहता है। परंपरा के प्रभाव से अपनी स्त्री के व्यक्तित्व को पहचान न कर सकनेवाला कन्हैयालाल के मन का रूपांतरण तभी होता है जब लाजो अपने से बाहर आ जाती है-"मैं ने कौन व्रत रखा है तेरे लिए जो जनम-जनम मार खाऊँगी। मार, मार डाल....."¹ अपनी स्त्री की शक्ति का परिचय पाते ही कन्हैयालाल का विवेक जाग उठता है और वह पत्नी की वास्तविक सत्ता को स्वीकार कर सम्मान ही नहीं देता, स्वयं जीवन में अनुशासित भी हो जाता है। यशपाल का मुद्दा स्पष्ट है, वे नारियों को याद दिलाना चाहते हैं कि समाज में स्त्री की हैसियत सम्पत्ति के एक टुकड़े की भाँति मानी जाती है। पर जिस दिन वह अपने व्यक्तित्व को पहचानकर परिचित रूढ़ियों को त्याग देती है, उसी दिन उसके ऊपर होनेवाला अत्याचार समाप्त ही नहीं हो जाएगा परंतु पारिवारिक जीवन भी आमोद से भर उठेगा। पत्नी को अपनी चीज़ मानकर

1. यशपाल-करवा का व्रत-सं.देवीशंकर अवस्थी-कहानी विविधा-1963-पृ.119

उस पर अत्याचार करनेवाले पुरुषों की निंदा करना उनका लक्ष्य रहा है। यशपाल ने पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना का विरोध किया है। "पितृसत्तात्मक समाज में निष्क्रिय....पैसिव....स्त्री ही आदर्श स्त्री होती है। अपनी इच्छाओं और कामावेग को महत्व देनेवाली स्त्री को वहाँ वेश्या, व्यभिचारिणी और पुंश्चली माना जाता है।"¹

अपने समाज और सामाजिक प्राणियों के प्रति जागरूक एक सच्चे साहित्यकार का धर्म निभाते हुए यशपाल ने अपनी कहानियों द्वारा जो क्रांति मचायी वह अपने समय तक नहीं, भविष्य के लिए भी प्रेरणादायक रही। अपने देश को प्रगति की ओर बढ़ाने तथा श्रेष्ठतर मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के दृष्टिकोण के पीछे मार्क्सवादी विचारधारा ही उनका समर्थन देती रही। शिवदान सिंह का मन्तव्य उल्लेखनीय है-"उनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण इन समस्याओं के मूल कारणों तक पहुँचने में सहायक होता है और इनकी विशेषता यह है कि वे आद्यन्त कलाकार बने रहते हैं। परिस्थितियों और उनके मध्य संघर्ष करनेवाले चरित्रों के कार्य-व्यापार के स्वाभाविक उद्घाटन से वह सामाजिक जीवन और मनुष्य के मनोगत भावों और द्वन्दों का चित्रण करते हैं।"² यशपाल ने अपनी कहानियों में, प्राचीन रूढ़िवादी परंपराओं, मर्यादाओं, सामन्तवादी एवं साम्राज्यवादी बन्धनों तथा शोषणों से मुक्त एक आदर्श समाज के निर्माण की कल्पना की है जो उनके प्रगतिशील चिन्तन को व्यक्त करता है।

1. मधुरेश-यशपाल:रचनात्मक पुनर्वास की एक कोशिश-2006-पृ.23

2. सं.-डॉ.त्रिलोकी नाथ-कथाभारती-2002-पृ.74-75

स्वयं वे कहते हैं-"हमारी कल्पना का आधार जीवन की ठोस वास्तविकतायें ही होती हैं, इसलिए कथा-कहानी के रूप में कल्पना का महत्व है। हमारी कल्पना या तो अतीत के सुख-दुख की अनुभूति के चित्र बनाकर उससे सुख उठाना चाहती है या आदर्श की ओर संकेत कर समाज के लिए नया नक्शा तैयार करने का यत्न करती हैं।"¹ निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि यशपाल ने अपने कहानी-साहित्य में जीवन के सभी पक्षों को, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में देखा है और उनका यथार्थपरक विवेचन दिया है।

अज्ञेय की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

अज्ञेय प्रेमचंदोत्तर काल के राजनैतिक तथा सामाजिक परिवेश की उपज है। अंग्रेज़ सरकार के व्यापक पैमाने पर भारतीय जनता पर अत्याचार, भारतीयों के संघर्ष को दबाने और खत्म करने की कोशिश, सामाजिक रूढ़ियाँ तथा अंधविश्वास, मानव-मन की कुंठा तथा उत्पीड़न ने उनके व्यक्तित्व में क्रांति की ज्वाला भड़का दी और उनके सशक्त अंकन ने उनकी रचनाओं को श्रेष्ठतर बना दिया। विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के कहानिकार होने के नाते उनकी कहानियों में व्यक्ति मन की भीतरी दुनिया उसकी संपूर्ण महत्ता और गरिमा के साथ उभर आयी है। मानव-मन की गहराईयों में पैठकर अछूती और अनदेखी संवेदनाओं को, उन्होंने सामाजिक संवेदनाओं से जोड़ दिया है। उनकी इस

1. यशपाल-पिंजरे की उड़ान-1963-पृ.दो शब्द

विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का मूल धरातल व्यक्ति चरित्र है। व्यक्ति के आंतरिक संघर्षों के, ज़रिये उन्होंने एक ओर सामाजिक अव्यवस्थाओं के इतिवृत्त उपस्थित कर दिये हैं तो दूसरी ओर सामाजिक सोच्छेश्यता भी लक्षित कर दिया है।

"शरणदाता" 1947 के सांप्रदायिक दंगों, देश के विभाजन एवं शरणार्थियों पर लिखी गई कुछेक कहानियों में श्रेष्ठ निकलती है जिसमें उनकी बड़ी गहरी सामाजिक चेतना का परिचय मिलता है। भाव और विचारों के कई स्तरों पर गुँथी गयी इस कहानी का आधार-बिंदु गत विचार कहानी के अंतिम हिस्से में उभरता है कि भलाई की साहसहीनता से ही खतरा उत्पन्न होता है- "देविंदरलाल ने जाना कि दुनिया में खतरा बुरे की ताकत के कारण नहीं, अच्छे की दुर्बलता के कारण है। भलाई की साहसहीनता ही बड़ी बुराई है। घना बादल से रात नहीं होती, सूरज के निस्तेज हो जाने से होती है"¹ अज्ञेय का स्पष्ट विचार था कि उन कलुषित दिनों में सांप्रदायिकता के विष को फैलानेवाले संप्रदायों के अपने संगठन तथा उसे भड़कानेवाले थे पुलिस और नैकरशाही। इस कहानी में उन्होंने बार-बार परिस्थितियों में पड़कर पराजित होनेवाले मानवीय विवेक का जिक्र किया है तो कहानी के दूसरे स्तर पर उसे उदित होता हुआ दिखाकर इस मानवीय संवेदना को खोने नहीं दिया है। जब तमाम लोगों में मानवीय विवेक नष्ट होने लगता है तो रफीकुद्दीन में वह

1. अज्ञेय-शरणदाता-सं.देवीशंकर अवस्थी-कहानी विविधा-1963-पृ.167

विद्यमान रहता है। जब वह भी हारने लगता है तो उसका मित्र शेख साहब उस विवेक को शरण देता है, पर जब वह भी पराजित हो जाता है तो जेबुन्निसा के माध्यम से यह मानव-विवेक अभिव्यक्ति पाता है। वस्तुतः जेबुन्निसा ही इस विवेक का प्रतीक है। उसके पत्र से जबकि वह "इन्सान" के नाम पर देविन्दरलाल को हिंदुस्तान के अल्पसंख्यकों की याद दिलाती है, यह प्रतीकता एकदम स्पष्ट हो जाती है।

शरणार्थी एवं सम्पत्तिविहीन होने के बावजूद दरिद्र बच्चों पर तरस खानेवाले दो भाइयों की कहानी पेश करती है "नारंगियाँ"। जब हरसू नारंगियों का दूकान खोलता है तो पास आनेवाले अभावग्रस्त बच्चे परसू के हृदय को चुभते हैं और वह अपने पैसे से नारंगियाँ खरीदकर बच्चों में बाँट देता है। यह आपसी खरीद-फरोख्त उनकी दूकानदारी को निरर्थक साबित कर देती है। दरअसल बच्चों के प्रति दोनों भाइयों की मानवीय सहानुभूति दया और करुणा से उनकी दूकानदारी में आड़े आती है। कहानी का मूल मंतव्य परसू के इस कथन में छिपा है- "लोग क्या कहेंगे कि रिफ्यूजी बच्चा दूकान करने लगा तो दिल-आत्मा भी बेचकर खा गया।"¹ दरअसल, हरसू और परसू देश-विभाजन के शिकार हैं। अज्ञेय हरसू में वह गुण दिखाना चाहते हैं कि बच्चा होकर भी वह अपने पैरों-पर खड़ा रहना चाहता है, अन्य रेफ्यूजियों की तरह लोगों की दया-दृष्टि पर नहीं। अपनी अभावग्रस्तता और आवारागर्दगी के बावजूद हरसू में जो आर्द्रता है वह गहरी मानसिक व्यथा तथा उदासी से परे मानवीय प्रेम का

1. अज्ञेय-नारंगियाँ-सं.दूधनाथ सिंह-सार्थक कहानियाँ-1987-पृ.48

निशान है। देश-विभाजन से हुए अत्याचारों और पीड़ाओं से व्यथित देशवासियों से, अपने मन के वैर और मलिनता को हटा देने का संदेश देना अज्ञेय का लक्ष्य रहा है।

परिवर्तित स्त्री मन का चित्रण "गैंग्रीन" नामक कहानी में हुआ है। मालती बचपन में जितनी नटखट तथा उद्धत थी, विवाह के बाद जैसे नीरस, निर्जीव एवं अनुभूतिहीन हो गयी है। पलंग से बच्चे का गिरना तथा चोटें लगना भी उसके रोजमर्रा की ज़िन्दगी बन गयी है जिससे उसका मन अप्रभावित रहता है। बच्ची के गिरने पर वह ऐसा कहती है— "इसके चोटें लगती ही रहती हैं, रोज़ ही गिर पड़ता है।" स्कूल की पढाई के वक्त वह जितना पुस्तकों को पढ़ना मना करती थी, अब आकर सामान लिपटाकर लानेवाली कागज़ के टुकड़े को पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाती है। रोजमर्रा की ज़िन्दगी उस पर गैंग्रीन की तरह लग गयी है। अज्ञेय मालती में बदले सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक परिवेश का प्रतिफलन देखते हैं। आधुनिकता का प्रभाव समाज के हर पक्ष पर पड़ा तो नारी मन भी बदलने लगा। वह स्वतंत्रता चाहती है। वह घर के चार दीवारों के अंदर फँस जाना पसंद नहीं करती। एक ही रफ्तार से चलनेवाले घरेलू काम-काजों से बाहर निकलने के लिए वह छटपटाने लगी। अज्ञेय का प्रतिगशील मन स्त्री के परंपरित रूप का विद्रोह करता है। बंधनस्थ भारतीय नारी को आधुनिक नारी के रूप में विकास अज्ञेय का लक्ष्य है।

1. अज्ञेय-गैंग्रीन-अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ-1975-पृ.289

अज्ञेय की कहानियाँ व्यक्ति मन को प्रश्रय देती हैं। लेकिन उन्होंने समाज केंद्रित कहानियाँ भी लिखीं जिनमें समाज का नया स्वरूप हमें प्राप्त होता है।

उपेन्द्रनाथ अशक की कहानियों में समाजिक मूल्यों के संकेत

उपेन्द्रनाथ अशक यथार्थवादी कहानी को लेकर साहित्य जगत में अवतरित हुए। सामाजिक चेतना से युक्त उनकी कहानियाँ तत्कालीन समाज का रेखांकन ही हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में अपने समय के समाज का चित्रण करके उसकी बुराईयों, असमताओं और उसमें दबी पड़ी मानुषिकता को उजागर किया है। स्वयं उपेन्द्रनाथ कहते हैं—“अच्छी कहानी से अपेक्षा है कि वह पाठक को अपने समाज, वातावरण और स्वयं अपने-आप को समझने में सहायता दे।”¹

“डाची” निम्न मध्य वर्गीय ज़िंदगी की कहानी है। समाज में विशेष स्थान या पद न होते हुए भी उनमें कुछ ऐसी अभिलाषायें होती हैं जिनके आधार पर वे अपनी जीवन-नौका को आगे बढ़ा सके। मगर ऐसा भी कभी कभी होती है कि उनकी आशायें समाज के उच्च वर्ग के प्रभाव या अधिकार से दब जाती हैं। कहानी में बकर अपनी इकलौती बेटी रज़िया के मोह पर डेढ़ वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद एक ड़ाची खरीद लाता है। कोठी के लिए वह

1. उपेन्द्रनाथ अशक-कहानी की विकास-रेखा-अशक की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ-1960-पृ.4

मशीर-माल साहब के पास पहुँचता है जिसका गाँव में ऊँचा पद और प्रभाव था। डाची के सौन्दर्य से मोहित मशीर-माला बकर की इच्छा की परवाह किये बिना डाची को खरीद लेता है। वास्तव में इसे खरीदना नहीं कह सकते, एक प्रकार से वह डाची को हड़प ही लेता है जबकि रज़िया डाची को देख भी नहीं सकी थी। बकर इसके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोल पाता, क्योंकि वह असहाय निम्न वर्ग का आदमी था। समाज में उसीका ही काम चलता है जिसके पास धन और शक्ति है। उच्च-नीच का भेदभाव जब तक चलेगा तब तक समाज में प्रगति नहीं आयेगी, इस तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना कहानीकार का लक्ष्य है। बकर के चारित्रिक बदलाव का चित्रण करके उन्होंने अपना आदर्शवादी दृष्टिकोण का परिचय कराया है। अलस और कामचोर बकर अपनी परिश्रमी और पतिव्रता पत्नी के चले जाने पर परिवार की देखभाल के लिए कड़ी मेहनतवाला बन जाता है।

"गोखरू" नामक कहानी में अशक जी ने दो सामाजिक समस्याओं को उठाया है—दहेज समस्या और गहनों के प्रति स्त्रियों का बड़ा लगाव। दहेज समस्या भारत की सामाजिक व्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौती है। दहेज प्रथा से टकराकर कितनी लड़कियों की प्राण-पंखेरू उड़ गयी हैं। कितने परिवार बरबाद हुए हैं। कोई भी साहित्यकार ऐसा नहीं है जिसने इस समस्या पर अपना विद्रोह न प्रकट किया हो। मंसा जब से ब्याही होकर ससुराल पहुँचती है तब से सास ने उसके सारे गहने अपने वश में कर लिया। लेकिन जब उसने अपनी माँ से दी हुई गोखरू नहीं दी तो बलपूर्वक यह उससे छीन ली गयी, यही

नहीं, उसकी ऐसी पिटायी की जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। भारतीय परिवार में ऐसी घटनायें सर्व साधारण सी हो गयी हैं। बहुओं के चारित्रिक गुणों का कोई मूल्य नहीं रहता, चाहे वह पढ़ी-लिखी हो, या कोई विशेष क्षमताओं से भरी हुई हो, पति या उसके घरवाले इसकी परवाह नहीं करते। यह स्थिति सदियों से चली आ रही है। दूसरी समस्या का कारण भी आभूषण है जिसे स्त्री कभी भी उपेक्षा नहीं कर सकती। भले ही, मंसा की माँ ने अपनी बेटी को गोखरू दी थी, पर उसका मन उसीमें ही रमा हुआ था। इसीलिए ही ससुराल से आयी अपनी बेटी से कुशल-क्षेम पूछे बिना वह उस पर बरस पडती है— "यह गहनों की क्या हालत बनायी है तूने? इस तरह तो पराये का गहना भी नहीं पहना जाता। दो वर्ष में तू ने इतने कीमती गोखरू घिसा दिये। पाँच रुपये तो इनकी गढ़ायी में ही मैंने दिये थे। मैल इनमें इतनी जमी हुई है, बर्तन माँजते, झाड़ू-बुहारी देते समय तू उतारती न थी इन्हें?..."¹ पर बेटी की मृत्यु उसमें ऐसी चेतना जगायी कि वह इसका प्रायश्चित्त इस प्रकार कर देती है कि वह इन गोखरुओं को भगवती ब्राह्मणी की बहु को सौंप देती है। अशक जी ने इस समस्या का समाधान भी ऐसा ही कर दिया है। जब तक गहनों का मोह स्त्री के मन से नहीं उतरेगा तब तक यह समस्या बनी रहेगी।

अशकजी मानते हैं कि समाज की असमता का प्रमुख कारण अमीरी-गरीबी-भेदभाव है। अमीर की अमीरी का आधार दरअसल, गरीब का

1. उपेन्द्रनाथ अशक-गोखरू-अशक की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ-1960-पृ.26

परिश्रम और उसके अधिकारों का शोषण है। "बैंगन का पौधा" नामक कहानी में संपन्नता और दरिद्रता को साथ साथ खड़ा करके कहानीकार ने एक ओर संपन्न वर्ग का परिहास उठाया है तो दूसरी ओर दरिद्र की विवशता को दर्शाया है। ठेकेदार गोपालदास मज़दूर बूढ़े आदमी को खेती की रखवाली के लिए नियुक्त करता है। कड़ी सर्दी में वह वाचक के घर के बरामदे में ही सो पाता है। अंदर आकर सो जाने का वाचक का अनुरोध वह इसप्रकार तिरस्कृत करता है कि उसके पास काफी कपड़ा है। पर यह सच नहीं था, मगर गरीब होते हुए भी उसमें आत्माभिमान था। गोपालदास का कथन कि "नहीं बाबूजी, सर्दी आप अमीरों को लगती है। हमें सर्दी नहीं लगती", उच्च वर्ग और मज़दूर वर्ग के सामाजिक और आर्थिक अंतराल को स्पष्ट करता है।

अशक की कहानियाँ सामाजिकता के संदर्भ में विविध रंगी हैं। सामान्य जीवन के सामान्य यथार्थ को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करने का कार्य ही उन्होंने किया है।

रांगेय राघव की कहानियों में सामाजिक मूल्यों के संकेत

रांगेय राघव की कहानियाँ देश की स्वाधीनता के लगभग तत्काल बाद के देश की एक प्रामाणिक और विश्वसनीय तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। बंगाल का अकाल, देश-विभाजन, सांप्रदायिक विद्वेष, मज़दूरों की देशव्यापी हड़तालें, गोलीकाण्ड, बेरोज़गारी, भुखमरी आदि विभिन्न देशी संघर्षों से उनका जीवन-काल गुज़र गया। साहित्य के क्षेत्र में जब उनका पदार्पण

हुआ तब प्रगतिशील लेखक संघ की सक्रियता ज़ोरों पर था। अतः प्रगतिशील आन्दोलन से उनकी गहरी संपृक्ति थी। उनकी विचारधारा को मार्क्सवाद ने प्रभावित किया है। सामंतवाद, पूँजीवाद, रूढ़िवादिता, धार्मिक मतान्धता आदि के प्रति क्रांति की चिंतायें उनकी रचनाओं में मिलती हैं। उन्होंने साम्राज्यवाद को अपना मुख्य शत्रु माना और उनका संपूर्ण साहित्य इनके विरुद्ध खड़ा हुआ।

आज़ादी के बाद भी जनता आज़ाद नहीं हुए थे। क्योंकि गुलामी का कारण पहले गोरों का शासन था तो अब अपने ही देशी नेताओं की भ्रष्टाचारिता है। समाज के मज़दूर और किसान इससे सबसे अधिक पीड़ित होते थे। कहानीकार इन वर्गों को विद्रोह का आह्वान करते हैं। उनकी कहानी "कठपुतला" विद्रोह और उसके विजय की कहानी है। आज़ादी के बाद की भारत को किसान युवक के शब्दों से जान सकते हैं—"महँगाई बहुत ज़्यादा है, सरकार सेठों का फायदा करती है, किसानों पर ज़मींदार अभी तक बैठे बैठे उनकी खाल उधेड़ रहे हैं, परती धरती और चरागाहों पर कब्जा कर रहे हैं, सरकार की पुलिस और उन्हीं की मदद करती है।"¹ वह पुलिसवालों की रिश्त पर भी व्यंग्य करता है। नयी सरकार से जनता का विश्वास उड़ गया है। उनके अनुसार आज़ादी कुछ सरकार अफसरों को चोर बाज़ारी करने को मिला है—"मैं आप के न्याय पर विश्वास नहीं करता। आप अगर आदमी को

1. रांगेय राघव-कठपुतला-इंसान पैदा हुआ-1963-पृ.60

बे बात जेल में डाल सकते हैं तो मैं आप पर यकीन कैसे कर सकता हूँ। आज़ादी मिली है, लेकिन वह सिर्फ चोर बाज़ार करने के लिए मिली है। हमको नहीं मिली, जो खेतों में काम करते हैं। दगोगा जी को मिली है जो अब तिरंगा ओढ़ कर रिश्तत लेते हैं।¹ स्वतंत्र भारत में राजनीति आदर्श राजनीति न रहकर सब तरह के आन्याय का पर्याय बन गयी।

द्वितीय विश्वयुद्ध और उससे त्रस्त भारतीय समाज का वर्णन ""धूल की आँधी" नामक कहानी में हुआ है। साम्राज्यवाद का पतन सबकी प्रतीक्षा है। क्योंकि पूँजीवादी सभ्यता गुलामी का दूसरा नाम है। पूँजीवाद समाज के हर क्षेत्र को, देश के सारे वैभव को खरीद रहा है। कानून भी कानून न होकर अधिकारी वर्ग के अस्तित्व का आधार हो गया। कहानीकार भारत की गरीबी का प्रमुख कारण पूँजीवादी सभ्यता को ही मानते हैं—"यहाँ गुलाम अपनी गुलामी को न पहचानकर स्वतन्त्र होने का झूठा दावा करता है, यहाँ कला, विज्ञान, शक्ति और नारी को पूँजी ने बोली बोलकर खरीदा है। यहाँ का मनुष्य एक झूठ को बुनियादी मान कर शराब को ज़हर मानकर पीता है, और, सिर्फ इसके लिए कि अपने आपको भूल जाये जो संसार आज तक न कर सका है, और न कर सकेगा। अत्याचारों को कानून करार देनेवाले अधिकारियों ने अपने ही स्वत्व में अपने आप को बाँधकर निर्जीव कर दिया है।"² साम्राज्यवादी शक्ति के चंगुल से मुक्त हुए भारतवासियों के सामने पूँजीवादी सभ्यता एक नयी समस्या के रूप में आयी है।

1. रांगेय राघव-कठपुतला-इंसान पैदा हुआ- 1963-पृ.61

2. रांगेय राघव-धूल की आँधी-वही- पृ.160

वस्तु चयन की दृष्टि से रांगेय राघव की कहानियाँ यशपाल के नज़दीक दीखती हैं। यशपाल की प्रगतिशील विचारधारा उनकी कहानियों के समाज को रूपायित करती है।

समाज को अनदेखा करके न साहित्य जीवित रह सकता है और न साहित्यकार। इसका यह भी तात्पर्य नहीं कि समाज से भिन्न साहित्य का कोई अस्तित्व नहीं। दोनों के अपने अपने अस्तित्व है और दोनों का संतुलित ढंग से एकाकार होना ही समाज के लिए प्रेरक तत्व है। समाजशास्त्रीय अध्ययन के प्रकरण में समाज ही मुख्य होता है। कहानी में उपलब्ध समाज का स्वरूप इसलिए महत्वपूर्ण है कि यही समाजशास्त्रीय अध्ययन का मापदंड है।



अध्याय—दो

आधुनिक कहानी—प्रवृत्तिगत अध्ययन

आधुनिक कहानी की आधुनिकता

प्रेमचंद और उनके समकालीन रचनाकारों की कहानियाँ तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को आत्मसात करती हुई तथा व्यक्ति-मन की सूक्ष्म संवेदनाओं का विश्लेषण करती हुई सामने आयीं तो आगे की कहानियाँ एक नये भावावेश के साथ उभरने लगीं, उसकी पृष्ठभूमि में आधुनिकता-बोध ही सक्रिय है। पचास के बाद की कहानियाँ स्वातंत्र्योत्तर समाज के तमाम आयामों को गहरे अर्थ में रेखांकित करने की कोशिश करती हैं। इन कहानियों ने जीवन की जटिलताओं और विद्रूपताओं को उसकी संपूर्णता में उभारा। पूर्व आधुनिक युगीन कहानियों की अपेक्षा इनमें वैयक्तिक भाव-बोध बढ़ता गया। परिवर्तन के इस नये मोड़ ने "आधुनिकता" का नाम ग्रहण किया। "आधुनिकता एक ऐसे बोध और प्रक्रिया का नाम है जिसमें निरंतर परिवर्तन और संशोधन की गुंजाइश है।"¹ आधुनिकता की एक विशेषता यह भी है कि वह एक जड़ दृष्टि नहीं थी बल्कि निरंतर गतिशील और परिवर्तनशील थी।

दरअसल, प्रेमचंद के अंतिम दिनों के समय तक हिंदी कहानी-धारा एक नयी प्रवृत्ति की ओर मुड़ चुकी थी। कहानीकारों ने अनुभूत सत्य को चाहे

1. राजेन्द्र यादव-कहानी: स्वरूप और संवेदना-1977-पृ.50

वह सामाजिक यथार्थ हो, चाहे वैयक्तिक तनाव, गहन अर्थबोध के साथ प्रस्तुत करना शुरू किया था। परिवर्तित सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश और कहानीकारों के यथार्थ बोध ने परंपरागत कहानियों का ढाँचा ही बदल दिया। नयी परिस्थितियों में बदले जीवन मूल्य, सहज संवेदनायें, बनते-बिगड़ते सामाजिक संबंध तथा जीवन-पद्धतियों ने कहानीकारों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा। जीवन यथार्थ की सपाटता के स्थान पर मानव-मन के भीतर तक जाकर, उसकी सारी अच्छाइयों और बुराइयों को स्वीकार करने में ये कहानीकार प्रयत्नशील रहे। ये जीवन के प्रति बड़े ईमानदार लगने लगे। उन्होंने कभी खोखले आदर्श या निरर्थक सत्य को अपनी कहानियों में लक्ष्य नहीं किया। उनकी रचनायें अनुभूत सत्य की बलवती नींव पर अटल रहीं। शहर, कस्बे, गाँव या पहाड़ी अंचल की ज़िंदगी हो, उनके बनते-बिगड़ते जीवन-मूल्यों, वैयक्तिक घुटन, एकाकीपन, नये परिवेश से उत्पन्न समस्यायें आदि उनकी तूलिकाओं से निसृत होने लगीं।

कहानियों का यह आधुनिक भावबोध युग-यथार्थ की प्रतिध्वनि बन गया। ये कहानियाँ नयी परिस्थितियों और उनसे बननेवाले नये संबन्धों, समस्याओं, संघर्षों तथा बोधों का अर्थ बताने लगीं। आधुनिकता रामदरश मिश्र की दृष्टि में इसप्रकार है—“आधुनिकता केवल समयगत परिवर्तन नहीं है वरन् वह एक मूल्य भी है। आज के युग में जीवन बदला है जैसे अनेक कालों में बदलता आया है किंतु आज के जीवन का आधुनिक होना केवल नयी परिस्थितियों और वातावरण में नया होना नहीं है वरन् अनिवार्य भाव से उन

अनेक विश्वासों, मूल्यों और भावबोधों को छोड़ना है जो सामंतवाद या मध्यकाल की उपज थे और उस चेतना की स्वीकृति है जो विज्ञानकाल की देन है।¹ 1950 के आसपास हिंदी कहानी क्षेत्र में प्रविष्ट हुए कहानीकारों में आधुनिकता का यह नया भाव-बोध सजग हो उठा। कहानी साहित्य में आए यह परिवर्तन सामाजिक राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का ज्वलंत दृष्टांत था।

आधुनिक कहानी की आधुनिकता जितनी उसकी अंतरतम प्रवृत्तियों पर आधारित हैं उतनी ही उसके बाहरी रूप पर भी हैं। पुरानी कहानी की "नैरेटिंग" शैली से भिन्न होकर वह अधिक गहन और सूक्ष्म हो गयी है। उसकी कथन शैली और वर्णन शैली में पुरानी सपाटता और वर्णनात्मकता के स्थान पर सूक्ष्मता और सांकेतिकता आ गयी हैं। कथा-कथन की प्राचीन शैली ही पुरानी कहानियों पर हावी हो जाती थी। कथा शुरू होकर धीरे धीरे विस्तार की ओर जाती है और पाठक को यह समझने में देरी भी न लगेगी कि उसकी परिसमाप्ति कैसे होगी। आधुनिक कहानी की शुरू में ऐसा कोई संकेत नहीं दिखाई पड़ता कि कहानी कौन सा रास्ता पकड़ेगी और उसका अंत भी कैसे होगा। इतना ही नहीं, आधुनिक कहानी के हर वाक्य में कहानीकार की वास्तविकतावादी दृष्टि का परिचय मिलता है जो पाठक को कथा-चरित्र से तादात्म्य प्राप्त करने में सहायक होता है। पुरानी कहानी की वर्णनात्मक अतिरंजता से कभी-कभी पाठक ऊब जाते हैं। उदाहरण के लिए प्रेमचंद की

1. रामदरश मिश्र-नयी कहानी (लेख)-हिंदी कहानी: एक अंतरंग पहचान-1977-पृ.62

कहानी "पंचपरमेश्वर" को लीजिए। कहानी ऐसा आरंभ होती है—"जुम्न शोख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे के खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्न जब हज करने गये थे तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे और अलगू जब कभी बाहर जाते, तब जुम्न पर अपना घर छोड़ जाते थे।"¹ यह नाटकीय आरंभ और धीरे धीरे क्लैमाक्स पर पहुँचनेवाली कथन शैली प्रायः सभी पुराने कहानीकारों की शैली थी। मगर आधुनिक काल में आकर इसका स्वरूप एकदम बदल जाता है। कमलेश्वर की "खोई हुई दिशाएँ" नामक कहानी देखिए—"सड़क के मोड़ पर लगी रेलिंग के सहारे चन्द्र खड़ा था। सामने, दाएँ-बाएँ आदमियों का सैलाब था। शाम हो रही थी और कनॉट प्लेस की बत्तियाँ जगमगाने लगी थीं। थकान से उसके पैर जवाब दे रहे थे। कहीं दूर आया-गया भी तो नहीं, फिर भी थकान सारे शरीर में भरी हुई थी। दिल और दिमाग इतना थका हुआ था कि लगता था, वही थकान धीरे-धीरे उतरकर तन में फैलती जा रही है।"² दरअसल, वर्णन शैली का यह अंतर आधुनिक कहानीकार के यथार्थबोध से उत्पन्न आधुनिक दृष्टिकोण है।

पुरानी कहानी की सीमित व्यक्ति चेतना को आधुनिक कहानी ने बृहत्तर और सामाजिक बना दिया। सामाजिकता के प्रति यह सजगता आधुनिकता की सबसे बड़ी देन है। कहानी का कथानक व्यक्ति मन के इर्द-

1. प्रेमचंद-पंचपरमेश्वर-सं-मार्कण्डेय-आठ अच्छी कहानियाँ-1991-पृ.1

2. कमलेश्वर-खोई हुई दिशाएँ-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.35

-गिर्द न घूमकर समाज की समस्या के केंद्र में घूमता नज़र आता है। अभी तक छिपी हुई मानसिक संवेदनायें परदे के पीछे से बाहर आने लगीं। समाज का कोना-कोना कहानियों में प्रतिबिंबित होने लगा। इसमें कहानीकार का आत्मांश भी था। अतः आधुनिक कहानी सामाजिक होने के साथ साथ आत्मपरक भी है। राजेन्द्र यादव की "जहाँ लक्ष्मी कैद है", अमरकांत की "ज़िंदगी और जोंक", भीष्म साहनी की "अमृतसर आ गया है" जैसी कहानियों में आत्मपरकता के साथ साथ सच्चा सामाजिक बोध भी झलकता है जो पूर्ववर्ती कहानियों से एकदम भिन्न है। परमानन्द श्रीवास्तव का कथन इस बात की पुष्टि करता है- "यथार्थ के समीप आकर ही कहानी 'नवीन' या 'आधुनिक' होती है या हो सकती है। पर, ध्यान देने की बात यह है कि कहानी में व्यक्त होनेवाला यह यथार्थबोध विज्ञान का सत्यान्वेषण नहीं है। यह यथार्थ-बोध अनुभूतिपरक है जो हमें कहानी में व्यक्त मानवीय परिस्थिति के ठीक सामने रख देता है। यह यथार्थ-बोध वह अनुभव है जो विशेष मानवीय परिस्थिति में लक्षित होनेवाले सम्बन्धों को ठीक-ठीक समझने की दृष्टि देता है।" समाज सापेक्ष होने के कारण आधुनिक कहानी के विषय-संकेतों में भी आधुनिकता झलकती है। गरीबी, बेकारी, गाँवों की बुरी हालत, उपनिवेशवाद, राजनीतिक भ्रष्टाचार विभाजन की विपदायें आदि इनमें कुछ हैं। "हंसा जाई अकेला", "ड़िप्टी कल्कट्टेरी", "राजा निरबंसिया", "दोपहर का भोजन", "वापसी" जैसी कहानियों में वर्णित विषय पूर्वकाल में दुर्लभ थे।

1. परमानन्द श्रीवास्तव-आज की कहानी(लेख)सं.-देवी शंकर अवस्थी-नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति-1973-पृ.127

गाँवों में आधुनिकता के प्रवेश को आधुनिक कहानी ने अनदेखा नहीं किया है। कस्बों और अंचल क्षेत्रों में प्रकट आधुनिक संवेदना को उसके यथार्थ में कहानीकारों ने व्यक्त किया। धर्मवीर भारती की "सावित्री नं दो", फणीश्वर नाथ रेणु की "पंचलाइट", मार्कण्डेय की "कल्याणमन", रामदरश मिश्र की "एक औरत एक ज़िंदगी", शिवप्रसाद सिंह की "कलकी अवतार" जैसी कहानियाँ बदले परिवेश की उपज हैं।

आधुनिक परिवेश में आधुनिक भावभंगिमा के साथ उभर आयी आधुनिक कहानी केवल तत्कालीन कहानीकारों की सृष्टि नहीं थी, बल्कि समय की ज़रूरत थी। कमलेश्वर कहते हैं- "नयी कहानी में आधुनिकता का समावेश नहीं है-वह स्वयं आधुनिकता से जन्मी है। यह पुरानी कहानी का संशोधित रूप नहीं, पुरानी कहानी की विरल नयी उद्भावनाओं की श्रृंखला में एक विपुल कृतित्व की धारा का उन्मेष और प्रयाण है।"¹ आधुनिक कहानी ने केवल आधुनिक रूप-भाव को ग्रहण नहीं किया अपितु आधुनिक मानव को अपने में समाहित किया। आधुनिक कहानी की आधुनिकता की यही खासियत है।

आधुनिक कहानी की पृष्ठभूमि

आज़ादी के बाद लिखी गई कहानियों में जीवन-प्रसंगों और संवेदनाओं में नयापन आने लगा। इस नयेपन ने इस कालखंड की कहानियों के नामांकन में भी बड़ा असर डाला। राजेंद्र यादव ने इन्हें "आज की कहानी" कहा। 56-57

1. कमलेश्वर-नयी कहानी की भूमिका- 1978-पृ.140

में नई कविता के वज़न पर इसे नयी कहानी का नाम भी दिया गया। इस दौर की कहानियों को "नई कहानी" नाम देने का श्रेय नामवरसिंह को है। उन्होंने सन् 1956 में प्रकाशित "कहानी" के विशेषांक में हिंदी कहानी के साथ "नई" शब्द जोड़ दिया। इंद्रनाथ मदान ने "नया" शब्द की परिभाषा यों दी है-"नया शब्द न विशेषण और न ही संज्ञा है वह मात्र उस प्रक्रिया का द्योतक है जो हर बार नयी होती चलती है"।¹ "कहानी:नववर्षांक-1956 इसलिए उल्लेखनीय है कि इसमें पहली बार स्पष्टतः प्रश्न के रूप में "नयी कहानी" की बात उठायी गयी।"² भैरवप्रसाद गुप्त के संपादकत्व में निकले इस कहानी-विशेषांक के प्रभाव से अगले वर्ष महाराष्ट्रा-राष्ट्रभाषा-सभा, पूना ने "कहानियाँ-1955" नाम से एक कहानी-संकलन प्रकाशित किया। हिंदी कहानी के नव जागरण का दस्तावेज़ माननेवाले इस संकलन में "गदल", "रसप्रिया", "गुल्की बन्नो", "मवाली", "हंसा जाइ अकेला", "डिप्टी-कलकटरी", "चीफ की दावत", "बादलों के घेरे", "सेब", "एक कमज़ोर लड़की की कहानी" जैसी दस महत्वपूर्ण कहानियाँ संकलित हैं। कहानी के साथ "नई" शब्द जोड़ने के बारे में नामवरसिंह का कहना है-"कहानी चर्चा में अनायास ही "नई कहानी" शब्द चल पड़ा है। और सुविधा अनुसार इसका प्रयोग कहानीकारों ने भी किया है और आलोचकों ने भी....."³ देवी शंकर अवस्थी अपनी पुस्तक "नयी कहानी: सन्दर्भ और प्रकृति"

-
1. इंद्रनाथ मदान-हिंदी कहानी:अपनी ज़बानी- 1968-पृ-30
 2. नामवरसिंह-नयी कहानी और एक शुरूआत-सं-देवीशंकर अवस्थी-नयी कहानी:संदर्भ और प्रकृति-1973-पृ.234
 3. नामवरसिंह-आज की हिंदी कहानी:ऐतिहासिक नवीनता और उपलब्धियाँ(लेख) कहानी:नई कहानी-1994-पृ.43

की भूमिका में स्पष्ट करते हैं कि "नयी कहानी के अस्तित्व का प्रश्न यदि 1956 में उठाया गया था तो दिसम्बर, 1957 में प्रयाग में होनेवाले 'साहित्यकार सम्मेलन' तक नयी कहानी अभिधान को लगभग स्वीकार कर लिया गया था। इस सम्मेलन में पठित तीनों निबंधों (शिवप्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई और मोहन राकेश लिखित) के पहले ही वाक्यों में "नयी कहानी" का प्रयोग किया गया है।"¹

नयी कहानी ने उस ज़माने में जन्म लिया जब भारत विदेशी शासन से मुक्ति पा चुकी थी और भारतवासी अपने देशी वातावरण और परिवेश में साँस लेने लगे थे। भारतीय समाज अपने लिए एक नये स्वरूप की खोज में था। दो विश्वयुद्ध, बंगाल का अकाल, स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के साथ-साथ आए विभाजन, शरणार्थियों का पुनर्वास, दंगों से पीड़ित लोगों का मानसिक तनाव, जनतांत्रिक शासन व्यवस्था में सरकारी अफसरों का भ्रष्टाचार, दल-बदल विभक्त होनेवाली राजनीतिक पार्टियों का आपाधापी, पश्चिमी संस्कृति का अन्धानुकरण, यांत्रिकीकरण से उद्भूत कल-कारखानों के संस्थापन से नौकरी की तलाश में गाँववासियों का शहर की ओर प्रस्थान, शिक्षा के प्रचार और प्रसार आदि तत्कालीन अवस्थायें नयी कहानी की पृष्ठभूमी रहीं। दरअसल, 1950 से 1965 तक की अवधि में लिखी गयी सारी कहानियों में इन परिस्थितियों की झलक मिलती है।

1. देवीशंकर अवस्थी-नयी कहानी: सन्दर्भ और प्रकृति-1973-पृ.15

विच्छृंखलता और विघटन के इस संक्रमण काल में कहानी ने व्यक्ति मन को सामाजिकता के धरातल पर देखने की कोशिश की। क्योंकि संभ्रमित व्यक्ति मन को सहारा देने के लिए सामाजिक सद्भावना ही सहायक निकलती है। व्यक्ति को समाज में देखने की कोशिश आधुनिक कहानी में ही प्रथम बार प्रकट हुई। राजेंद्र यादव कहते हैं—“इस दशक की कहानी (जिसे हम आज की कहानी कहेंगे) ने इस समूहगत सामाजिकता के वातावरण में आँखें खोली।.....अर्थात् आज की कहानी ने समूहगत सामाजिकता को व्यक्तिगत सामाजिकता के रूप में देखने-पाने की कोशिश की।

विराट-युगबोध को व्यक्ति या व्यक्तियों के आपसी संबंधों की चेतना, यानी मन के अनेक स्तरों पर आकलन और प्रतिफलन के नाटक को, आज की कहानी ने ही सबसे पहले देखा।¹ यद्यपि इस दशक के पहले की कहानियों में वैयक्तिक भावबोध का आकलन हुआ था, मगर वह अपनी संपूर्णता में नहीं था। तड़पता मन अपने को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करने के लिए छटपटाता रहा। आधुनिक कहानी की सृष्टि, दरअसल, यहीं से प्रारंभ हुई। वैयक्तिक भावबोध को छोड़, सामाजिक जीवन की पहचान भी पूर्ण नहीं हुई थी। प्रेमचंद और उनकी परंपरा में समाजवादी कहानियाँ और बाद में व्यक्तिवादी कहानियाँ भी रची गयीं, परंतु रचनाकारों की वैयक्तिक अनुभूति बहुत कम मात्रा में थी। प्रेमचंद और प्रेमचंदोत्तर कहानियाँ और आधुनिक कहानियों की विभाजित

1. राजेंद्र यादव-आज की कहानी परिभाषा के नये सूत्र(लेख)सं-देवीशंकर अवस्थी-नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति-1973-पृ.99

रेखा इसी को कह सकते हैं। रामदरश मिश्र के अनुसार—"नयी कहानी सामूहिक रूप में अनुभूति के स्तर पर इसी बदले हुए सामाजिक जीवन की पहचान की कहानी है। नयी कहानी जिये हुए जीवन सत्य पर अधिक बल देती है। अतः लेखकों ने अपने-अपने दायरे में जिये हुए अपने जीवन-सत्यों को अनुभूति के स्तर पर बहुत प्राथमिकता और तीव्रता से उभारना चाहा है।"¹

स्वातंत्र्योत्तर कहानी अपनी पारंपरिक सपाटता, स्थूलता और संकुचितता से हटकर अधिक संप्रेषणजन्य हो गयी। भाषा का नवनीकरण, नई शब्द-संयोजना, अर्थ-व्याप्ति, नया शिल्प पक्ष आदि ने आधुनिक कहानी को एक नूतन स्वरूप गत सौष्टव दे दिया तो कहानीकारों का अनुभवजन्य यथार्थोन्मुख कथन शैली ने उसे जीवंत और सक्रिय बना दिया। इस संदर्भ में गंगाप्रसाद विमल का कथन उल्लेखनीय है—"यह तथ्य है कि जो सवाल कविता के माध्यम से नहीं उठाये जा सकते थे, मनुष्य की जिस पीड़ा का विवरण देने के लिए राजनीतिक वक्तव्य पर्याप्त नहीं थे, उसे व्यंजित करने में स्वातंत्र्योत्तर कहानी सफल रही है।"²

विश्व साहित्य में आधुनिकता का आरंभ 1950 के आसपास शुरू हुआ था। उसका प्रभाव भारतीय साहित्य पर सन् 1950 के बाद ही अनुभव किया जा सकता है। दर्शन के क्षेत्र में अस्तित्ववादी चिंतन ने भी, जिस गहराई

-
1. रामदरश मिश्र-नयी कहानी(लेख)-हिंदी कहानी-एक अंतरंग पहचान-1977-पृ.58
 2. गंगाप्रसाद विमल-आधुनिक हिंदी कहानी:एक प्रारंभिक निबंध(लेख)-आधुनिक हिंदी कहानी-2002-पृ.16

से विश्व साहित्य को प्रभावित किया था, हिंदी कहानी को नया मोड़ प्रदान किया। निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, उषा प्रियंवदा जैसे कहानीकार इस दार्शनिक दृष्टि से अवश्य अभिभूत हुए। उस मात्रा में न सही दूसरे भी अप्रभावित न रह सके। इतने पर भी यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कहानी का मूल स्वर दार्शनिक द्विधा नहीं है। उसका स्वर यथार्थ से संपृक्त है। उसीको आधुनिक कहना संगत प्रतीत होता है। इस अर्थ में कमलेश्वर का यह कथन प्रासंगिक लगता है—“नयी कहानी एक गतिवान प्रक्रिया को जन्म देती है और जीवन को झेलनेवाले केंद्रीय पात्रों की ओर अभिमुख होती है। इतिहास-क्रम की यथार्थ परिस्थितियों से निकलकर आया हुआ मनुष्य फिर कहानी का केंद्र बनता है और उपजीवी रीतिकालीन पात्रों का दौरा खत्म होता है। भारतीयता की तलाश शुरू होती है और इसीलिए अपने अनुभूत प्रामाणिक यथार्थ की ओर दृष्टि जाती है।”¹

आधुनिक कहानी की विशेषतायें

युग परिवर्तन का स्पन्दन इतिहास में ही नहीं, कला और साहित्य में भी दिखाई पड़ता है। बदलाव ही इन स्पन्दनों का स्रोत है। आधुनिक कहानी की विशेषतायें ये बदलाव हैं। ये बदलाव कुछ विशेष घटकों पर आश्रित हैं जिन्हें हम आधुनिक कहानी की विशेषतायें कह सकते हैं। ये विशेषतायें मात्र कहानी के वस्तु चयन में दर्शित होनेवाले बाहरी परिवर्तन नहीं हैं बल्कि ये आधुनिक कहानी की समाज-संपृक्ति के द्योतक भी हैं।

1. कमलेश्वर-नयी कहानी की भूमिका-1978-पृ.14-15

कथानक का हास

स्वतंत्रता के बाद की जीवन-पद्धति, विचाराधारा, सामाजिक-मूल्य-दृष्टि, संस्कार, परिवेश आदि में समूचा परिवर्तन आया। आधुनिक कहानी इन परिवर्तित संदर्भों की उपज है। आज की कहानियों का विषय-क्षेत्र नये जीवन-परिवेश की विभिन्नताओं से लेकर सूक्ष्मतर मानसिक संवेदनाओं तक व्याप्त रहा है। परंपरा की लीक से हटकर इन कहानियों में कोई विशेष घटना कहानी का आधार न रहकर, ज़िंदगी का कोई भी विचार, भाव, मूड़, क्षण आदि कहानी का कथानक बन जाता है। अतः आधुनिक कहानी को कथ्यहीन कहानी भी कही गयी है। हरिशंकर परसाई कहते हैं—“जैसे नवीन अभिव्यक्ति के आवेग से कविता में परंपरागत छंद-बंधन टूटे, वैसे ही अभिव्यक्ति की माँग करते हुए नये जीवन-प्रसंगों, नये यथार्थ ने, कहानी को इस चौखट से निकाला। आज जीवन का कोई भी खण्ड, मार्मिक क्षण, अपने में अर्थपूर्ण कोई भी घटना या प्रसंग कहानी के तंत्र में बंध सकता है”¹ डॉ. नामवरसिंह की राय में आधुनिक कहानियों में “कथानक नाम की चीज़ मिलती ही नहीं है। जीवन का लघु प्रसंग, प्रसंग-खण्ड, मूड़, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति-चरित्र ही कथानक बन गया है, अथवा उसमें कथानक की क्षमता मान ली गयी है। जो छोटी-सी बात पुराने कहानीकारों के लिए अपर्याप्त थी, उसी को नये कहानीकारों ने कहानी के लिए पर्याप्त मान लिया है और फिर उसके भीतर से

1. हरिशंकर परसाई-नयी कहानी(लेख)सं-देवीशंकर अवस्थी-नयी कहानी-संदर्भ और प्रकृति-1973-पृ.56

उन्होंने कहानी के कथानक की विभिन्न सिम्तों का विकास किया है"।¹ स्पष्ट है, अपने वर्तमान परिवेश के प्रति कहानीकारों की जागरूकता ने उन्हें कथानक के चुनाव या चयन में सहायता दी। जीवन का हर अंश चाहे वह कोई राजनीतिक या सामाजिक समस्या से ओतप्रोत हो, या व्यक्ति-मन की कुंठा या पीड़ा से भरी हो या अनुभूति का कोई क्षण हो या प्रेम-प्रसंग का कोई सूक्ष्म तंतु हो, उसमें कथा-विंदुओं का समावेश कराकर आधुनिक कहानीकारों ने चमत्कार किया है।

निर्मल वर्मा की कहानी "पहाड़", फणीश्वरनाथ रेणु की "पंचलाइट", मार्कण्डेय की "सहज और शुभ", मोहन राकेश की "वारिस" जैसी कहानियाँ जीवन की किसी संवेदनात्मक पक्ष से जुड़ी रहकर भी कथानक की सपाटता से मुक्त है। "पहाड़" में ऐसी एक दंपती का चित्रण है जो पहाड़ी प्रदेश में सैर के लिए आता है। अपने बच्चे का सामीप्य होने पर भी वे इस सैर का मज़ा उड़ा लेते हैं जैसे हनीमून के अवसरों पर उन्होंने किया था। "पंचलाइट" अंचल विशेष की कहानी है जिसमें बहुत रोचक ढंग से ग्रामीण जीवन का चित्रण हुआ है। "सहज और शुभ" में एक बूढ़ी विधवा का पक्षियों के प्रति प्रेम और उसका विक्षिप्त होकर उनकी तलाश में इधर-उधर पेड़ों और उनकी झालियों की ओर ताकना बच्चों के लिए आनन्द का विषय लगता है, वहीं उनके मन में बुढ़िया की चिड़िया को वापस करने के लिए हलचल भी मची होती है। "वारिस" में एक अनाथ बूढ़े ट्यूशन मास्टर का अपने छात्रों के प्रति वात्सल्य का मर्मस्पर्शी

1. नामवरसिंह-कहानी:नयी कहानी-1994-पृ.14

चित्रण है। ऐसी अनेक कहानियाँ आधुनिक काल में रची गयी हैं जिनमें विशेष कथा-तंतुओं का समावेश न होने पर भी वे ज़िंदगी से एकदम निकट हैं। आधुनिक कहानीकार की खूबी भी यह है कि ज़िंदगी के हर पल में उन्हें एक संवेदनात्मक क्षण मिल जाता है जिसे वह कथा-तंतु में बदल देता है। यह आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है।

जीवन के साथ सहस्थिति

आधुनिक कहानी ने ज़िंदगी के हर क्षेत्र के साथ अपना संबंध जोड़ा है। इस जोड़-तोड़ में उसने ऐसे तत्वों और तथ्यों को पाया कि कहानी मानव-जीवन से संपृक्त होकर ही रह सकती है। कल्पना के वायवीय लोक से उसे उतरना पड़ा। निर्विवाद रूप से हम कह सकते हैं कि आधुनिक कहानी अपने समय की माँग की सह स्थिति की अभिव्यक्ति है। प्रेमचंद की सामाजिक कहानियाँ कहानीकार के उन्नत सामाजिक भावबोध के उत्तम दृष्टांत हैं। कौशिक, अशक, यशपाल आदि कहानीकारों ने भी अपने समय की समस्याओं को अपनी रचनाओं द्वारा उजागर करने की कोशिश की। प्रसाद, अज्ञेय, जैनेंद्र आदि मानव-मन की निगूढ़ताओं को उकेरने में सफल हुए।

जब सामाजिक परिदृश्य ही बदल गया है तो उसका एकांगी रूप उतारने में कोई नवीनता नहीं रह गयी है। सामाजिक परिदृश्य जटिल भी होता गया। उसको शब्दों में बाँधने के लिए एक नयी स्थिति की ज़रूरत है। वह है कहानी को जीवन के साथ और जीवन को कहानी के साथ विशेष अनुपात में जोड़ना। अनुभव की प्रामाणिकतावाली बात यहीं पर सार्थक होती है।

पात्रों का निजत्व

कमलेश्वर ने लिखा है कि आधुनिक कहानी में पात्रों के 'स्व' का अन्वेषण संभव हुआ है। पात्र अपने 'स्व' सहित अवतरित है। वे न विचारधारा के वाहक हैं न कहानीकार के कठपुतले हैं। कहानीकार का वैचारिक हस्तक्षेप कहानी में खत्म हो गया। कहानी अपनी रचना के समय से लेकर शब्दों में उतरते तक अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने लगी। सब कहीं उपस्थित कहानीकार कहानी में से गायब होने लगा। पात्रों का स्वतंत्र विकास कहानी में नज़र आने लगा। कुछ पात्र अवश्य मुख्य थे। उनमें पुरुष पात्र भी हैं और स्त्री पात्र भी। अन्य कई पात्र भी हमें मिलते हैं। कहानी के सभी पात्र मुख्य भूमिका में अवतरित होते हैं अपनी निजता और अपनी अस्मिता को बनाए रखते हुए।

पात्रों का यह निजत्व वस्तुतः जीवन की बदलती दृष्टि का परिचायक है। स्वयंबोध की इसप्रकार की दृष्टि के पीछे गहन आत्मपक्ष तथा व्यापक वस्तुनिष्ठ पक्ष की भूमिका है। अतः कहानी की देह-भाषा में लक्षित यह परिवर्तन हमारे समाज के बुनियादी सरोकारों में आए परिवर्तन के कारण हैं।

भाषा की नई भंगिमायें

साहित्य एक ऐसा माध्यम है जिसमें प्रामाणिक अनुभवों की अनुभूतियों के आदान-प्रदान होते हैं। साहित्यकार अपनी रचना द्वारा दूसरों तक वैचारिक तत्वों और अनुभवों का संप्रेषण करता है। इस संप्रेषण में वह एक

ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहता है जिसमें क्षमता तथा प्रभाव हो। ऐसी भाषा की खोज हर युग में साहित्यकार के लिए चुनौती बन जाती है। युग के परिवर्तन के साथ होनेवाली मनःस्थितियाँ, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश भाषा के बदलाव के कारण बन जाते हैं। साहित्यकार का अनुभव-बोध युगानुकूल परिवर्तित होता रहता है। अपने समय के यथार्थ को चित्रित करने में पूर्ववर्ती भाषा पर्याप्त नहीं थी तो एक नयी भाषा की सृष्टि साहित्यकार का उत्तरदायित्व बन जाता है। जब परिवेश बदल जाता है तो उसके अनुसार मनुष्य की संवेदनायें, उसके चिंतन, क्रिया-कलाप आदि में भी परिवर्तन आ जाते हैं। कहानी जब इस नये यथार्थ को अभिव्यंजित करती है तो उसके पास अभिव्यक्ति को प्राणवान बनाने के लिए भाषा की ज़रूरत है।

आधुनिक कहानीकारों ने अपने लिए एक नयी भाषा की सृष्टि की। आधुनिक कहानी का परिवेश ऐसा था कि पुराने सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक मूल्य अप्रासंगिक हो चले थे। ज़िंदगी के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदल गया। उनके आदर्श बदल गये। संबंधों में बदलाव आया। पारिवारिक रिश्ते टूटने लगे। राजनीतिक आदर्श नष्ट हो गये। सांस्कृतिक क्षेत्र का पूरा ढाँचा ही बदल गया। मनुष्य में नया भावबोध उभर आया। दरअसल, आधुनिक कहानी इस बदले परिवेश का फल है। अतः उस परिवर्तन को उसकी संपूर्णता में व्यक्त करने के लिए आधुनिक कहानीकारों को जब पुराने शब्द, प्रयोग और बिंब पर्याप्त और सक्षम न जान पड़े तो वे नये नये शब्द प्रयोग, वाक्य संयोजन, प्रतीक विधान, बिंब धर्मिता और सांकेतिकता का

उपयोग करने लगे। कमलेश्वर का कथन है- "नए कहानीकार ने इसी भाषा की खोज की है, अपने भीतर से और अपने समय में से। इसी भाषा में उसने जीवन मूल्यों का स्पष्टीकरण किया है। इसी भाषा को उसने सारे विघटन, सारी घुटन, ऊब, बदहवासी और टूटन में से उठाया है.....यह भाषा मरते हुए शानदार अतीत की नहीं। उसीमें से फूटते हुए विलक्षण वर्तमान की भाषा है।"¹ वर्तमान परिवेश के अनुकूल भाषा का प्रयोग आधुनिक कहानी की विशेषता है।

पूर्व आधुनिक काल में भाषा में जो सपाटता और जड़ता थी, आधुनिक युग में आकर सचेत और सजीव हो गयी। वह इतनी गहरी और सूक्ष्म हो गयी कि उसमें मानव-मन की हरेक धड़कन ही नहीं, अपितु संपूर्ण सामाजिक गतिविधियाँ स्पष्ट हो गयीं। नये भावबोध से युक्त भाषा आधुनिक कहानी की देन है। उदाहरण के लिए कमलेश्वर की "खोई हुई दिशाएँ" नामक कहानी की भाषा शैली देखिए- ".....और तभी चन्दर को लगा कि एक अरसा हो गया, एक ज़माना गुज़र गया, वह खुद अपने से नहीं मिल पाया। अपने से बातें करने का वक्त ही नहीं मिला। यह भी नहीं पूछा कि आखिर तेरा हाल-चाल क्या है और तुझे क्या चाहिए? हल्की-सी मुस्कुराहट उसके ओठों पर आई और उसने हर शुक्रवार के आगे नोट किया-"खुद से मिलना है। शाम सात बजे से नौ बजे तक।"और आज भी तो शुक्रवार ही है। यह मुलाकात आज ही होनी चाहिए। घड़ी पर नज़र जाती है, सात बजा है। पर

1. कमलेश्वर-नयी कहानी की भूमिका-1978-पृ.175

मन का चोर हावी हो जाता है। क्यों न टी-हाउस में एक प्याला चाय पी ली जाए? न जाने क्यों मन अपने से मिलने में घबराता है। रह-रह कर कतराता है।¹ स्पष्ट है, नयी भाषा ने मनुष्य के अन्तर्मन तक जाने की क्षमता पायी। कमलेश्वर ने ठीक ही कहा है- "नई कहानी ने भाषा की जड़ता को तोड़ा। व्यक्तिगत और किताबी भाषा से अपने को पृथक कर समय के विस्तार में जी रहे मनुष्य की बोली में ही उसने नये अर्थों की खोज की।"²

आधुनिक कहानीकारों ने शहरी ज़िंदगी के लिए ही नहीं अपितु कस्बों और ग्रामीण प्रान्तों की ज़िंदगी को उभारने के लिए भी एक नई जीवंत भाषा का प्रयोग किया। ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति एवं आंचलिक परिवेश से जुड़ी हुई बोलियों ने कहानियों को जीवंत बनाया।

नई शिल्प-दृष्टि

साहित्य रचना में शिल्प का प्रयोग रचना के प्रभाव को सारवान बना देता है। रचनाकारों की अनुभूति की अभिव्यक्ति और उनके विचारों के संप्रेषण के लिए शिल्प की श्रेष्ठ भूमिका रहती है। उचित शिल्प विधान से विहीन रचना विचारात्मक और सौन्दर्यात्मक नहीं हो सकती है। गद्य रचनाओं की अपेक्षा काव्य जगत में शिल्प की सूक्ष्मता संगत है। बिंब, प्रतीक और अलंकारों से युक्त काव्य भाषा आस्वादन के स्तर पर ही नहीं, बल्कि वैचारिक

1. कमलेश्वर-खोई हुई दिशाएँ-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.38-39

2. कमलेश्वर-नयी कहानी की भूमिका-1978-पृ.176

क्षेत्र में भी अपना प्रभाव छोड़ती है। युग और परिवेश के अनुसार शिल्प में परिवर्तन, रचना की प्रभावोत्पादकता को दृष्टि में रखकर किया जाता है।

दरअसल, आधुनिक कहानी का आधुनिक भावबोध ही उसका शिल्प पक्ष है। अपने पूर्वकालीन कहानी की सपाटता, ब्यौरेपन आदि से अलग होकर भाषा का गहन, सूक्ष्म तथा सटीक प्रयोग करके आधुनिक कहानी ने अपनी प्रभावोत्पादकता के साथ साथ सौन्दर्य को भी बढ़ावा दिया। रमेश बक्षी के अनुसार- "नयी कहानी एक ओर यदि सही सही अनुभूति की सही सही ढंग से ग्रहण करना है तो दूसरी ओर सार्थक अभिव्यक्ति को कल्पनात्मक मोड़ देना भी है।"¹ विचार और सौन्दर्य का सामंजस्य आधुनिक कहानी के शिल्प पक्ष की विशेषता है।

स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक और आर्थिक संकट स्थितियाँ, पारिवारिक विच्छिन्नता, अकेलापन और परिवर्तित मानसिक दशा के सूक्ष्मांकन के लिए आधुनिक कहानीकारों को भिन्न भिन्न संकेतों और तरीकों का प्रयोग करना पड़ा। अमरकांत की "बस्ती", कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया", मन्नू भंडारी की "अकेली", मुक्तिबोध का "काठ का सपना" जैसी कहानियाँ उत्तम शिल्प सृष्टि के उदाहरण हैं। ये कहानियाँ अपने शीर्षक की नवीनता से लेकर कहानी के अंत तक शिल्प की सजीवता को ग्रहण करती रहीं।

1. रमेश बक्षी-कथाकार की अपना बात:आज की कहानी के संदर्भ में(लेख)सं.देवीसंकर अवस्थी-नयी कहानी-संदर्भ और प्रकृति-1973-पृ.107

लोककथाओं को आधार बनाकर, पुराणों से पात्र चुनकर और फॉतसी के माध्यम से कहानी की संरचना आधुनिक कहानी के शिल्प विधान में एक नयी प्रवृत्ति मान ली गयी है। "राजा निरबंसिया", "दादी माँ का चबूतरा", "महुए का पेड़", "रसपिरिया", "क्लॉड इथरली" आदि ऐसी कहानियों की कोटि में आती हैं।

इस तरह आधुनिक कहानी ने शिल्प पक्ष में आधुनिकता का समावेश करके अपनी क्षमता बढ़ायी है।

आधुनिक कहानी – प्रमुख प्रवृत्तियाँ

आधुनिक कहानी का मुख्य धरातल व्यक्ति-मन है। व्यक्ति की चेतना और संवेदनाओं को आधुनिक कहानी ने स्वर दिया है। बदले परिवेश में संकीर्णताओं से भरे आधुनिक मनुष्य का चित्रण इसमें हुआ है चाहे वह शहर का मनुष्य हो या गाँव-आंचल का। मगर यह भी स्पष्ट है कि आधुनिक कहानी का मकसद किसी अकेले व्यक्ति को, उसके दुख या तनाव को चित्रित करना नहीं है, मगर उसके इर्द-गिर्द उपस्थित सजग समाज भी है। आधुनिक कहानी में समाज की समग्र संवेदनायें और समाज का पूरा का पूरा परिवेश कहानी के पात्रों और उनकी जीवन-स्थितियों के माध्यम से प्रकट होते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि आधुनिक कहानी बाह्यतः व्यक्तिबद्ध और अंतरंगतः समाजबद्ध कहानियाँ हैं।

समाजबद्धता का बृहत्तर परिवेश

आधुनिक कहानी अधिक से अधिक समाजबद्ध होने के कारण समाज में होनेवाले परिवर्तन की ओर उसने ज़्यादा ध्यान दिया है। आधुनिक काल में समाज में आए परिवर्तनों को आधुनिक कहानी ने विभिन्न कोणों से परखा है। मूल्यों में आये परिवर्तन, संबंधों में आये परिवर्तन, प्रेम के नये आयाम, आंचलिक जीवन का परिप्रेक्ष्य आदि ऐसे घटक हैं जिनके माध्यम से आधुनिक कहानी ने अपने समय के समाज को प्रस्तुत किया है।

मूल्य-संबंधी परिवर्तन

समाज निरंतर परिवर्तन के लिए बाध्य है। उसके आचार-विचार, रहन-सहन, मान-मर्यादा सब कुछ इस परिवर्तन के कालजयी नियम के प्रवाह में बदलते रहते हैं। मनुष्य-समुदाय की अभ्युन्नति तथा भलाई के लिए कुछ मूल्यों को निर्धारित किया गया है जिनके पालन से मनुष्य शांति तथा संतोष का अनुभव कर सकता है। यह शाश्वत मूल्य संबंधी बात है। लेकिन यदि शाश्वत मूल्य भी रूढ़िबद्ध होते हैं तो उनको परिवर्तित होना है। मूल्य संबंधी अवधारणा में समयानुकूल परिवर्तन इसलिए आवश्यक है कि समाज अवरुद्ध अवस्था में जड़वत् न हो। लेकिन मूल्य परिवर्तन मात्र परिवर्तन के लिए न हो। आधुनिक कहानी ने मनुष्य सापेक्ष, गतिशील, जीवन सापेक्ष मूल्यों पर बल दिया है।

वैज्ञानिक प्रगति, आधुनिकीकरण और यांत्रिकीकरण के कारण मनुष्य के चिंतन में विस्फोटनात्मक परिवर्तन आए जिसके फलस्वरूप मनुष्य का बौद्धिक स्तर भी विकसित होने लगा। बिना समझे या जाने अथवा बिना परीक्षण-निरीक्षण से किसी बात पर विश्वास करनेवाला पुराना युग बीत चुका। अब उसका मस्तिष्क बातों के तथ्य या सत्य की खोज करने लगा। लेकिन इसके साथ ही मानव-जीवन में ऐसी भी बात हुई कि उसका दिल छोटा होने लगा। बुद्धि की प्रखरता ने दिल के बड़प्पन को संकीर्ण बना दिया। फलस्वरूप मानवीय मूल्यों की क्षति हो गयी। वैज्ञानिकता और आधुनिकता के बावजूद, ऐसे भी कुछ कारण हुए जिनसे मानव अपने मानवीय मूल्य खोकर संभ्रमित होने लगे। अर्थ की प्रधानता, स्वार्थ मोह, फैशनपरस्त ज़िंदगी आदि इनमें कुछ कारण हैं।

उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानी "वापसी" के द्वारा यह दिखाने की कोशिश की है कि अर्थ की प्रधानता ने किस तरह पारिवारिक संबंधों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। अर्थ का मोह पारिवारिक संबंधों के टूटने का मुख्य कारण बन गया है। माता-पिता और उनकी संतान, पति और पत्नी, भाई और बहन का पवित्र संबंध अर्थ लाभ के तराजू पर तोला जाता है। कहानी का गजाधर बाबू पत्नी और बच्चों के लिए धनोपार्जन का निमित्त मात्र था। जब वह रिटायर होकर वापस आया तो उनका अस्तित्व घर के वातावरण का कोई भाग नहीं बन सका। "चीफ की दावत" नामक अपनी कहानी में भीष्म साहनी ने आधुनिकता से उत्पन्न स्वार्थ-मोह का चित्रण किया है। जहाँ माँ बेटे

केलिए अफसरों के आगे एक मूल्यहीन वस्तु बन जाती है तो दूसरी बार वही माँ बेटे की तरक्की के लिए सबसे बड़ी मूल्यवान वस्तु बन जाती है। भीष्म साहनी की ही दूसरी कहानी "सेमिनार" में उन्होंने यांत्रिकीकरण और आधुनिकीकरण से उत्पन्न मनुष्य की चुस्ती और अलसता का चित्रण किया है। ये दो ऐसे घटक हैं जो मनुष्य की परिश्रमशीलता और सेवाभाव पर कुल्हाड़ी मारते हैं।

कमलेश्वर ने आधुनिकता में जड़ बन गये मानव-मन का चित्रण किया है अपनी कहानी "दिल्ली में एक मौत" में। यह कहानी आज के तथाकथित सभ्य, आधुनिक फैशन परस्त नगरों में फैलती हुई क्रूर अमानवीयता का उदाहरण है। सेठ दीवानचंद की शव-यात्रा में सम्मिलित होने के लिए बड़े जोर-शोर से तैयारियाँ हो रही हैं- "कपड़ों पर अयरन, बूट-पालिश, नये-नये सिले सूट, रंगीन साडी, जूड़े में फूल, सरदार जी का साज-सिंगार, टाई की नाट, और फिर, "यह सूट किधर सिलवाया?","....."बहुत अच्छा सिला है"।....."लाइनिंग इंडियन है?" "इंगलिश", "बहुत अच्छा फिटिंग है।"- जैसे संवाद- ये सब मिलकर जहाँ दिल्ली जैसी महानगरी की भाग-दौड़ भरी बनावटी ज़िंदगी का संकेत मिलता है, वहीं आधुनिक जीवन की उस अमानवीयता को भी प्रस्तुत करते हैं जो वहाँ घर करती जा रही है।

आधुनिकता स्त्री के व्यक्तित्व में भी कुछ निखरापन ला सकी। मगर वह पढ़ी-लिखी अल्पसंख्यकों तक सीमित रही। अनपढ़ गरीब स्त्री अब भी शोषण के शिकार हैं। आधुनिकता पुरुष वर्चस्व को बदल नहीं सकी। उसकी

चिंता, आशा, प्रतीक्षा या कल्पना का कोई मूल्य नहीं रहा। "हक हलाल" नामक कहानी में मोहन राकेश ने गरीब स्त्री की असहायता का चित्रण किया है। एक बूढ़े पंडित ने डेढ़ सौ रुपया देकर एक युवति से ब्याह कर दिया। लेकिन उसके भाग जाने से, शादी के समय उसके पिता को दिये हुए पैसा वसूल करने के लिए उसकी बहिन को वह घर में बुला लाता है। पुलिस द्वारा पत्नी पकड़ी जाती है तो बूढ़ा पंडित साली को वापस नहीं भेज देता है। समाज में स्त्री का मूल्य बाज़ार में बिकी जानेवाली चीज़ के समान है जो चाहे अपनी अपनी रुचि, संपत्ति या इच्छा के अनुसार खरीद सके। गरीबी या अभाव कभी कभी स्त्री की मान-मर्यादा तथा इज़्जत पर चुनौती बन जाती है। अधिकांश स्त्रियाँ इस चुनौती के आगे पराजित होकर, अपना स्वत्व खोकर, दीन-हीन ज़िंदगी जीने को मज़बूर हो जाती हैं।

संबंधों में आए परिवर्तन

पुराने ज़माने में भी संबंधों में निरंतर परिवर्तन होते रहते थे। लेकिन ये सब एक बनी-बनाई पारिवारिक स्थिति के भीतर सीमित रहते थे। आज पूरा परिवेश बदल चुका है। इसलिए संबंधों में आए परिवर्तन जैसे के तैसे नहीं रहते हैं। इन परिवर्तनों का मुख्य कारण मूल्यों का विघटन है। तेज़ रफ्तार से भरा जीवन और आधुनिक परिस्थितियाँ हैं। आधुनिक कहानी के समस्त कहानीकारों ने संबंधों में आए परिवर्तन को बखूबी प्रस्तुत किया है।

संयुक्त परिवारों के अणुकुटुम्बों में परिवर्तन ने रिश्तों में दरार पैदा की। माँ-बाप को दिये जानेवाले आदर और प्रेम एवं भ्रातृप्रेम की घनिष्ठता

कम होने लगी। रामदरश मिश्र ने "घर" नामक कहानी द्वारा अटूटे भ्रातृप्रेम की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। भीष्म साहनी ने "खून का रिश्ता" नामक कहानी में ऐसे दो भाइयों की ज़िंदगी पर प्रकाश डाला है जहाँ धन भ्रातृत्व का मोल पेश करता है। खून के रिश्तों में आये यह बदलाव, एक सामाजिक विपन्नता है, इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। मोहन राकेश ने "एक और ज़िंदगी" नामक कहानी में दांपत्य जीवन में पराजित होकर अलग हुए दंपतियों के, फिर से मिलने की छटपटाहट का चित्रण किया है। पति-पत्नी का सम-सह-योजन दांपत्य जीवन की आधारशिला है जो पारस्परिक प्रेम, आदर तथा समझौते की मृदुल रेश्मों से बुनी हुई हो। प्रकाश और बीना की ज़िंदगी इसलिए छिन्न भिन्न हुई कि दोनों ने एक दूसरे को समझने की कोशिश नहीं की। दाम्पत्य-संबंध की पूर्णता एक दूसरे की कमज़ोरियों को समझने तथा उन कमज़ोर पक्षों पर बल देने में है। पारिवारिक विच्छृंखलता का मूल कारण व्यक्ति-चरित्रों का न-खुलापन या संकीर्णता है। दांपत्य सूत्र में एक दूसरे को आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता है, पर दुर्भाग्यवश हमारे परिवार इसे खोता जा रहे हैं।

आधुनिकता की और एक विशेषता यौन-संबंधों में आया खुलापन है। भारतीय समाज में यौन-संबंध को केवल वैवाहिक संबंधों पर मान्यता प्राप्त होती थी और इसे ही केवल पवित्र माना जाता था। वैवाहिक संबंध के बाहर के यौन-संबंध अवैद्य के साथ-साथ पाप की कोटि में माना जाता था। आधुनिकीकरण के साथ-साथ आए पश्चिमीकरण के अन्धानुकरण ने

भारतवासियों को अपने प्राचीन पारंपरिक श्रेष्ठ मूल्यों को नकारने की नौबत दी। अब अवैद्य संबंध या भ्रूण हत्या कोई पाप नहीं है। परिणाम स्वरूप पति-पत्नी के आदर्श संबंध और प्रेमी-प्रेमिकाओं के विशुद्ध प्रेम भाव में दरार आयी। निर्मल वर्मा ने "अंतर" नामक कहानी में ऐसा एक चित्र खींचा है। इसके युवक और युवति अपने वैयक्तिक स्वतंत्रता और खुशी के लिए भ्रूण हत्या कर डालते हैं। सामाजिक व्यवस्था या मान-मर्यादा के विरुद्ध शारीरिक संबंध स्थापित कर, कोख में जन्मे बच्चे की हत्या करनेवाले युवक और युवति समाज की उस विपन्नता के दृष्टांत हैं जिसे हम अनैतिकता की कोटि में रखते हैं।

"कितना बड़ा झूठ" और "टूटे हुए" आदि कहानियों में उषा प्रियंवदा ने आदर्श दांपत्य जीवन के पतन का चित्रण किया है। अब आदर्श पति-पत्नी की भारतीय संकल्पना में दरार आ गयी है। पति-पत्नी के बीच का परस्पर विश्वास और प्रेम नष्ट होते जा रहे हैं। "कितना बड़ा झूठ" की "किरण" तथा "टूटे हुए" की "टीटी" काम पूर्ति के लिए पर-पुरुष से संबंध जोड़ती हैं। परंपरागत नैतिक मूल्यों का इस तरह का विघटन समाज में पारिवारिक टूटन का कारण बन गया है। मोहन राकेश की कहानी "मरुस्थल" में अनैतिकता का दूसरा चेहरा उभर आता है। समाज में कुछ लोग शरीर को व्यवसाय का केन्द्र बनाकर जीते हैं। बहुत कम लोग इसके लिए स्वयं तैयार हो जाते हैं, मगर अधिकांशतः मजबूरी से ऐसा करते हैं। धन-दौलत और सुख-सुविधाओं भरी जिंदगी की लालसा जीवन के आधारभूत तत्वों तथा नैतिक मूल्यों को विघटित करती है। वेश्या नसीम की नौ बरस की बेटी इंदु पढ़कर डाक्टर

बनना चाहती है, मगर माँ- बाप उसे बेचना चाहता है। वह बच्ची का सौदा करता है तथा उससे नाच नचाकर पैसा वसूल करने का इंतज़ाम करता है। बच्ची का विद्रोह या उसकी अभिलाषायें नगण्य बन जाती हैं।

राजनीति के क्षेत्र में पुराने आदर्श-संबंध एकदम विलीन हो गये। स्वतंत्रता के पहले राजनीति उत्तम गुणवाले राजनीतिज्ञों की देख-रेख में पली जाती थी। फिर बाद की जनतांत्रिक व्यवस्था में नेता इनके एकदम उल्टे हो गए। प्रजातंत्र में लोग नेता द्वारा छले जाते हैं। रामदरश मिश्र ने अपनी कहानी "ज़मीन" में नयी सरकार के ऐसे मंत्रियों का वर्णन किया है जो अपने भाषणों में लोगों के सामने बड़ी बड़ी महत्वाकांक्षायें रख देते हैं, मगर करते कुछ भी नहीं है। आधुनिक कहानी में कई ऐसी कहानियाँ हैं जो इस समस्या पर केंद्रित होकर रची गयी हैं। हरिशंकर परसाई की "राजनीति का बँटवारा", अमरकांत की "जनशत्रु" और "बस्ती" आदि ऐसी कहानियाँ हैं।

प्रेम के नए आयाम

विश्व साहित्य में बहुत सी रचनायें स्त्री-पुरुष के पारस्परिक प्रेम संबंध पर लिखी गयी हैं। भारत में भी बहुत सी ऐसी रचनायें हैं जिनके नायक और नायिका आदर्श प्रेमी और प्रेमिका के रूप में आज भी लोगों के दिल में अमर रहते हैं। कहानियों में ही नहीं बल्कि, यथार्थ जीवन में कितनों ने अपने प्रेम की पूर्ति के लिए प्राणों की बली दी है। आदर्श प्रेम हर देश के साहित्यकारों के लिए प्रिय विषय रहा है।

आधुनिक दौर में मन्नू भंडारी की कहानी "यही सच है" में प्रेम के नए संदर्भ को हम देख सकते हैं। कहानी की युवति अपने पति के रूप में उस युवक को स्वीकार करती है जिससे उसे ज़्यादा प्यार मिलता है। युवती के इस निर्णय में स्त्री स्वतंत्रता की बात ही प्रमुख है। रमेश बक्षी की "सज़ा" नामक कहानी में प्रेम का और एक चेहरा उभरकर आता है। युवती हमेशा डरती थी कि उसका प्रेम-संबंध खुल जाने पर परिवारवाले बिगड़ जायेंगे, पर खुल जाने पर बिगड़ने के स्थान पर वे सब सहमति प्रकट करते हैं। यह घटना युवति के दुख का कारण बन जाता है, क्योंकि वह अंदर ही अंदर विरोध की प्रतीक्षा करती थी और उस विरोध का सामना करके अपने आदर्श को लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहती थी। पुराने ज़माने में युवक-युवतियाँ छिप छिप कर ही प्रेम करते थे। क्योंकि माता-पिता और प्रौढ बन्धु जन प्रेम-संबंध को अपक्व मन का अविवेक मानते थे। लेकिन आधुनिकता के विशाल दृष्टिकोण ने माता-पिता और बन्धुजनों के दिलों को भी विशाल बना दिया है, फलतः इस प्रणय-युगलों को अडचन का सामना नहीं करना पड़ता।

मन्नू भंडारी ने अपनी कहानी "'ऊँचाई" में ऐसी एक प्रेम कहानी का चित्रण किया है जो अब तक की परंपरा से एकदम भिन्न है। इसकी नायिका शिवानी अब शादीशुदा है। पर जब उसकी मुलाकात अपने पुराने प्रेमी अतुल से हो जाती है तो उसे पता चलता है कि वह अब भी अविवाहित है और उसके मन में अब भी शिवानी के प्रति प्यार है। लेकिन इसको लेकर शिवानी पारंपरिक भारतीय नारी के समान रोती-बिलखती या बीती हुई स्मृतियों पर

नहीं खो जाती है। वह पति और प्रेमी दोनों से प्यार करती है। पर वह पति के स्थान पर अपने प्रेमी को कभी भी बिठाना नहीं चाहती। साथ ही साथ अपने प्रेमी से प्यार करती हुई, उससे सहानुभूति प्रकट करती हुई उसे एक नयी ज़िंदगी दिलाने की कोशिश करती है।

आधुनिक दौर में लिखी गयी इन प्रेम कहानियों का वाचन प्रेम कहानी के रूप में संभव नहीं है। इनमें मुख्यतः विघटित सामाजिक दृष्टि, स्वयं चेतना की परिणति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आधुनिक शिक्षा का प्रभाव, रूढ़ियों को तोड़ने की क्षमता आदि विचारणीय होते हैं। समाजशास्त्रीय प्रकरण में विश्लेषण करते समय ये ही पक्ष मुख्य हैं।

आंचलिक जीवन का परिदृश्य

स्वतंत्रता के पूर्व प्रेमचंद और उनके समकालीन और परवर्ती कहानीकारों ने ग्रामीण ज़िंदगी को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। प्रेमचंद उनमें सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। प्रेमचंद की अधिकांश रचनाएँ ग्रामीण परिवेश और ग्रामीण लोगों की ज़िंदगी के आधार पर रची हुई हैं। स्वतंत्रता के बाद कई ऐसे श्रेष्ठ कहानीकार हुए जिन्होंने शहरी जीवन-संबंधी कहानियों के साथ-साथ ग्रामीण ज़िंदगी पर आधारित कहानियों को भी प्रमुखता दी।

सामान्यतः अंचल या आंचल शब्द का प्रयोग किसी क्षेत्र या ग्राम के सीमांत प्रदेश के लिए किया जाता है। ग्रामीण कहानीकार जब से अंचल विशेष की कहानी प्रस्तुत करने लगे तब से "आंचलिकता" एक प्रवृत्ति के रूप में

प्रचलित हुई। 1950-51 के आसपास से इस प्रवृत्ति का प्रचलन हुआ। ऐसा माना जाता है कि नागार्जुन की "बलचनामा", भैरवप्रसाद की "गंगामैया" और 1951 में "प्रतीक" पत्रिका में प्रकाशित शिवप्रसादसिंह की कुछ कहानियों से इस प्रवृत्ति की शुरुआत हुई है। ग्राम कथाओं और आंचलिक कहानियों में प्रमुख अन्तर यह है कि ग्रामीण कथाएँ विशाल ग्रामीण परिवेश के आधार पर लिखी गई हैं। "ग्रामीण कहानियाँ" ज़्यादा व्यापक शब्द है। आंचलिक कहानियों में किसी विशेष अंचल की बोलियों, उक्तियों, रीति-रिवाज़ों और लोगों के रहन-सहन के अन्दाज़ा मिलते हैं। शिवप्रसाद सिंह कहते हैं- "आंचलिक वे ही कहानियाँ कही जा सकती हैं जो किसी जनपद के जीवन, रहन-सहन, भाषा-मुहावरें, रूढ़ियों-अन्धविश्वासों, पर्व-उत्सव, लोक-जीवन, गीत-नृत्य आदि को चित्रित करना ही अपना मुख्य उद्देश्य मानें। आंचलिक तत्त्व ही उनके साध्य होते हैं।"¹ दरअसल, फणीश्वर नाथ रेणु के "मैला अंचल" से आंचलिकता का खूब प्रचार हुआ।

विशेष भूखण्ड और उस भूखण्ड की समग्र जीवन प्रणालियों और समस्याओं के चित्रण करनेवालों में रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसादसिंह, रामदरश मिश्र आदि कहानीकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने ग्रामांचल की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को लोगों के सामने प्रस्तुत करके, अभी तक छिपे रहे अंचल के लोगों को मान्यता दिलाने की कोशिश की और उन्हें

1. शिवप्रसाद सिंह-आज की हिंदी कहानी:प्रगति और परिमिति(लेख)सं.देवीशंकर अवस्थी-नयी कहानी:सन्दर्भ और प्रकृति-1973-पृ.143-144

भी समाज की मुख्य धारा में लाने का परिश्रम किया। "रसपिरिया", "पंचलाइट", "कल्याणमन", "महुए का पेड़", "आदर्श कुक्कुट गृह", "सहज और शुभ", "नन्हो", "एक औरत एक ज़िंदगी" आदि बहुचर्चित आंचलिक कहानियाँ हैं।

आधुनिक दौर की इन कहानियों में क्या विषय का अंतर दिखाई पड़ता है? ऐसा तो नहीं हो सकता। एक तरफ विस्तृत क्षेत्र पुनः जीवित रखने की इच्छा इन कहानियों में है। साथ ही साथ स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन मुख्य हो उठता है। समाजशास्त्रीय संदर्भ में इन दो पक्षों पर विचार करना आवश्यक है।

सांस्कृतिक परिदृश्य

मानव-जाति का विकास किसी वर्ग, वर्ण, दल या धर्म के ज़रिये नहीं होता है। मानव-समाज के हर सदस्य की संपूर्ण सहकारिता और देन इसके आधार रहते हैं। उँच-नीच, लिंग-वर्ण, भाषा-देश की भिन्नता से दूर, मनुष्य-महत्व की मीमांसा को ऊपर उठानेवाले तत्व समता और एकता है। इसे ही संस्कृति के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

साहित्य की रचना प्रक्रिया को सांस्कृतिक प्रक्रिया मान सकते हैं। रचनाकार की जीवन-दृष्टि के रूपायन में और उसके मूल्यबोध के विकास में सांस्कृतिक परिवेश का बड़ा हाथ है। आधुनिक कहानीकारों का जीवन परिवेश आधुनिकता का परिवेश था। भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति का मिलावट पहले से ही हुआ था। राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में आए परिवर्तन भारतीय लोगों के संस्कार में एक नया मोड़ लाने में प्रमुख घटक

रहे। सामाजिक क्षेत्र में युवा पीढी के लिए जीवन में अब कोई विशेष लक्ष्य या आदर्श न रहा। क्योंकि जो आज़ादी उन्हें प्राप्त करनी थी वह हाथ में आयी थी। शिक्षा की प्रगति का लाभ कुछ युवकों ने उठाया, पर शिक्षा प्राप्ति के बाद उचित नौकरी उन्हें नहीं मिली। नयी सरकार रोज़गारी की समस्या का समाधान न कर सकी। फलतः युवा पीढी हताश और विद्रोही होने लगी। दरअसल, यह हताशा और मोहभंग की स्थिति आधुनिक काल के भारतीय संस्कृति का आधार मान सकते हैं। आधुनिक कहानी संक्रांति काल के मिश्र संस्कृति-भारतीयता और पश्चिमीकरण-में गुज़रे भारतवासियों की कहानी है।

परंपरित भारतीय संस्कृति की नींव आधुनिकीकरण के प्रभाव से हिलने डुलने लगी। भीष्म साहनी की "चीफ की दावत" में इसकी झलक मिलती है। बेटा शामनाथ में आधुनिक सभ्यता से उत्पन्न स्वार्थ मोह है तो उसकी माँ में भारतीय परंपरा या यों कहे कि भारतीयता दृष्टिगोचर होती है। भारतीय माँ का अतुल्य वात्सल्य भाव बेटे के फैशेनपरस्त मानसिकता को जीत लेता है।

प्रवासी ज़िंदगी में भी भारतीय लोग अपनी संस्कृति से अलग नहीं होते। नौकरी की सुविधा और जीवन की प्रगति इस प्रवासी ज़िंदगी का लक्ष्य रहा होगा। इसके लिए अनेक समझौते करने के बावजूद भी उनका मन अपने देश और देशी रीति-रिवाज़ों में मग्न रहता है। उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानी "चाँदनी में बर्फ पर" में इसका उल्लेख किया है। हेमन्त की ज़िंदगी की तरक्की अमेरिका में हुई। वह एक अमेरिकी से शादी भी करता है। सारे समझौते के

बावजूद भी उसका मन अपने देश और वहाँ के वातावरण में टिका रहता है। कमलेश्वर की कहानी "दिल्ली में एक मौत" परिवर्तित भारतीय संस्कृति का परिचायक है। आधुनिक परिवेश ने मौत को भी आधुनिक बनाया है। स्त्री-पुरुष के यौन-संबंधों में आया खुलापन पश्चिमी सभ्यता की ही देन है। उषा प्रियंवदा की "कितना बड़ा झूठ" और "टूटे हुए", निर्मल वर्मा की "बावली" आदि कहानियों में भारतीय परंपरा से अलग होकर खुले यौन-संबंध स्थापित करनेवाली भारतीय स्त्रियों का जिक्र है। यह उच्च मध्यवर्गीय स्त्रियों की ज़िंदगी पर आयी हुई विसंगति है। मध्यवर्गीय नारी की इस भ्रष्ट मानसिकता के पीछे पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण काम करता है जिसमें नैतिकता और रिश्तों में गहराई नहीं है। रामदरश मिश्र की कहानी "पराया शहर" गाँव से बिछुड़े एक युवक का शहरी परिवेश में अनभूत खोखले संबंधों और धोखेबाज़ी का वर्णन है। सांस्कृतिक परिवेश के दूषित होने की उत्कंठा इन कहानियों में स्पष्ट है। इस तरह आधुनिक कहानियाँ अपने परिवेश का तल्लख एहसास कराती हुई और उस पर व्यंग्य करती हुई अपनी संस्कृति की महिमा का रेखांकन करती रहीं।



अध्याय—तीन

आधुनिक हिंदी कहानी में मध्यवर्गीय समाज का समाजशास्त्र

मध्यवर्ग का उदय

वास्तव में आधुनिक कहानी मध्यवर्गीय यथार्थ की कहानी है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय जन-जीवन में जो बदलाव आया वह पूँजीवादी या सामंती व्यवस्था की प्रतिक्रिया थी। समाज में मध्यवर्ग अपनी अस्मिता की तलाश आरंभ कर चुका था। साहित्य उच्चवर्ग या निम्नवर्ग की देन न होकर मध्यवर्ग की आशा-निराशाओं तथा प्रतिरोध और प्रतीक्षाओं का माध्यम बना। अधिकांश साहित्यकार मध्यवर्ग से संबद्ध हुए हैं। बदले हुए परिवेश में इन साहित्यकारों ने समाज की सच्चाई को उसकी संपूर्णता में खोजने, परखने तथा अपनी कृतियों में दर्ज करने की कोशिश की है।

उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज का सबसे प्रमुख विकास मध्यवर्ग का आर्विभाव ही है जो एक नये सामाजिक वर्ग के रूप में उभर आया। भारत में मध्यवर्ग का उदय अंग्रेज़ी शासन-व्यवस्था के दौरान हुआ। अंग्रेज़ी सत्ता ने प्रत्यक्ष रूप से भारत में पराजय स्वीकार कर लिया था, मगर परोक्ष रूप से जन-मानस में उसने अपना अमिट प्रभाव इस तरह छोड़ दिया था जिससे भारतीय सामाजिक व्यवस्था एकदम परिवर्तित हुई। समाजशास्त्री विद्याभूषण और डी.आर.सचदेव का प्रस्ताव ध्यान देने योग्य है—“यह दो तरह की प्रवृत्तियों का नतीजा है— पुराने शासन का नाश एक ओर और दूसरी ओर

ज़मींदारों, व्यापारियों तथा बुद्धिजीवियों के नये नये समूह का उदय। उच्च वर्ग का अधःपतन ब्रिटीश जीत का सीधा परिणाम था तो व्यावसायिक दलों का रूपायन यूरोपीय व्यावसायिक उद्यम का उप-उपज था और साथ ही ज़मींदारों तथा बुद्धिजीवियों का विकास ब्रिटीश प्रशासन और पाश्चात्य शिक्षा संप्रदाय के कारण था। दूसरे शब्दों में कहे भारतीय मध्यवर्ग का सृष्टा ब्रिटीश शासन था।”¹ अधिकार ग्रस्त सत्ता के साथ जुड़ने का मोह और उससे तादात्म्य प्राप्त करने की लालसा के साथ यह वर्ग विकसित हुआ। अध्ययन, शिक्षा आदि से इस वर्ग की पुष्टि भी हुई। जब समाज का ऐसा विकास संभव होता है तो उसके सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में असर पड़ना स्वाभाविक है। डी.पी.मुखर्जी ने भारतीय मध्यवर्ग का विश्लेषण यों किया है—“उपनिवेशवादी व्यवस्था के कारण यहाँ एक ओर तो सुख-सुविधा और फुर्सत की ज़िंदगी जीनेवालों का एक नया वर्ग सामने आया तो दूसरी ओर अंग्रेज़ी शिक्षा में पला-बढ़ा वह समुदाय विकसित हुआ जो भारतीय समाज से लगभग विच्छिन्न और अंग्रेज़ी राज का समर्थक था। इन्हीं दोनों के मेल से उस समय का मध्यवर्ग बना था, जो न तो पश्चिम के बुर्जुआ वर्ग जैसा था और पुराने भारतीय व्यापारी वर्ग की

1. It was the consequence of a two fold process—the destruction of the old ruling class, on the one hand, and the rise of the new groups of land holders, businessmen and intellectuals, on the other. The destruction of the old upper class was the direct result of the British conquest, the formation of the business class a by-product of European business enterprise, and the growth of the land holding and intellectual groups was due to the establishment of British administration and introduction of western education. In other words the creator of the Indian middleclass was the British rule.

—Vidya Bhushan and D.R. Sachdev—Sociology--2005--P.301

तरह। यह मध्यवर्ग अपनी जड़ों से कटा हुआ, आधारहीन वर्ग था। इनमें से पश्चिमी शिक्षा में पला-बढ़ा समुदाय पश्चिमी संस्कृति के आयात का माध्यम बना।¹ सच यह है कि मध्यवर्ग का सांस्कृतिक परिवेश पश्चिमी और भारतीयता का संकलन था।

दरअसल अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद ने हमारी पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था को अस्तव्यस्त कर दिया। भारतीय चिंतनधारा पर पाश्चात्य विचारों ने इतना प्रभाव छोड़ा कि भारतीय संस्कृति अपनी लीक से हटकर चलने लगी। उसमें अंधानुकरण की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ ली और फिर धीरे धीरे एक नये सांस्कृतिक पुनर्जागरण का सूत्रपात हुआ। पारंपरिक भारतीय सामाजिक संरचना और पाश्चात्य आधुनिकता के मिलन से भारतीय संस्कृति और सभ्यता में एक नया इतिहास रचा गया। विज्ञान की प्रगति, बुद्धिवाद और औद्योगिकता ने सारी जीवन-निष्ठा और जीवन-पद्धति को बदल दिया। एक नये सामाजिक वर्ग के रूप में उभर आये मध्यवर्ग की जिंदगी को रूपायित करने में तथा उनके मानसिक और बौद्धिक पहलुओं की पुष्टि में इन घटकों का समावेश गहरा है। समाज में अपनी अलग पहचान बनाये रखनेवाला यह वर्ग समाज की गतिविधियों की नियामक शक्ति बन गया। इसमें बुद्धिजीवि और कलाकारों से लेकर नौकरीपेशा वर्ग तक आते हैं। इस वर्ग को देश का "धन और मस्तिष्क" भी कहा जा सकता है।

1. डी.पी.मुखर्जी-सोशियोलजी ऑफ इंडियन लिटरेचर इन डैवेर्सिटीस-1958-पृ.304

मध्यवर्ग को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—उच्च स्तरीय मध्यवर्ग, मध्यवर्ग और निम्न स्तरीय मध्यवर्ग। इन तीनों में अपने स्तर से ऊपर उठने की अभिलाषा है, मगर इसकी पूर्ति न होने के कारण उनमें घुटन भी है। आम तौर पर इन तीनों स्तर के आदमी अपूर्ण इच्छाओं तथा प्रयत्नों से घिरे रहते हैं जिससे उनका मन कटु, निराश और निर्विकार बन गये हैं। मुक्तिबोध का कथन है—“निम्न मध्यवर्ग की स्पृहा उच्च-मध्यवर्ग में जा बैठने की है। किंतु, वास्तविकता उसे पीछे ढकेलती है, और निचले वर्ग के साथ होने के लिए, आर्थिक दृष्टि से भी, बाध्य करती है। संक्षेप में, उसमें उच्च मध्यवर्गीय मनोरम स्वप्न-भ्रम है, तो दूसरी ओर, समाज की क्रांतिकारी शक्तियों की ओर जाने की प्रवृत्ति भी है।..... फलतः उसके भीतर न केवल द्वन्द है, अपनी मूलभूत इच्छापूर्ति के फलस्वरूप उसमें तनाव भी है। चूँकि यह मौजूदा स्थिति में अपने पूर्ण विकास का मार्ग नहीं खोज पाता, इसलिए उसमें एक ऐकांतिक घिराव भी है”।¹

आधुनिक काल के मध्यवर्गीय समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन उनके स्व को पहचानने में सहायक सिद्ध होगा। इसके लिए परंपरा और आधुनिकता के बीच का संघर्ष, मध्यवर्ग की मानसिकता, मध्यवर्ग का शिक्षित समाज, मध्यवर्ग की सीमायें, मध्यवर्ग की प्रतिरोधी मानसिकता जैसे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का परिचय होना आवश्यक है जो आधुनिक हिंदी कथा संसार में भरा पड़ा है।

1. नेमीचंद्र जैन—मुक्तिबोध रचनावली:पाँच—1980—पृ.126

परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष

हिंदी साहित्य में मध्यवर्ग को अपनी कृतियों में प्रमुख स्थान देनेवाले दो श्रेष्ठ साहित्यकार हैं— प्रेमचंद और मुक्तिबोध। प्रेमचंद के पहले भारतेन्दु ने एकाध स्थल पर इनका जिक्र किया था, मगर प्रेमचंद ने ही सबसे पहले अपनी रचनाओं में, विशेषकर अपने उपन्यासों में मध्यवर्ग को लाने का प्रयत्न किया। प्रेमचंद के "गबन" और "गोदान" इसके अद्वितीय दृष्टांत हैं। आधुनिक कवि और कहानीकार मुक्तिबोध सामान्य भारतीय मध्यवर्गीय व्यक्ति थे। इन्होंने मध्यवर्गीय व्यक्ति की आकांक्षाओं और विह्वलताओं को समझा और उनमें उत्पीड़ित मानवता के प्रति अपनी गहरी आसक्ति की रिश्ता भी जोड़ दी। वे अपने को मध्यवर्ग का प्रतिनिधि मानते हैं— "यह निम्न-मध्यवर्ग देश की एक आटोमेटिक सीढ़ी या व्यापक ज़मीन है। टूटे हुए संयुक्त परिवार के, शिक्षाप्राप्त किसान वर्ग के या मज़दूर वर्ग के युवक, गरीब मध्यवर्ग के युवक यहाँ साथ-साथ आकर मिलते हैं। यह ज़मीन मुहाना भी है, संगम भी है। निम्न-मध्यवर्ग में से कुछ लोग थोड़े ऊपर पहुँच गये हैं। तो भी मध्यवर्ग में बहुसंख्यक गरीब वर्ग हैं, भले ही वह कुछ लोगों के अनुसार "भद्रता" से "ग्रस्त" हैं। यह सही है कि मैं अपनी कहानियों और कविताओं में उसी गरीब मध्यवर्ग का प्रतिनिधि चरित्र हूँ।"¹

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय संस्कृति में पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पड़ा जिससे सामाजिक संगठन, पारिवारिक संतुलन तथा वैयक्तिक

1. विष्णुचंद्र शर्मा—मुक्तिबोध की आत्मकथा—1984—पृ.444-445

भावबोध में अप्रत्याशित अंतर आया। युगों से पालित आचारों, शैलियों और विचारों में पुनःचिंतन की आवश्यकता महसूस की गयी। कुछ में नवनीकरण की ज़रूरत थी। बहुत कुछ को इसलिए धिक्कारा गया कि उनके अनुष्ठान में ज़्यादा मेहनत की आवश्यकता है। आधुनिक भावबोध, चिंतायें और रीतियाँ एक प्रकार से सरल और संवेदनात्मक थीं जिन्हें आसानी से ग्रहण कर सकते थे। मगर भारतीय समाज ने इन नवीन आदर्शों को पूर्ण रूप से आत्मसात नहीं किया। वह ऐसे एक चक्कर में पड़ गया कि वह आधा पुराना और आधा नवीन रह गया। ज़िंदगी के हर कार्य में इन दोनों के बीच का संघर्ष उनका पीछा रहा। भारतीय पारिवारिक संस्कृति का जो दुनिया की अन्य संस्कृतियों के बगैर सुदृढ़ है, हिलने डुलने लगी, वैयक्तिक जीवन में बिखराव आने लगा। मुक्तिबोध का कथन है—“परिवार के भीतर नये और पुराने का ज़बरदस्त संघर्ष चलता है कि उसके भीतर अहंवादी तथा अनुदार संकुचित दृष्टिवादी प्रवृत्तियों की टकराहट होती है—उस प्रवृत्ति से जो अधिक उदार है, अधिक व्यापक दृष्टिवाली है।”¹ नतीजा यह हुआ कि मध्यवर्ग ने इस विशेष परिस्थिति से बचने के लिए अवसरवादिता को अपनायी – “हमने अपने साक्षात् जीवन में, यानी परिवार और समाज में, बीतते हुए पुराने के प्रति और आते हुए नए के प्रति एक अवसरवादी दृष्टि अपनायी।”²

मध्यवर्ग से आये साहित्यकार अपने इस नये परिवेश से अछूते न रहे। उन्होंने जीवन की नयी परिस्थितियों तथा नये अनुभवों को और उनसे

1. नेमीचंद्र जैन—मुक्तिबोध रचनावली:पाँच—1980—पृ.133

2. नेमीचंद्र जैन—मुक्तिबोध रचनावली:चार—1980—पृ.42-43

उत्पन्न समस्याओं को अपनी रचनाओं में शब्दबद्ध कर दिया। यह समाजशास्त्रीय मान्यता है कि "समाज की संस्कृति व्यक्ति को प्रभावित करती है और संस्कृति के रूपायन में व्यक्ति सहायक निकलता है।"¹ मध्यवर्ग ने एक नयी संस्कृति की सृष्टि की। मगर यह नयी संस्कृति उसे घुटन के अलावा और कोई महत्व या गरिमा प्रदान न कर सकी। क्योंकि इस संस्कृति ने उसे दोहरा व्यक्तित्व का कंबल ओढ़ाया। वह आधुनिक होकर आगे बढ़ने के साथ-साथ पारंपरिक होकर पीछे की ओर भी मुड़ने लगा। "वह सभ्यता का झूठा लबादा उतरकर फेंक देना चाहता है पर उसे ओढ़े रहने की निरर्थक गरिमा को त्यागने का साहस भी उसमें नहीं है। और यह आवरण उसे आर्थिक संकट की चक्की में पीसे डाल रहा है। नैतिकता, आस्था, आदर्श जैसे खोखले शब्दों के मायाजाल में उसके लिए यह पहचान भी मुश्किल हो गई है कि वह जिस डाल पर बैठा है, उसी को काट रहा है।"²

हिंदी कहानी में मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न आयाम

"सुहागिन" नामक अपनी कहानी में मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय स्त्री के माध्यम से उसकी मनःस्थितियों का उद्घाटन किया है। इस कहानी में दो स्त्रियाँ हैं। एक मध्यवर्गीय स्त्री और दूसरी निम्नवर्गीय। इनमें निम्न वर्गीय स्त्री

1. Margaret Mead, Kardiner and others who maintained that society's culture affects personality (individual) and, in turn, personality helps in the formation of society's culture.

H.K. Rawat, Sociology—Basic Concepts—2007, P.160

2. गंगा प्रसाद विमल—आधुनिक हिंदी कहानी—2002—पृ.79

परंपरा के अधीन होकर भी संतुष्ट है, तो, दूसरी, आधुनिक पति की पत्नी होने से तड़प रही है। परंपरा और आधुनिकता का यह आँख-मिचौनी-खेल मध्यवर्गीय ज़िंदगी की विडंबना है। मूल रूप से इस वर्ग में परंपरा या पारंपरिक रीति-रिवाज़ या आचार-विचारों की जड़ें गहराई से फैली हुई हैं। इसीलिए ही आधुनिकता के प्रभाव के बावजूद भी वे इनको छोड़ नहीं पाते। आधुनिक पति की पत्नी होने से मनोरमा और पारंपरिक दुर्व्यवहृत पति से काशी तड़प रही है। शिक्षित और नौकरीपेशा होने पर भी मनोरमा को, अपनी चाह और दिल की संवेदनाओं की बलि देकर, पति के स्वार्थों की पूर्ति में सहायक बनना पड़ता है। काशी भारतीय नारी के आदर्श सती-सावित्री के समान अपने नालायक पति के आतंकों को सहन करती है। अशिक्षित होने से उसके विचार और उसकी चिंतायें स्थूल रहती हैं। सहन की यह रीति पारंपरिक भारतीय स्त्रीत्व का सही प्रतिफलन है।

आधुनिकता ने अपनी पंखें इतना व्यापक फैला दी हैं कि मातृत्व की कोमलता भी स्त्री से छीन ली जाती है। पढी-लिखी और नौकरी-पेशा होने पर भी मनोरमा को अपने पति की इच्छा के अनुसार जीना पड़ता है। यद्यपि आधुनिकता ने स्त्री को शिक्षा दी, उसे नौकरी-पेशा बना दी, उसके जीवन-स्तर को बढ़ाया, फिर भी पारिवारिक क्षेत्र में अब भी स्त्री पहले की जैसी है। वह अब भी सर्व-सहा है। माँ बनने से अपनी पत्नी की फिगर खराब हो जाने का डर तथा माँ बनने पर नौकरी को छोड़ने का डर रखनेवाला पति अब भी सामंती व्यवस्था का पुरुष है। अपनी बहिन की शादी तथा अपने छोटे भाईयों

की पढ़ाई के लिए पत्नी के तनख्वाह के एक-एक पैसे का लेखा-जोखा रखनेवाला वह आधुनिक सभ्यता का विकृत चेहरा है— "उससे एक तो उसके फिगर के खराब हो जाने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी सवाल था। सुशील नहीं चाहता था कि वह अपनी लगी हुई नौकरी छोड़कर" डाई के लिए पत्नी की तनख्वाह के एक-एक पैसे का लेखा-जोखा रखनेवाला वह आधुनिक सभ्यता का विकृत चेहरा है— "उससे एक तो उसके फिगर के खराब हो जाने का डर था, फिर उसकी नौकरी का भी सवाल था। सुशील नहीं चाहता था कि वह अपनी लगी हुई नौकरी छोड़कर बस घर-गृहस्थी के काम लायक ही हो रहे। साल-छः महीने में उसे अपनी बहिन अम्मी का ब्याह करना था। उसके दो छोटे भाई कालेज में पढ़ रहे थे। उन दिनों उनके लिए एक-एक पैसे की कीमत थी। वह कम से कम पाँच साल ऐहतियात से चलना चाहता था।"¹

मध्यवर्ग आधुनिक होने का ढोंग रचता है, पर वह परंपरा की ओर और अधिक अभिमुख है। काशी, पति के दुर्व्यवहार से आहत होकर भी, उससे मिलती है। तीन बच्चे होते हुए भी, फिर से गर्भवती बनने में वह कोई हिचक अनुभव नहीं करती। इस प्रकार वह परंपरा का पालन ही करती है। इधर मनोरमा सुशील के अभाव में अपने-आप को खाली-खाली सी पाती है। वह अपने मन की बातें पति से खुलकर बता भी नहीं सकती— "यह बात सुशील को कैसे समझा सकेगी कि अपने आप उसे बिलकुल खाली-खाली-सा लगता

1. मोहन राकेश-सुहागिनें-एक और ज़िंदगी-1961-पृ.25

है, और वह, अपने अभाव को भरने के लिए उससे कुछ चाहती है..... वह कुछ जो उसके आसपास हँसता, रोता और किलकारियाँ मारता रहे।"¹

कहानीकार ने अपने समय के समाज की इस सच्चाई को ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। "नये दौर की मेरी अधिकाँश कहानियाँ संबंधों की यंत्रणाओं को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है। यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है और उसकी परिणति भी किसी तरह के सिनिज़म में नहीं, झेलने की प्रतिष्ठा में है। व्यक्ति और समाज को परस्पर-विरोधी एक दूसरे से भिन्न और आपस में कटी हुई इकाईयाँ न मानकर यहाँ उन्हें एक ऐसी अभिन्नता में देखने का प्रयत्न है जहाँ व्यक्ति समाज की विडंबनाओं का, समाज के व्यक्ति की यंत्रणाओं का आईना है।"²

आधुनिक काल स्त्रियों के उत्थान का काल है। स्त्री के शिक्षित होने से उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हुआ जिसका प्रतिफलन सामाजिक जीवन में ही नहीं, साहित्य-क्षेत्र में भी दृष्टव्य है। साहित्य में महिला रचनाकारों का पदार्पण उनका अपना ही नहीं, समाज की अन्य स्त्रियों के उत्थान का कारण बन गया। इन्होंने पारंपरिक स्त्री संकल्पना की उपेक्षा कर, उन्हें ऐसे एक भाव-जगत में खड़ा कर दिया कि आधुनिक स्त्री अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता

1. मोहन राकेश-सुहागिनें-एक और ज़िंदगी-1961-पृ.41

2. मोहन राकेश-मेरी प्रिय कहानियाँ-1976-भूमिका

महसूस करने लगी। मध्यवर्ग से आयी इन लेखिकाओं के सामने अपने ही वर्ग की स्त्रियों के घुटन, अकेलापन और दासता का सीधा अनुभव था जिनका उन्मूलन उनका ध्येय रहा। संक्रांति के इस काल में उनकी बदलती मानसिक स्थिति का चित्रण करने में वे सफल रहीं। आधुनिक कहानी की लेखिकाओं में मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा और कृष्णा सोबती आदि ने अपनी कहानियों में पारंपरिक भारतीय स्त्री के मिथ को तोड़कर स्त्री जीवन के कई अछूते और वर्जित प्रसंगों का उल्लेख किया है।

मन्नू भंडारी ने "ऊँचाई" नामक अपनी कहानी में मुख्य पात्र शिवानी को केंद्र बनाकर आधुनिक स्त्री की नयी संघर्ष—परंपरा और आधुनिकता—को उजागर किया है। दरअसल, आधुनिक युग ने औसत मध्यवर्गीय नारियों की चिंताधाराओं को एकदम उल्टा कर दिया है। असमंजस में पड़ी वह यह निर्णय नहीं कर पाती कि क्या सही है, क्या गलत। एक ओर पारंपरिक रूढ़ियाँ और तथाकथित प्रणालियाँ उसे जकड़ देती हैं तो दूसरी ओर नवीन विचार, शैलियाँ तथा दृष्टिकोण उसे नवीन जीवन-धारा की ओर खींच लेती है। नतीजा यह होता है कि वह परंपरा से कटती भी नहीं है और आधुनिकता को ग्रहण भी नहीं कर सकती है। इन दोनों के बीच संघर्ष करनेवाली मध्यवर्गीय स्त्री स्वातंत्र्योत्तर परिवेश की उपज है। शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र की वृद्धि ने नारी को अपनी पुरानी मान्यताओं को पार कराने में मदद की। वह पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने लगी तो पारंपरिक भारतीय परिवार में हलचल मचलने लगी। पश्चिमी सभ्यता का चकाचौंध तथा रूढ़िग्रस्त भारतीय संस्कृति के

गठबन्धन ने उसके मन को भ्रम में डाल दिया। "ऊँचाई" की शिवानी इस कोटी के अंतर्गत आती है। शिवानी अपने पति और प्रेमी दोनों से प्यार करती है। मगर एक पारंपरिक भारतीय स्त्री के नाते वह अपने पति को इतना ऊँचा स्थान देती है कि उसके स्थान पर प्रेमी को बिठाना नहीं चाहती। साथ ही प्रेमी को इतना प्यार भी देना चाहती है जिससे उसको एक नयी ज़िंदगी मिले।

शिवानी एक पारंपरिक औसत गृहिणी नहीं है। यदि ऐसा होती तो वह अपने पति और बच्चों की देखभाल करती हुई, पुराने प्रेमी से अपने प्यार को छिपाती रहती। लेकिन यहाँ शिवानी खुलकर प्रेमी से अपने पति के प्रति अपने अटूट प्यार के बारे में तथा पति से अपने प्रेमी के प्रति उसका जिस तरह का लगाव है, बयान करती है। यह तो बदली हुई मानसिक स्थिति का बहिर्गमन है। इस स्थिति ने उसके दिल से संकोच और डर को निकाल दिया है। शिवानी अपने प्रेमी अतुल से कहती है— "मैंने शिशिर के साथ धोखा नहीं किया..... उनको छलने का साहस इस जन्म में तो शायद ही कभी जुटा पाऊँ।"¹ वह पति से कहती है—"अतुल अपनी सीमा जानता है। जो उसका नहीं, उसे पाने की लालसा भी कभी नहीं करता। अपने को कष्ट देना वह जानता है, दूसरे के लिए कष्ट का कारण बनना उसका स्वभाव नहीं।"² दरअसल, यह शिवानी का विद्रोह है। रूढिग्रस्त पति की शंकाओं को वह अपने

1. मन्नु भंडारी-ऊँचाई-सं.मार्कण्डेय-प्रासंगिक कहानियाँ-2004-पृ.147

2. वही-पृ.151

दिमाग और संवेदना के बल पर सामना करती है—“स्त्री का विद्रोह वस्तुतः पुरुष की सामंती दृष्टि को लेकर ही है।”¹

परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष पति शिशिर में ही ज़्यादा दिखाई पड़ता है। आधुनिक सभ्यता ने उसके मन को विशाल बना दिया है। नारी की पवित्रता के बारे में उसका मनोभाव संकुचित नहीं है। वह यह नहीं मानता कि पर-पुरुष के स्पर्श मात्र से नारी कलंकित हो जाती है। यही नहीं, नैतिकता, प्रेम, विवाह, सेक्स आदि को नापने के लिए उसने अपने अलग गज़ बना रखे थे। फिर भी जब परिवार में संकट की स्थिति आयी तब वह एक साधारण पुरुष की भाँति शिवानी और अतुल के संबंध पर शंकालू हो जाता है और घर-परिवार छोड़कर चला जाता है। वह किसी भी औसत पुरुष के समान पत्नी के मुँह से यह सुनना चाहता है कि पत्नी किसी से भी प्यार नहीं करती—“तुम सच कह रही हो शीनू, बिलकुल सच। और शिशिर को मन हो रहा था कि शिवानी बार-बार इसी बात को दोहराती जाए। शिशिर के कान एक मर्म-विदारक सिसकी सुनने के लिए और उसकी बाहें शिवानी के निर्जीव देह को संभालने के लिए अधीर-सी हो रही थी। पर वैसा कुछ भी तो नहीं हुआ— न शिवानी रोई, न कटे पेड़ की तरह उसकी बाँहों में ही आ गिरी।”² स्पष्ट है, आधुनिक विचारोंवाला होने पर भी शिशिर पारंपरिक मनोविकारों से मुक्त नहीं हो पाता है।

1. मधुरेश-नयी कहानी:पुनर्विचार-1999-पृ.249

2. मन्मू भंडारी-ऊँचाई-सं.मार्कण्डेय-प्रासंगिक कहानियाँ-2004-पृ.151

मन्नू भंडारी कहती है—“यह ज़रूर सच है कि मेरी अधिकाँश कहानियों के मूल में कहीं न कहीं अनुभूति की वैयक्तिकता ही रही है। अनेक बार ऐसा हुआ है कि दूसरों के अनुभव और ज़िंदगी के कुछ हिस्सों ने अनायास ही मुझे कहानीकार के रूप में आकर्षित किया है और मैं ने उन्हें ज्यों का त्यों कहानी के रूप में बाँध दिया, लेकिन बाद में पाया कि वह आकर्षण इतना अनायास नहीं था। उसके पीछे कहीं अनजाने और अचेतन में मेरा अपना ही अनुभव था जो एक भीतरी समानता पाकर उस ओर झुका था।”¹ मन्नू भंडारी ने अपने ही वर्ग की नारियों की अंतश्चेतना को प्रस्तुत किया और पाठकों के मन को प्रभावित करने में वे सफल भी हुईं।

उनकी अन्य कहानियों में भी परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष देखने को मिलता है। “त्रिशंकू” में मन्नू भंडारी ने त्रिशंकू में पड़ गयी तनु का चित्रण किया है जिसकी वजह माता-पिता के, कभी गायब, कभी उभर कर दिखाई पड़नेवाले परंपरावादी और आधुनिकतावादी व्यक्तित्व है। अपने घर की किशोरी लड़की को छेड़नेवाले लड़कों को घर बुलाकर चाय पिलाना और लड़की से दोस्ती करवा लेना पापा-मम्मी की आधुनिकतावादी रुख है। पर तनु जब शेखर के प्रेम में पड़ जाती है तो मम्मी में उसके पिता का प्रवेश होता है जिसने मम्मी-पापा के लॉव-मारियज का भरसक विरोध किया था। तनु का प्रेम संबंध जब पापा और मम्मी के सामने खुलता है तो मम्मी की प्रतिक्रिया

1. मन्नू भंडारी-मेरी प्रिय कहानियाँ-भूमिका-1977-पृ.5-6

और उस प्रतिक्रिया का तनु पर प्रभाव कहानी में इस तरह चित्रित हुआ है— "बित्ते-भर की लड़की और करतब देखो इनके! जितनी छूट दो उतने ही पैर पसारते जा रहे हैं इनके। झापड़ दूँगी तो सारा रोमांस झड़ जाएगा दो मिनट में।.....इस वाक्य पर मैं एकाएक तिलमिला उठी। तमककर नज़र उठाई और मम्मी की तरफ देखा पर यह क्या, यह तो मेरी मम्मी नहीं है। न यह तेवर मम्मी का है, न यह भाषा। फिर भी ये सारे वाक्य बहुत परिचित से लगे। लगा, यह सब मैं ने कहीं सुना है और खटाक से मेरे मन में कौंधा-नाना! पर नाना को मरे तो कितने साल हो गए, ये फिर ज़िंदा कैसे हो गए? और वह भी मम्मी के भीतर.....जो होश सँभालने के बाद हमेशा उनसे झगडा ही करती रहीं.....उनकी हर बात का विरोध ही करती रही।"¹ यही परंपरा का आवेग है। ठीक उसी वक्त पर मध्यवर्ग का परंपरावादी रूप बाहर फूट पड़ता है हालाँकि वहाँ उसे आधुनिकतावादी होना चाहिए था। वाणी में वह आधुनिक है पर दिल में कट्टर पारंपरिक। तनु को भी इस सिलसिले का एक कड़ी बताया जा सकता है क्योंकि वह इरादा रखती है कि—"मम्मी को यदि नाना बनकर ही व्यवहार करना है तो मुझे मम्मी की तरह मोर्चा लेना होगा उनसे....."² तनु की यह सोच मध्यवर्ग की परंपरा और आधुनिकतावादी संघर्ष को आगे ले चलती है। मतलब, पीढ़ी दर पीढ़ी चली जाए फिर भी मध्यवर्ग इससे बच न पायेगा।

1. मन्नू भंडारी-त्रिशंकू-नायक, खलनायक, विदूषक (क.सं.) 2002-पृ.478

2. वही-पृ.482

छुट्टी के आरंभ होने के पहले दिन शेखर और उसके दोस्तों को घर पर बुलाकर मम्मी मध्यवर्गीय चरित्र के और एक पहलू को प्रकाश में लाती है। वह है अवसरवादिता या व्यक्तित्व का दोहरापन। वास्तव में तनु त्रिशंकू में पड़ जाती है जब उसे पता चलता है कि उसकी मम्मी के व्यक्तित्व में दोहरापन है। यह दोहरा व्यक्तित्व इतना संकीर्ण है कि तनु असंजस में पड़ जाती है कि मम्मी के किस व्यक्तित्व से लड़ूँ या किससे सहमत हो जाऊँ। नाना का एक ही व्यक्तित्व था, वह था पारंपरिक। अतः उसका विरोध करना आसान था। पर मम्मी दोनों नावों पर पैर रखकर चलनेवाली है—“केवल मैं इस सारी स्थिति से एकदम तटस्थ होकर यही सोच रही थी कि नाना पूरी तरह नाना थे— शत-प्रतिशत—और इसी से मम्मी के लिए लड़ना कितना आसान हो गया होगा। पर इस मम्मी से लड़ा भी कैसे जाए जो एक पल नाना होकर जीती हैं तो एक पल मम्मी होकर।”¹

रचनाकार अपनी रचनाओं का चयन सामाजिक संदर्भ के साथ जुड़कर करता है। मन्नू भंडारी के लेखन का समय परिवर्तन का समय था। अपने समय के समाज में जो अंतर आ पड़ा उसके प्रभाव ने उन्हें झकझोर दिया। अपनी रचनाओं द्वारा काल-परिवर्तन के आवेगों को उन्होंने प्रत्यक्षीकृत किया है। उन्होंने स्वयं कहा है कि उन्होंने ने जब लिखना शुरू किया था तब देश में सामाजिक परिवर्तन हो रहे थे। आज़ादी के बाद हुए सामाजिक परिवर्तनों में परिवार, मानवीय संबंधों और स्त्रियों की स्थितियों में बदलाव

1. मन्नू भंडारी-त्रिशंकू-नायक, खलनायक, विदूषक (क.सं.) 2002-पृ.483

आदि प्रमुख रहे। दरअसल मध्यवर्ग की यह चारित्रिक विशेषता उसके इस आत्मसंघर्ष का परिणित फल है।

अमरकांत ने "मकान" नामक अपनी कहानी में भी इसी समस्या को उठाया है। नायक मनोहर इतना आधुनिक है कि वह अपनी धार्मिक परंपरा को तोड़कर एक मुस्लिम युवति से शादी करता है। वह कहता है—"मुझे घमंड होता था कि जब हम एक ही ज़मीन के इंसान हैं, तब धर्म का बंधन तोड़कर हमने एक बड़ा काम किया।"¹ पर उसकी आधुनिकता तब खतम होती है जब से उसकी ज़िंदगी में समस्याएँ एक के बाद एक होकर आने लगीं। समस्याओं के निवारण में असफल मनोहर की आधुनिक चिंताओं के स्थान पर अंधविश्वास जन्म लेता है, जो एक साधारण मध्यवर्गीय आदमी की निजता है। उसके मन में कई तरह की अजीब चिंताएँ उत्पन्न होती हैं, और समाधान हेतु वह एक ज्योतिषी का आश्रय लेता है। ज्योतिषी समस्या का हल इस तरह करता है कि उसे वह घर छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि, घर में उसके कमरे के नीचे एक कपाटचिरवा प्रेत रहता है जो उसके सारे धन को खा लेता है। परेशान मनोहर इस पर विश्वास करता है और दूसरे घर की तलाश करता है।

मध्यवर्ग का अन्तर्मन रूढ़ियों से मुक्त नहीं है। अधुनातन युग में भी, तकनीकी प्रगति की पराकाष्ठा के इस समय में भी, मध्यवर्ग अपनी प्राचीनता को बिसूर नहीं कर सकते। परंपरा और आधुनिकता के बीच का यह संघर्ष उसकी ज़िंदगी को और भी विवश बना देता है।

1. अमरकांत-मकान-प्रतिनिधि कहानियाँ-1984-पृ.69

असंख्य शिक्षित मध्यवर्ग के लोग शकुन, मुहूर्त और समय-दोष पर विश्वास करते हैं। मध्यवर्ग ही नहीं, समाज के बड़े सम्मानित लोग भी इसके पीछे हैं— "भीतर कई मिनिस्टर, व्यापारी, जज और बड़े बड़े अफसर श्रद्धापूर्वक बैठे थे।"¹

"असमर्थ हिलता हाथ" नामक कहानी में भी अमरकांत ने एक माँ और बेटी को केंद्र बनाकर इसी समस्या को उठाया है। ये दोनों अपनी अपनी यौवनावस्था में, नवीन आदर्शों से प्रभावित होकर परंपरा को तोड़ना चाहती थीं। मगर दूसरों की रूढ़िग्रस्त चिंताओं के सामने असहाय निकलती हैं। माँ लक्ष्मी का अपने यौवन में एक युवक से प्रेम था, मगर जाति और धर्म को तोड़ने का साहस उसमें नहीं था। जब वह जानती है कि बेटी मीना नीच जाति के युवक से प्रेम करती है तो वह इसी जाति और धर्म के सहारे उसका घोर खंडन करती है— "उसने हमारी इज्जत चौराहे पर फोड़ दी। मैं ने पैदा होते ही इसका गला क्यों नहीं घोंट दिया? अब इसका पढ़ना-लिखना बंद। ब्राह्मण की लड़की को पढ़ने-लिखने से क्या मतलब? बहुत क्रीम-पाउडर लगाकर और साड़ी का पल्ला मारकर निकलती थी।"² माँ की इस मानसिक स्थिति के पीछे मध्यवर्ग की अवसरवादिता ही कायम रहती है। अपनी ही असहायता का विद्रोह वह दूसरों से कर लेती है। बेटी मीना को माँ की धमकी के आगे झुकना पड़ता है— "एक ओर उसकी माँ थी, जिसने उसके चारों ओर एक लकीर खींच

1. अमरकांत-मकान-प्रतिनिधि कहानियाँ-1984-पृ.75

2. अमरकांत-असमर्थ हिलता हाथ-वही-पृ.41

दी थी। दूसरी ओर उसका प्यार था, जो उस लकीर को अस्वीकार करता था।¹ यह स्थिति मध्यवर्ग की खास विशेषता होती है। उसके दिल में आदर्श है, दूसरों के सामने भी वह आदर्शनिष्ठ होना चाहता है, पर अक्सर होता यह है कि ऐन मौके पर वह परंपरा या रूढ़ि की मुट्ठी को खोल न सकता है।

अमरकांत की सूक्ष्म संवेदना उनकी कहानियों में मुखर उठती है। वे मध्यवर्ग के साहित्यकार हैं। उनकी संवेदना निम्न मध्यवर्ग की संवेदना है। अमरकांत ने अपनी कहानियाँ यहीं से उठाई हैं और अपनी कहानियों द्वारा मध्यवर्गीय ज़िंदगी के जाने कितने परदे उठाये हैं। इस क्षेत्र में उनकी कहानियाँ किसी भी नए लेखक के लिए चुनौती हैं। आधुनिक काल के कहानीकारों में अमरकांत में ही वह मानवीय संवेदनशीलता मिलती है जो प्रेमचंद में है। उनकी कहानियों से मध्यवर्ग अपने आप को पहचानने में समर्थ पाते हैं।

औद्योगिकता का विकास ही परंपरा और आधुनिकता के बीच के संघर्ष का प्रमुख कारण बन जाता है। औद्योगिकता का विकास और पश्चिमी सभ्यता का मिलन भारतीय संस्कृति के तथाकथित आदर्शों में परिवर्तन लाया। मुक्तिबोध कहते हैं— "मौजूदा औद्योगिक सभ्यता का प्रभाव गहरे-से-गहरा हो रहा है, फिर भी इतना गहरा नहीं है कि व्यक्ति नवीन स्पन्दों में घुलकर जीवन में समाज-मान्य नवीन दार्शनिक अनुशासन प्राप्त कर सके।"² मुक्तिबोध का प्रस्तुत कथन मध्यवर्गीय ज़िंदगी पर लागू होती है। भारतीय मध्यवर्ग की

1. अमरकांत-असमर्थ हिलता हाथ-वही-पृ.42

2. नेमीचंद्र जैन-मुक्तिबोध रचनावली:चार-1980-पृ.42

ज़िंदगी का हर क्षेत्र परिवर्तनकारी रहा। रिश्तों में आया परिवर्तन, विशेषकर, स्त्री-पुरुष संबंध, इनमें प्रमुख है। स्त्री-पुरुष संबंध में खुलापन आधुनिक जीवन-प्रणाली का उदाहरण है। प्रेम-संबंध आधुनिक शैली के होने पर भी, प्रेमियों का अन्तर्मन परंपरा से मुक्त नहीं है। रमेश बक्षी ने अपनी कहानी "सज़ा" में ऐसे एक प्रेम-संबंध का चित्रण किया है।

प्रस्तुत कहानी के नायक और नायिका का प्रेम-संबंध इतना आधुनिक है कि शादी के संबंध में इनके विचार सबसे नए हैं—"हम दोनों के विचार ये हैं कि शादी एक तरह की कैदी है। मैं इस बात से घबाराता हूँ कि इसे नज़ला हो गया तो दवाई कैसे लाऊँगा। यह इस बात से कतराती है कि मेरे लिए रोज़ प्याज़ काटना बड़ा धिनौना लगेगा। हमें ऐसा कभी नहीं लगा कि साथ रहकर ऐश कर सकेंगे।"¹ मगर इतना आधुनिक होते हुए भी नायिका मन ही मन डरती है कि जब इसका प्रेम-संबंध खुल जायेगा तो दूसरों की प्रतिक्रिया क्या होगी। लेकिन जब खुल गया तो किसी ने भी, विशेषकर, माता, पिता, भाई और नज़दीक दोस्त ने भी विरोध तो नहीं किया, उल्टे, स्वीकार ही किया है— "एक बार बस में उसके पापा मिल गये। जो सामने ही पड गये तो इसने बतलाया कि मैं कौन हूँ और उसके पापा बेहद शरीफ आदमी की तरह मुझसे बोले। मेरे व्यक्तित्व में उसने रुचि दिखाई।.....वैसे ही एक बार इसका भाई मिल गया। हम पानी पी रहे थे। यह घबराई, लेकिन उसने ही पूछा कि ये

1. रमेश बक्षी-सज़ा-एक अमूर्त तकलीफ(क.सं.)1972-पृ.108

तुम्हारे दोस्त हैं क्या? जब औपचारिकता पूरी हो गई तो वह घुल-मिल कर बोला था, इन्हें कभी घर आने को कहो न। हम तो अपने सारे दोस्तों की तुमसे पहचान करवा चुके हैं और तू अपने दोस्तों को गुप्त रखती हो.....ऐसे ही इसकी सहेली भी टकरा गई। वह शाकाहारी है सो यह डर रही थी कि अब बम्टाढार हुआ, लेकिन उल्टे वह बधाई देने लगी इसे कि इसका ऐसा कोई दोस्त है तो।¹ नायिका दुखी हो जाती है कि लोग इतने लिबरल क्यों हो गये हैं और लोगों की नैतिकता ढीली पड़ती जा रही है। कहानीकार का लक्ष्य स्पष्ट है कि सरोकारों में जितने भी नएपन आये, मध्यवर्ग अपनी पुरानी संस्कृति की उपेक्षा नहीं कर सकता है।

"विजेता" में रघुवीर सहाय ने परंपरा और आधुनिकता के बीच के संघर्ष का दूसरा रूप चित्रित किया है जो आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार में दिखाई पड़ता है। आजकल का दंपति विवाह के तुरंत बाद बच्चा नहीं चाहता हालाँकि पहली पीढ़ी शादी के तुरंत बाद एक बच्चे के जन्म को ईश्वर का वरदान मानती थी। पहली पीढ़ी विवाह को एक नये परिवार की संस्थापना का आधार मानती थी। पर आज नयी पीढ़ी इसे स्वतंत्र शारीरिक संबंधों का लाइसेंस मानती है – "भारतीय संस्कृति में शादी अब भी एक संस्कार-विशेष के रूप में माना जाता है और उसे एक गंभीर उत्तरदायित्व के रूप में देखा जाता है; उसकी दृढ़ता और स्थायित्व सबसे मूल्यवान है, और उसके विच्छेद

1. रमेश बक्षी-सज़ा-एक अमूर्त तकलीफ(क.सं.)1972-पृ.106

की परिरक्षा करनी है।¹ परंपराओं का उल्लंघन मध्यवर्गीय ज़िंदगी का आदर्श बन गया तो नैतिकता और अनैतिकता का भेद मिट गया। जो पुराने आदर्श और मूल्य हमारे पथ-प्रदर्शक थे उनका हास संघर्ष का कारण बन गया। "विजेता" में अशोक, अपने और अपनी पत्नी के बीच आये नव-जीव को इसलिए मिटाना चाहता है कि वह कुछ और समय स्वतंत्र और दायित्वहीन रहना चाहता है। नव-जीव को वह दो बार हत्या करने की कोशिश करता है, मगर दोनों बार हार जाता है। वह शिशु जीवित होकर आता है विजेता की तरह जैसे उसने इस संघर्ष को जीत लिया है।

बुनियादी परिवर्तन के बिना समाज बदल नहीं सकता है। स्वतंत्रता पाने के लिए हमारे यहाँ कई प्रकार के कार्यक्रम हुए। हम स्वतंत्र भी हुए। लेकिन वास्तविक स्वतंत्रता दूर की चीज़ रही। उसी तरह मध्यवर्ग का उदय एक तरह से समाज के विकास का सूचक है। मध्यवर्ग समाज की धुरी है। लेकिन समाज के अविकास के जितने लक्षण हैं वे सब मध्यवर्ग में दिखायी देते हैं। हम अपने समाज को प्रगतिशील कहते हैं; परंतु वह प्रगतिशील नहीं है। मध्यवर्ग का स्थायी स्वरूप भी यही है कि वह मूलतः प्रगतिशील नहीं है। संस्कृति संबंधी हमारी धारणायें विकल हैं। मध्यवर्ग में इसी का प्रतिफलन देख पाते हैं। आधुनिक कहानी आधुनिक होते जा रहे, पर भीतर ही भीतर

1. In Indian culture, marriage is still treated as a sacrament and is looked upon as a serious duty, its stability and permanence are highly valued and its dissolution is prevented at all costs.

Hans Nagpaul--The study of Indian society—1972--P77

बिखड़ते समाज के 'स्व' की अभिव्यक्ति पर ज़ोर देती है। यथार्थ का कोई आयाम प्रस्तुत करना आधुनिक कहानी का लक्ष्य नहीं है; अपितु समाज के भीतरी अहं को प्रस्तुत करना उसका लक्ष्य है। अतः इस दौर की कहानियाँ कहानी के रूप में आस्वादनीय तो रहीं, उसी के साथ संस्कृति विहीनता के विभिन्न आयामों पर सोचने के लिए हमें बाध्य करती रही।

मध्यवर्गीय मानसिकता की अभिव्यक्ति

जो समाज अपनी असलियत भूल जाता है वह विकास नहीं कर सकता है। मध्यवर्ग की यही हालत है। हमेशा वह अपने चेहरे पर नकाब पहने रहता है।

शेखर जोशी की कहानी "दाजू" में मध्यवर्गीय मानसिकता का सफल रेखांकन हुआ है। निम्न वर्ग से असहिष्णुता रखनेवाला मध्यवर्ग, मगर, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में उसकी सहायता की माँग करता है। मध्यवर्ग की खास विशेषता यह होती है कि उसमें एक तरह के कृत्रिम अहं की भावना अन्तर्निहित होती है जो कभी कभी उसके अपनत्व को नष्ट कर देती है। वह समाज में सम्मान, प्रतिष्ठा तथा पद पाने के लिए लालायित रहता है। समाज में वह अपने प्रेस्टीज को प्रमुखता देता है। दरअसल, यह प्रेस्टीज की भावना उसके अहंबोध से उत्पन्न है। मध्यवर्ग हमेशा ऐसा मानता है कि समाज के निम्न स्तरीय लोगों से संबंध स्थापित करने से उसका प्रेस्टीज नष्ट हो जाएगा। कहानी में जगदीश बाबू मध्यवर्ग का आदमी है और वह प्रेस्टीज

को प्रमुखता देनेवाला भी है। इसीलिए ही छोटे कैफे के नौकर मदन के द्वारा दूसरों के सामने बार-बार दाज्यू पुकारने से उसे क्रोध आता है जबकि उसके अजनबीपन के दिनों में मदन की मैत्री उसे बहुत भाती थी— "लेकिन यह दाज्यू-दाज्यू क्या चिल्लाते रहते हो दिन रात। किसी की प्रेस्टीज की ख्याल भी नहीं है तुम्हें?.....दाज्यू शब्द की आवृत्ति पर जगदीश बाबू के मध्यवर्गीय संस्कार जाग उठा-अपनत्व की पतली डोरी अहं की तेज़ धार के आगे न टिक सकी।" शहर में नौकरी की खोज करते हुए आ पड़े भोले भाले पहाडी बालक मदन की आत्म-पीड़ा में ही, उसके ही समाज की बदली मानसिकता का पूर्ण चित्र पाठकों के सामने उभर आता है। मध्यवर्ग के इस प्रेस्टीज के पीछे मशीनी सभ्यता का आडंबर है। मध्यवर्गीय संस्कृति की अवसरवादिता का पर्दाफाश करने में शेखर जोशी सफल हुए हैं। "मध्यवर्गीय परिवारों के क्षेत्र में, पारिवारिक उत्तरदायित्व की सुघर सामाजिकता और शिष्ट समाज में अपने यश की सुघर वैयक्तिकता महत्वपूर्ण होती हैं। फलतः पारिवारिक उत्तरदायित्व के सुघर निर्वाह के संघर्ष, और शिष्ट समाज में यश प्राप्त करने का संघर्ष, महत्वपूर्ण हो उठता है। इस उत्तरदायित्व का सुघर निर्वाह किस ढंग से, किस प्रणाली और किस रीति से हो रहा है यह महत्वपूर्ण नहीं होता जितनी कि यह बात कि ख्याति मिल रही है, कि यह उत्तरदायित्व पारिवारिकों को उत्तम रीति का जीवन प्रदान कर रहा है, और यह कि अपने सुघर सुन्दर जीवन द्वारा वह शिष्ट समाज का यशोभागी है। नतीजा यह होता है कि मध्यवर्ग की केवल

1. शेखर जोशी-दाज्यू-साथ के लोग(क.सं.)-1981-पृ,12

आत्म-वंचनाओं का ही सृजन नहीं होता, वरन् उस तथाकथित यश और उत्तरदायित्व की पूर्ति के मार्ग में व्यक्ति को अनेकों झूठे समझौते करने पड़ते हैं।¹ मुक्तिबोध का प्रस्तुत कथन मध्यवर्ग की इस विशेष मानसिकता पर प्रकाश डालता है। इन दोनों के बीच के संघर्ष में पड़कर उनकी कोशिशें खोखली बन जाती हैं।

अमरकांत ने "लड़की की शादी" नामक कहानी के द्वारा मध्यवर्ग की इसी समस्या को दर्शाया है। कहानीकार ने इस कहानी में उच्च मध्यवर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग की खाई को स्पष्ट किया है। उच्च मध्यवर्ग अपनी आर्थिक संपन्नता और प्रतिष्ठा के बल पर निम्न मध्यवर्ग को अपने अधीन में रखने की कोशिश करता है। निम्न मध्यवर्ग तो अपने स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अपनी ही मर्जी से या उनकी धमकियों की डर से रास्ते पर आ जाते हैं। कहानी का वाचक उच्च मध्य वर्ग का आदमी है। वह निम्न मध्य वर्ग का नौजवान कृष्णमोहन के पास अपनी घमंडी, हठी, क्रोधी, और आलसी बेटी की शादी का प्रस्ताव इसलिए रखता है कि उसने ही कृष्णमोहन को नौकरी दिलाई थी। मात्र यह नहीं, वह उस नौजवान को बड़ा आदमी बनाने का वादा करता है। गरीब घर की मामूली लड़की के साथ अपने प्रेम संबंध को भूलकर, इस प्रस्ताव को स्वीकार करने की कृष्णमोहन के इरादा के पीछे वही मध्यवर्गीय मानसिकता है। मध्यवर्ग अपने लक्ष्य की पूर्ति में मार्ग की अनैतिकता के बारे में नहीं सोचता। वह विश्वास करता है कि "सुख स्वयं नहीं आता, बल्कि वह

1. नेमीचंद्र जैन-मुक्तिबोध रचनावली-पाँच-1980-पृ.12

शक्ति, साहस, और चतुराई से खरीदा जाता है।¹ यश और उत्तरदायित्व की पूर्ति के कारण ही वाचक को कृष्णनोहन के सामने झूठा नाटक खेलना पड़ा। उसने अपनी बेटी की कमियों को छिपाकर, उसकी झूठी प्रशंसा करके, असल में, अपनी बेटी को अपनी बेटी न बताकर शादी की बात की और कृष्णमोहन ने तो अपने स्तर की ऊँचाई की महत्वाकांक्षा में पवित्र प्रेम संबंध को टुकरा दिया। मधुरेश का कथन सही है- "अपने समय-संदर्भों की पहचान की दृष्टि से अमरकांत की कहानियाँ, उनके किसी भी समकालीन दूसरे लेखकों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय मानी जा सकती है। उनकी कहानियाँ न तो फार्मूलेबाजी की शिकार हैं और न ही प्रचारवाद की। कहानियों के छोटे-छोटे माध्यमों से वे अपने समाज और मौजूदा व्यवस्था की पूरी तस्वीर दे देना चाहते हैं और चूँकि उनके इस संसार में सभी प्रकार के छोटे-बड़े, अच्छे-बुरे लोग हैं, व्यक्तियों से शुरू करके भी वे सामाजिक प्रक्रियाओं और संरचनाओं की ओर बढ़ते दिखाई देते हैं।"²

निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति समाज में सम्मान, तथा पद प्राप्त करना चाहता है। वह भी समाज में अपनी अस्मिता को बनाये रखने की कोशिश करता है। अर्थ का अभाव मध्यवर्गीय ज़िंदगी की विडंबना है। यह उसकी ज़िंदगी का सबसे बड़ा बन्धन है और उसे पा लेना उसका सबसे बड़ा मकसद बन जाता है। इस आवेग में वह अपने को ही नहीं, अपने सगे-संबंधों को भी

1. अमरकांत-लड़की की शादी-प्रतिनिधि कहानियाँ-1984-पृ.77

2. मधुरेश-हिंदी कहानी का विकास-1996-पृ.158

नष्ट कर देता है। नष्ट होनेवाले जीवन-मूल्यों का प्रतीक बनकर सामने आनेवाला यह वर्ग जीवन में हमेशा पराजित हो जाता है।

कमलेश्वर की कहानी "राजा नरबंसिया" का जगपति एक ऐसा पात्र है जो अर्थाभाव से मुक्ति पाने में अपनी पत्नी को माध्यम बनाता है। इस पात्र के माध्यम से कमलेश्वर ने अपने समाज के उस विशेष वर्ग की विशेष मनःस्थिति का ब्यौरा दिया है जो अपनी स्वार्थता और सुख-लोलुपता के लिए दूसरों की ज़िंदगी को बरबाद करने पर तुला है और उसकी अपनी इच्छाओं, तथा अपेक्षाओं को कुचल कर जीने लायक नहीं बना देता। चंदा के लिए पति ही सब कुछ था। पति के लिए अच्छी दवाइयाँ लाने में जब वह अपने को असमर्थ पाती है तो अपना शरीर उसके लिए नगण्य लगा। कम्पउण्डर बचनसिंह को अपना शरीर बेचकर वह पति के लिए दवाइयाँ लाती है। पर उसका, पति के प्रति यह पवित्र प्रेम तब टूट जाता है जब पति आगे चलकर उसको अपनी आर्थिक सुरक्षा या काम के लिए एक माध्यम के रूप में मानता है। बेकार जगपति कामगार हो जाता है। मगर चंदा का पत्नीत्व छीन लिया जाता है। धन पाने का लोभ जगपति से यह भी कहलवाता है- "'आडे वक्त काम आनेवाला आदमी है; लेकिन उससे फायदा उठा सकना जितना आसान है.....उतना.....मेरा मतलब है कि.....जिससे कुछ लिया जाएगा, उसे दिया भी तो जाएगा...."'¹ बचनसिंह के बच्चे की माँ बननेवाली चंदा की ज़िंदगी वहाँ समाप्त नहीं होती है, उसको ज़िंदगी इतनी खोखली बन जाती है कि वह

1. कमलेश्वर-राजा नरबंसिया-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.23

मदनसिंह की रखैल बनने में हिचक नहीं करती। स्पष्टतः कमलेश्वर अपने सामाजिक सदस्यों को सबक देते हैं कि ऐसी कामना उसे ज़िंदगी पाने में सफल नहीं बनाती मगर ज़िंदगी से हाथ धोने की स्थिति में पहुँचा देती है। जगपति का पश्चाताप तथा अंत में उसकी आत्महत्या इसका दृष्टांत है।

अपनी ज़िंदगी को किसी न किसी तरह बनाने के प्रयत्न में निम्न मध्य वर्ग अपने को भूल जाता है। ज़िंदगी उसके लिए चुनौती बन जाती है तो नाता-रिश्ता, बीमारी आदि की परवाह नहीं रहती। ज़िंदगी की नींव खड़ा करने के लिए उसे कभी-कभी खून के रिश्ते की भी उपेक्षा करनी पड़ती है। भीष्म साहनी की कहानी "चीफ की दावत" इसका स्पष्ट उदाहरण है। नौकरी में तरक्की पाने के उद्देश्य से शामनाथ चीफ की दावत का आयोजन करता है। अपने घर को साज-सँवारते, फालतू सामानों को इधर उधर छिपाते वक्त ही उसे अपनी माँ की याद आती है जो अपने बुढ़ापे की असुन्दरता को लिए ज़िंदा रहती है। बदन में झुरियाँ पडनेवाली और सोते वक्त गुर्राटें करनेवाली माँ बेटे के लिए अड़चन बन जाती है—"आखिर पाँच बजते-बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियाँ, मेज़, तिपाइयाँ, नैपकिन, फूल सब बरामदे में पहुँच गये। ड्रिंक का इंतज़ाम बैठक में कर दिया गया। अब घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छुपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई—माँ का क्या होगा?"¹ स्वतंत्रता प्राप्त भारतीय समाज पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति

1. भीष्म साहनी-चीफ की दावत-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.13

को अपना ले लगा। इस बदलाव में उसमें अन्तर्निहित सांस्कृतिक गरिमा नष्ट हो गयी। उसकी उदात्त भावनाएँ वैयक्तिक स्वार्थ एवं भौतिक सुविधाओं से परिचालित होकर अपनी उदात्ता खो बैठी। डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ का कहना है— "चीफ की दावत की माँ "परंपरा" का द्योतक है, जिसे आधुनिकता के अति उत्साह में "व्यर्थ" और "उपेक्षित" समझ लिया जाता है। यह कहानी जहाँ एक ओर मातृहृदय की वत्सलता को रेखांकित करती है, वहीं इसमें उन लोगों पर करार व्यंग्य है जो अपनी संस्कृति और परंपरा को विदेशियों की दृष्टि से देखते-परखते हैं।" ¹ भीष्म साहनी ने स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में संबंधों और मूल्यों के बिगड़ने की प्रक्रिया को खूब पहचान लिया है। अतः उनकी कहानियाँ समय और युगबोध की परिचायिकायें बन जाती हैं। वे स्वयं कहते हैं— "जहाँ कहानी जीवन से साक्षात्कार कराती है, उसके भीतर पाए जानेवाले अंतर्विरोधों से साक्षात् कराती है, वहाँ वह अपने आप ही समय और युग-बोध कराती है।" ²

श्रीकांत वर्मा ने मुक्तिबोध की चर्चा यों की है- "मुक्तिबोध की कहानियों की प्रेरणा कहानी का कोई आन्दोलन नहीं था। हर रचना, उनके लिए, एक भयानक, शब्दहीन अंधकार को- जो आज भी, भारतीय जीवन के चारों ओर, चीन की दीवार की तरह खिंचा हुआ है- लाँघने की एक और कोशिश थी..... सारा इतिहास मुक्तिबोध के लिए एक चुनौती था। मध्यवर्ग इस इतिहास

-
1. डॉ.वेदप्रकाश अमिताभ-सं.-डॉ. रंजना शर्मा-नयी कहानी प्रतिनिधि हस्ताक्षर-1988-पृ.22
 2. भीष्म साहनी-मेरी प्रिय कहानियाँ-भूमिका-2004-पृ.9

की एक गुत्थी है, जिसे मुक्तिबोध समझना, सुलझाना चाहते थे। मुक्तिबोध के चारों ओर मध्यवर्ग का नैराश्य, कुण्ठा, अवसाद, आत्मवंचना और आत्मपरस्ती थी। मध्यवर्ग के संकट को मुक्तिबोध ने जितना समझा, अन्य किसी भी लेखक ने नहीं समझा है।¹ मुक्तिबोध समाज के उस निचले वर्ग के प्रति अपनी एकरूपता प्रकट करते हुए कहते हैं कि "मैं ने कहानियों में "भद्रता" से "ग्रस्त" चेहरों की मानसिकता को एक्सपोज़ करते हुए उभारा है। यह भी सही है कि मैं अपने निम्न-मध्यवर्ग का बायकाट कर उपरली (नौकरशाह, दलल पूँजीपति या बिके हुए कोरे बुद्धिजीवियों की सुविधावादी सीढी पर नहीं चढ़ा हूँ) श्रेणी में नहीं घुसना चाहता हूँ वरन् निचली श्रेणी की ओर उन्मुख हूँ।"² समाज के इस असहाय वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति "काठ का सपना" नामक कहानी द्वारा स्पष्ट हुआ है। अर्थाभाव के कारण काठ बन जानेवाली मध्यवर्गीय मानसिकता का वर्णन इस कहानी में हुआ है। अर्थाभाव निम्न वर्ग के लोगों को निष्क्रिय और असहाय बना देता है। प्रस्तुत कहानी में पुरुष, परिवार में अपनी पत्नी और बच्ची के प्रति अपना कर्तव्य निभा नहीं सकता। एक पति के रूप में और एक पिता के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन न कर सकने के कारण वह निष्क्रिय और जड़ बन जाता है। वास्तव में यह पुरुष पात्र समूचे निम्न वर्ग का प्रतिनिधि बनकर आता है। अपने कर्तव्य का साक्षात्कार और अभाव की पूर्ति स्वप्न में पाकर वह आनंदित हो जाता है-

-
1. श्रीकांत वर्मा-सतह से उठता आदमी-आमुख-1971-पृ.6
 2. विष्णु चन्द्र शर्मा-मुक्तिबोध की आत्मकथा-1984-पृ.445

"दोनों स्त्री-पुरुष के जीवन पर विराम का पूर्ण चिह्न लग गया है, काठ हो गये हैं। बाढ़ आती है। किनारे पर पड़े हुए काठों को बहाकर ले जाती है। जल-विप्लव है। काठ बहते जाते हैं, फिर भी वे प्राणहीन काठ, आपस में गूँथे हुए बहे जा रहे हैं।.....और हाँ, गूँथे-बँधे काठ खाली नहीं है। उन पर एक बालिका बैठी हुई है। हाँ, वह सरोज है। अपने नन्हे दो हाथ उसने दोनों काठों पर टेक दिये हैं, जिनके सहारे वह स्वयं चली जा रही है। सरोज की उस बाल मूर्ति की रक्षा करनी होगी। उन दो निष्प्राण काठ-लट्ठों का यही कर्तव्य है।"¹

निम्न वर्ग जीवन के यथार्थों से टकराकर ज़िंदगी ही खो बैठता है। वह समाज का अंग नहीं बन पाता। अपने सीमित दायरे में बँध रहकर वह अपने ही एक अलग दुनिया में विचरण करता है।

"प्रश्न" नामक कहानी में मुक्तिबोध ने मध्यवर्ग की ऐसी एक मानसिकता का जिक्र किया है जो अपने को शुद्ध तथा पवित्र मानकर, दूसरों में दोष का आरोपण करने में तुले हो। यह मध्यवर्ग की चारित्रिक विशेषता है कि यथार्थ की जाँच न करके, सत्य को जानने की कोशिश न करके, लीक से हटकर जीनेवाले लोगों के बारे में बातें बताता है। कभी कभी ऐसी ज़िंदगी उनके लिए एक प्रश्न बन जाती है। सुशीला की ज़िंदगी में जो कुछ घटित हुआ, वह सामान्य नहीं था। पति की मृत्यु के बाद काका के साथ उसका संबंध दूसरों की दृष्टि में मर्यादा की सीमा के पार होने पर भी, सुशीला के लिए पवित्र ही था। पुत्र नरेंद्र का प्रश्न "'माँ तुम पवित्र हो? तुम पवित्र हो, न?"²

1. मुक्तिबोध-काठ का सपना-काठ का सपना(क.सं.)-1967-पृ.53-54

2. मुक्तिबोध-प्रश्न-काठ का सपना (क.सं.)-1967-पृ.101

वास्तव में नरेंद्र का प्रश्न समाज के अन्य लोगों के मन का ही प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर सुशीला अपने बेटे से ही करवाती है- "तुम उनको, 'काका' को गैर समझते हो? साफ कहो? नरेंद्र ने सोचा; कहा, "नहीं"।¹ सुशीला का यह उत्तर समाज के लिए भी है। सामंती संस्कृति का प्रभाव मध्यवर्गीय मानसिकता में गहराई से पड़ा है। माँ के चरित्र पर बालक बेटे के मन की शंका सामंती संस्कृति का बहिस्फुरण है।

उच्च मध्यवर्ग अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कभी-कभी उच्च वर्ग की जीवन-रीति को अपनाता है। पार्टी देना आजकल मध्यवर्गीय जिंदगी का फैशन हो गया है जिसके मूल में किसी न किसी स्वार्थ लाभ की मनोवृत्ति अन्तर्लीन होती है। आजकल दावत या तोहफा सैहार्द या स्नेह का माध्यम न बनकर अपनी अभीष्ट का रास्ता बन गया है। दरअसल, यह मध्यवर्गीय जिंदगी की अपनी रीति नहीं है, अपितु उच्च वर्ग की अपनी रीति है। इसका अनुसरण उच्च मध्य वर्ग करता है जिसका पूरा-ढाँचा उच्च वर्ग का जैसा होता है मगर, स्तर उन तक पहुँच नहीं जाता। उच्च वर्ग उसके ज़रिए लाखों-करोड़ों का बिज़िनेस करता है तो यहाँ इन लोगों की ज़रूरतें मामूली सी होती हैं। भीष्म साहनी ने "'खिलौने" नामक कहानी में मध्यवर्ग की इस मानसिकता की ओर इशारा किया है। दिलीप और उसकी पत्नी वीणा वाचक और उसकी पत्नी को खाने पर इसलिए बुलाते हैं कि वीणा को बी.एड. तथा दिलीप को बैंक के कोर्स में प्रवेश मिलने के लिए वाचक अपने मामा से

1. मुक्तिबोध-प्रश्न-काठ का सपना (क.सं.)-1967-पृ.109

सिफारिश करे। वाचक की पत्नी की प्रतिक्रिया इस प्रकार है- "इतनी भर बात के लिए खाने पर बुलाया था? यह तो तुम्हें खत में भी लिखकर बता सकते थे। तुम्हारे दफतर में टेलिफोन भी कर सकते थे?"¹

परिवारों में बच्चों की देखभाल से भी ज़्यादा अपने कैरियर की प्रगति में ध्यान देने के पीछे भी यही मानसिकता काम करती है कि अपना स्तर ऊँचा उठे। घरों में स्नेह या वात्सल्य से वंचित बच्चों को अपने मन-पसंद खिलौने से खेलने के लिए माता-पिता की हुकूमत माननी पड़ती है। कहानीकार ने इसका सजीव चित्रण किया है- "पप्पू की आँखें खिलौने पर लगी थी; पर बाप के डर से हाथ आगे बढ़ा रहा था। वीणा ने खिलौना उसके हाथ में दे दिया। पप्पू उठकर बैठ गया। खिलौने को हाथ में लेकर उसने हम दोनों की ओर बारी-बारी से देखा और फिर खिलौने को छाती से चिपका लिया। उसकी उर्नीदी आँखों में अभी भी खुमार भरी थी। नहीं पप्पू, एक बार जो कह दिया। तुम केवल एक बार इस पर हाथ फेर सकते हो। इससे ज़्यादा नहीं।"² आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति से परिवारों में पति-पत्नी का रिश्ता और माता-पिता का अपने बच्चों के साथ का रिश्ता किसी ऐसे खिलौने की तरह हो गया है जो चाबी लगाने पर निश्चित स्थान तक और निश्चित समय तक चलता रहे। स्वार्थ की तृप्ति में आपसी संवेदनायें नष्ट होती जा रही हैं।

1. भीष्म साहनी-खिलौने-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.143

2. भीष्म साहनी-खिलौने-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.141

मध्यवर्ग अपने अस्तित्व, अपनी प्रतिष्ठा और अपनी उन्नति के लिए उच्चवर्ग से प्रतीक्षा रखता है। मगर न पाकर ऐसी ज़िंदगी जीना चाहता है वैसा उच्च वर्ग जीता है। वह अपनी सारी चीज़ों का मूल्य बढ़ा-चढ़ाकर बता देता है कि दूसरों को पता चले कि उसका जीवन-स्तर ऊँचा है, चाहे इसके लिए उसे कितने ही झूठ बोलना पड़े या नाटक खेलना पड़े। राजेंद्र यादव की "सिलसिला" में प्रशांत की सारी चीज़ों की चोरी हो जाती है जिनका असली मूल्य मुश्किल से पाँच सौ रुपये हैं। पर दूसरों के सामने अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए वह हर चीज़ का दाम दुगुना बता देता है जो अठारह सौ के बराबर हैं। अपनी पुरानी चीज़ों को नयी बता देता है—"नये कपड़े के लिए अधिकांश कपड़े नये बनवाये थे। एक सूट पुराना था और एक बिलकुल नया। एक बार भी नहीं पहना।..... छह नयी कमीज़ें थीं, पर्स में, और अलग से मिलाकर साढे चार सौ रुपये थे, साढे तीन सौ की घड़ी थी, और भी दुनिया भर का छोटा-मोटा सामान था; जूता, टाईयाँ, पुलोवर।" उसका दोस्त शंकर भी यही मानसिक वृत्ति दिखाता है जो अपने घर के फर्नीचरों का दाम दुगुना करके बता देता है।

"मेहमान" नामक उनकी दूसरी कहानी में इस तरह की झूठी प्रतिष्ठा का दूसरा चित्र मिलता है। यह एक साधारण क्लर्क की ज़िंदगी का ज़िक्र है जो अपने साधारण से घर में एक बड़े मेहमान के सत्कार में तनाव अनुभव करता है। मध्यवर्गीय लोग समाज के ऊँचे वर्ग के सामने इतना संकुचित होते

1. राजेंद्र यादव-सिलसिला-टूटना (क.सं.)-1966-पृ.54

हैं कि लगता है वे आत्मविश्वास से वंचित होते हैं। संपन्न वर्ग के सामने वे अपनी गरीबी को छिपाकर, उनका जैसा बनना चाहते हैं। आम मध्यवर्गीय जिंदगी की सबसे बड़ी विडंबना भी यही है। वह अपने 'स्व' की उपेक्षा कर पराया हो जाता है। वह हमेशा बड़प्पन की सोच में है जिसमें उसे अपना व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। उसके लिए गरीबी हीन और छिपाने की बात है। "मेहमान" का नायक घर में पधारे महान मेहमान के आगे स्वयं छोटा ही नहीं होता बल्कि पड़ोसवाले भी और यहाँ तक कि उसकी अपनी पत्नी भी गँवार और असंस्कृत लगता है। महान मेहमान के आगे पत्नी का पेश लज्जास्पद मालूम पड़ता है। वह अपने व्यक्तित्व को कुछ बदल देना चाहता है और अपने को ऊँचा बनाकर उन पर कुछ प्रभाव डालना चाहता है। मानसिक संकीर्णता की यह भावना हर मध्यवर्गीय व्यक्ति की खासियत है—"मेरा सारा घर उन जैसे बड़े मेहमान के लायक भले ही न हो, मगर मैं ऊँचे मूल्यों में संतोष खोजनेवाला व्यक्ति हूँ, यह प्रभाव मैं उन पर डालना चाहता था"¹

अमरकांत ने अपनी कहानी "दोपहर का भोजन" में ऐसे एक परिवार का चित्र खींचा है जिसके सदस्य एक दूसरे से अपनी भूख को छिपे रहते हैं। माँ सिद्धेश्वरी अपने परिवारवालों को दोपहर का भोजन ऐसा खिलाती है जैसे रसोई में रोटी, दाल तथा चने की भरमार हो। अपने पति तथा बड़े दो बेटों से वह मिन्नत करके और एक रोटी भी खाने को ज़िद करती है हालाँकि उसने

1. राजेंद्र यादव-मेहमान-ढोल और अपने पार(क.सं.)-1968-पृ.22-23

हरेक को दो-दो रोटियाँ गिन-चुनकर दी थी। दोनों बेटे तथा पति उसकी मिन्नत को टाल देने में अपना अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं। बड़ा बेटा रामचंद्र माँ पर बिगड़ उठता है तो मँझला लड़का मोहन की प्रतिक्रिया ऐसी थी जैसे कोई शिक्षक अपने शिष्य को समझाता है। मुंशीजी पत्नी के आगे एक अपराधी जैसा बन जाता है। आखिर ममतामयी माँ बची हुई एक ही रोटी को दो टुकड़ों में बाँटकर एक टुकड़ा अपने छोटे बच्चे को रख देती है तथा एक टुकड़े से अपनी भूख को मिटा देने की कोशिश करती है। शहर में अपने परिवार की मान-मर्यादा का भी उसे परवाह है। इसलिए मुंशीजी से यह सूचना मिलते ही कि गंगाशरण बाबू के लड़के की शादी किसी एम.ए. पास लड़की से तय हो गयी है, सिद्धेश्वरी हठात् चुप हो जाती है। परिवार की इज़्जत का भ्रम टूट जाता है। बड़े लड़के से छोटे की तथा छोटे लड़के से बड़े की तथा पति से दोनों की झूठी प्रशंसा करने के पीछे भी ऊँची संकल्पनाओं की चाह है। मधुरेश का कहना है— "दोपहर का भोजन" में जिस निर्मम तटस्थता के साथ एक परिवार के माध्यम से, समूचे निम्न मध्यवर्ग के त्रासद अभावों को अंकित किया गया है, अपने समय की मूलधारा को अतिक्रमित कर पाने के कारण आज भी उस कहानी का ऐतिहासिक महत्व है।"¹

मध्यवर्ग की मानसिकता हमेशा अपनी यथास्थिति से ऊपर उठने का है जिसकेलिए वह हड्डी-तोड़ परिश्रम करता है। इस परिश्रम में वह यह भी नहीं सोचता कि वह अपनी हैसियत के अंतर्गत आता है या नहीं। कभी कभी

1. मधुरेश-हिंदी कहानी का विकास-1996-पृ.157

उसकी कल्पनायें वायवीय दुनिया में उड़ने लगती हैं। अमरकांत ने "डिप्टी कलक्टरी" नामक अपनी कहानी में ऐसे एक बाप का चित्रण किया है जो अपने औसत हैसियतवाले पुत्र को डिप्टी कलक्टर बनाना चाहता है। शकलदीप बाबू थर्ड क्लास बि.ए. तथा मामूली ए.जी. आफिस की क्लर्की में भी पराजित अपने बेटे नारायण के डिप्टी कलक्टर बनने की चाहत को पूरा करने के लिए बड़ी दौड़-धूप करता है। दरअसल इसके मूल में उच्च-स्तरीय जीवन की लालसा ही थी। बेटे के लिए अलग से स्वादिष्ट भोजन और उसकी मन-पसंद की सिगरेट खरीद कर देनेवाला, उसके कमरे को खुद साफ-सुधार कर संवारनेवाला बाप दिन-रात स्वप्निल लोक में डूबता रहता है- "कुछ देर बाद उन्होंने पत्नी से प्रश्न किया- "क्या कह रहा था, मोटर में घुमाऊंगा?"

जमुना ने फिर वही बात दोहरा दी।

शकलदीप बाबू ने धीरे से दोनों हाथों से ताली बजाते हुए मुस्कराकर कहा, "चलो, अच्छा है।" उनके मुख पर अपूर्व स्वप्निल संतोष का भाव अंकित था।¹ एक औसत विद्यार्थी की ऊँची आशा को समर्थन देने के साथ साथ अपने मन में उठनेवाली आशंकाओं से वह बेचैन भी है। वह शिव मंदिर में आश्रय पाने लगता है तथा पत्नी से राधास्वामी की पूजा करने को कहता है जिसकी उसने पहले कडी आलोचना की थी। आर्थिक अभावों में दम घुटते रहते हुए भी बेटे के लिए सुविधायें बटोरनेवाला शकलदीप बाबू साधारण

1. अमरकांत-डिप्टी कलक्टरी-प्रतिनिधि कहानियाँ-1984-पृ.22

मध्यवर्गीय पिता का सच्चा प्रतिनिधि है। मध्यवर्ग ज़िंदगी के यथार्थ से टकराते पराजित होकर स्वप्नलोक में विचरण करता है।

आधुनिक कहानी द्विविधाग्रस्त मध्यवर्ग को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करती है। दरअसल, ऐसी कहानियाँ मात्र मध्यवर्गीय जीवन के सच को प्रस्तुत करनेवाली रचनाएँ नहीं हैं, अपितु वे हमारी सांस्कृतिक दृष्टि में आए विघटन को भलीभाँति प्रस्तुत करती हैं। स्वस्थ समाज में ऐसी समस्याएँ नहीं होतीं। स्वस्थ दृष्टि में ऐसी विडंबनाएँ नहीं होतीं। सांस्कृतिक दृष्टि क्षरित होती है तो स्वार्थ, दंभ, ट्युचापन और घिनौनेपन के कई रूप लक्षित होते हैं।

मध्यवर्ग का शिक्षित समाज

मध्यवर्ग समाज की गतिविधियों का विधायक है। समाज को आगे ले जाने में उसका बड़ा हाथ रहा है। आधुनिक काल में शिक्षा-प्राप्ति की सुविधायें मध्यवर्ग के मन-मस्तिष्क को विशाल बनाया है, मगर सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्रों में आदर्शों और मूल्यों का अधःपतन भी दृष्टिगोचर होने लगा। आधुनिकीकरण और भौतिकतावाद के प्रभाव ने मध्यवर्गीय ज़िंदगी को नैतिक मूल्यों से अलग कर दिया। मुक्तिबोध कहते हैं—"आज सुशिक्षित मध्यवर्ग के लिए भारतीय परिस्थिति अनुकूल नहीं है। भ्राष्ट्राचार, अनाचार, तंगी, कलह, राग-द्वेष, दाँव-पेंच के दृश्य हमें सर्वत्र दिखाई देते हैं। पैसे की कीमत बढ़ गयी है, आदमी की कीमत गिर गयी है।"¹

1. नेमीचंद्र जैन-मुक्तिबोध रचनावली-पाँच-1980-पृ.307

वैज्ञानिक युग की प्रगति ने जीवन-दृष्टि को विशाल बना दिया। जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री-पुरुष में समानता आने लगी। स्त्री, विशेषकर पढी-लिखी आधुनिक स्त्री, स्वतंत्रता का संपूर्ण स्वाद चखने लगी। नगरीय सभ्यता तथा नौकरी की सुलभता ने आधुनिक नारी के चरित्र को एकदम परिवर्तित किया। वह अपने आप निर्णय लेनेवाली और अपनी ज़िंदगी खुद जीनेवाली बन गयी। बुद्धिवाद की प्रखरता और आर्थिक स्वतंत्रता ने नारी के परंपरित नारीपन पर प्रश्न-चिह्न लगाया। पिछली सदी में, पतिव्रता स्त्री परिवार की रीढ की हड्डी बन गयी थी, यहाँ आकर कलंकित होकर टूटने लगी। बदली परिस्थिति ने स्त्री के व्यक्तित्व को इस तरह सुदृढ़ बना दिया कि वह अपनी मर्जी की ज़िंदगी जी सकी। अनेक आधुनिक कहानियाँ मध्यवर्गीय स्त्री को केंद्र बिंदु बनाकर रची गयीं। कमलेश्वर की "तलाश", मोहन राकेश की "मिस पाल" आदि के स्त्री पात्र आधुनिक मध्यवर्गीय नारियों के प्रतिनिधि बन कर आती हैं। आधुनिक कहानी के स्तंभ माननेवाले इन तीनों प्रतिष्ठित कहानीकारों ने जब इन पात्रों की सृष्टि की, उसके पीछे उनके अनुभूत सत्य ही था। अपने समय के सामाजिक परिवर्तनों को और उनसे मानवीय संवेदनाओं में आए बदलाव को अपनी रचनाओं में लाने की उन्होंने पूर्ण कोशिश की है।

कमलेश्वर ने अपनी कहानी "तलाश" में उच्च मध्यवर्गीय परिवार की माँ और बेटी का चित्रण किया है जो शिक्षित और नौकरीपेशा है। विडंबना यह है कि दोनों में आपसी संवेदना की गहराई नहीं दिखाई पड़ती। एक ही परिवार में दोनों अपने अपने अलग दायरे में जीती हैं, एक दूसरे को कुछ छिपाकर,

एक दूसरे से अपने को कुछ छिपाकर। बेटी और माँ का पारंपरिक लगाव सुमी और ममी में नहीं दिखाई पड़ता, बल्कि लगता है कि दोनों मुखौटा पहनी हुई हैं। अपने मृत पापा का ममी के प्रति स्नेह और कर्तव्यों का पालन खुद करने की कोशिशों के बावजूद बेटी सुमी को ऐसा लगता है कि ममी उससे बहुत दूर है—“उन दोनों के बीच पानी का एक रेला आ गया था। वे सिर्फ किनारों की तरह समानान्तर खड़ी रह गई थीं। और कभी कभी ममी उसे देखकर ऐसे घबरा उठती थीं, जैसे पापा आ गए हों। और वह ममी को देखकर ऐसे अकुला उठती थी, जैसे पापा चले गए हों।”¹ अलगाव की चिंता ज़्यादा बेटी में पायी जाती है। आधुनिकता की जड़ता बेटी सुमी में ज़्यादा पायी जाती है और यह जड़ता उसे ममी को छोड़कर होस्टल में रहने की इरादा लेने तक ले जाती है। माँ और बेटी का मुखौटा वास्तव में मध्यवर्गीय ज़िंदगी का मुखौटा है। मध्यवर्ग का शिक्षित समाज ऐसी एक ज़िंदगी बिताता है जिसमें संवेदनायें नष्ट होकर यांत्रिकता आ गयी है।

मोहन राकेश ने अपनी कहानी “मिस पाल” में शिक्षित मध्यवर्गीय स्त्री को समाज के पुरुषवर्चस्व से होनेवाली शरारतों का बयान किया है। आज़ादी के पहले की स्त्री के स्तर से उसके बाद की स्त्री काफी आगे बढ़ने लगी थी। शिक्षा और नौकरी उसमें प्रगतिशील चिंताओं के बीज बोने लगी। वह अपने आप के प्रति ज़्यादा बोधगम्य और खुद राय बनानेवाली बन गयी। उसमें आत्मसम्मान की भावना तथा अहंबोध ज़्यादातर दिखाई पड़ते हैं।

1. कमलेश्वर-तलाश-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.125

लेकिन पारंपरिक पुरुष वर्चस्व और सामाजिक मान्यताओं ने प्रगतिशील स्त्रियों को समझने और अपनाने में विलंब कर दी। लीक से हटकर जीनेवाली स्त्रियाँ दूसरों के उपहास पात्र बन गयीं। कहानी में मिस पाल पढ़ी-लिखी, नौकरीपेशा एवं अविवाहिता है। वह पहचान पाती है कि दफ्तर का माहौल उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए अवरुद्ध हो जाता है। अतः वह वहाँ से चली जाती है। धन की उपस्थिति और स्वतंत्रता उसे ऐसा इरादा लेने में सहायता देती हैं। मिस पाल कहती है—"बाहर रहने में कम से कम मुझे अपनी स्वतंत्रता होगी। मेरे पास कुछ रुपये पहले के हैं और कुछ रुपये मुझे अपने प्राविडेंट फण्ड के मिल जायेंगे।.....में किसी ऐसी जगह जाकर रहना चाहती हूँ जहाँ यह सारी गन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकतें न करते हों। इन्सान को ठीक से जीने के लिए कम-से-कम यह तो महसूस होना चाहिए कि उसके आसपास का वातावरण उजला और साफ है और वह एक मेढ़क की तरह गदले पानी में नहीं जी रहा।" पढ़ी-लिखी मिस पाल दफ्तर में जो मन-मुटाव का अनुभव कर रही है वह सामंती संस्कृति में पुरुष प्रधान समाज का शेषपत्र है। मध्यवर्ग शिक्षित होकर भी अपनी पुरानी संस्कृति से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया।

मध्यवर्ग जितने भी शिक्षित हो अथवा अधुनातन चिंताओं से घिरे रहते हो, उसका मन परंपरागत सामंती विचारों से मुक्त नहीं होता। अवसरवादिता मध्यवर्ग के जीवन के हर क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। मुक्तिबोध कहते हैं—

1. मोहन राकेश-मिस पाल-एक और ज़िंदगी (क.सं.)-1961-पृ.65

"स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरांत, भारत में अवसरवाद की बाढ़ आयी। शिक्षित मध्यवर्ग में भी उसकी ज़ोरदार लहरें पैदा हुईं।" मध्यवर्गीय परिवारों में विशेषकर लड़कियों की अपनी ज़िंदगी की बात आती है, पुरुषों की स्वार्थता या आधिपत्य अवसरवादिता का रूप ले लेता है। "आदमी और दीवार" नामक अपनी कहानी में मोहन राकेश ने इसकी ओर इशारा किया है। सत्ते शिक्षित और आधुनिक विचारोंवाला है। परंतु अपने दोस्त हरीश के साथ अपनी बहिन राजो की रिश्ता वह बर्दाश्त नहीं कर पाता। वह उस पर हाथ उठाता है। वह स्वयं ही एक प्रेम संबंध में पड़ जाता है हालाँकि उसमें वह पराजित हो जाता है। लेकिन वह अपनी बहिन को प्राचीन रूढ़ियों और रीतियों को माननेवाली बनना चाहता है। शिक्षा मध्यवर्गीय संस्कार को बदल न सकती है। शिक्षित पुरुष बाहरी तौर पर आधुनिकतावादी होने का शौक रखता है मगर उसकी अंदरूनी संवेदनायें उससे मेल नहीं खाती।

मध्यवर्ग की खास विशेषता यह है कि वह कभी भी अपने रूढ़ मूल चारित्रिक विशेषताओं और पारंपरिक मान्यताओं को खोने नहीं देता। समयगत परिवर्तन से मज़बूर होकर उसे बदलना पड़ता है जिसके फलस्वरूप उसका मन संघर्षों से भरा रहता है। यह संघर्ष उसके स्वभाव को विकृत बना देता है।

मध्यवर्ग की सीमायें

मध्यवर्ग हमेशा अपने ही सीमित दायरे में जीना पसंद करता है। उसकी मनोग्रन्थियाँ संकुचित और पेचीदा होती हैं। कभी कभी ज़िंदगी के प्रति

1. नेमीचंद्र जैन-मुक्तिबोध रचनावली-पाँच-1980-पृ.207

उसका दृष्टिकोण सीमित और अपने ही इर्द-गिर्द घूमता-फिरता है। वह अपने खुद को न पहचानकर दूसरा बनने की कोशिश करता है। मध्यवर्ग बाहर से जितनी भी महत्वाकांक्षायें रखनेवाला जान पड़ता हो, भीतर से वह अपनी ही सीमित परिवेश में जीना पसंद करता है। उसकी संकुचित मनोग्रन्थियाँ उसकी प्रगति में बाधा बनकर आती हैं। यही अंतश्चेतना कभी कभी उसे अपने को तथा दूसरों को पहचानने में विघ्न करती है।

मन्नू भंडारी ने ऐसे एक मध्यवर्गीय दंपति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है जो एक दूसरे के निकट होकर भी एक दूसरे से दूर रहता है। उनकी "तीसरा आदमी" नामक कहानी के निस्संतान दंपति बाहरी तौर पर आत्मीय जाने लगता है, मगर, भीतर से दोनों अपने अपने सीमित परिवेश में एक दूसरे से अलग हैं। उनका यह मुखौटा पहली बार तब टूट जाता है जब पत्नी पति से डाक्टर से मिलने की बात करती है। पति इसको इनकार कर देता है। वास्तविकता तो यह है कि उसमें ही कमजोरी है। पर अपने पुरुषत्व पर उसे किसी प्रकार की शंका नहीं लगती। दूसरी बार यह होता है कि वह अपनी पत्नी के दोस्त लेखक आलोक से खुलकर व्यवहार नहीं करता जबकि साहित्याभिरुचि रखनेवाली अपनी पत्नी का वह हमेशा समर्थन करता रहता है। एक साधारण मध्यवर्गीय पति की तरह उसका मन शंकाओं से भर जाता है, पर आधुनिक तथा नवीन आदर्शोंवाला आदमी की तरह उसका सहयोग भी करता है। तीसरी बार, उसकी आधुनिकता इस हद तक पहुँचती है कि वह सोचता है कि शकुन माँ बनने के लिए कोई भी मार्ग अपनाये। पर उसकी रूढ़

मानसिकता यह स्वीकार नहीं करती कि किसी के बच्चे को अपनाए—“मान लो, कभी ऐसा कुछ हो जाए, तो क्या वह उस बच्चे को स्वीकार कर सकेगा?.....जहाँ पर दूसरे की छाप है, उसे स्वीकार करना उसके लिए असंभव है। किसी का बच्चा.....”¹ पत्नी का मुखौटा तब टूट जाता है जब पति उसे पाता है कि घर में इतने सारे कामों के बावजूद वह अपने दोस्त के उपन्यास पर रमी हुई है। अपने आपको छिपाकर दूसरा बनने का ऐसा प्रयास प्रायः सभी मध्यवर्गीय दंपतियों में दिखाई पड़ता है जो पारिवारिक शिथिलता का प्रमुख आधार रहता है।

शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानी "प्रायश्चित" में रंजना का जो उल्लेख किया है, वह पाठकों को रामायण की सीता की याद दिलायेगी जिसे श्रीराम ने लोकापवाद के भय से कानन में छोड़ा था। कहानी में रमेश रंजना को लोकापवाद के डर से ही उपेक्षा करता है। रमेश उच्च शिक्षा प्राप्त कालेज का प्रफेसर है, फिर भी, सच्चाई जानने की कोशिश किये बिना, दूसरों से लगाये आरोप के आधार पर पत्नी की उपेक्षा करता है जिसके मूल में समाज में अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल है। बिना पूछताछ के, या, बिना किसी स्पष्टीकरण के, पत्नी की उपेक्षा करना पौरुष पुरुष का काम नहीं है। पर रमेश वही करता है। शिक्षित होने पर भी वह अपने विवेक को खो बैठता है। उसकी मौन उपेक्षा के आगे रंजना तड़प उठती है—“रंजना पूछना चाहती थी, “और मैं?” पर न मालूम उसके गले में कौन-सी वस्तु अटक गयी। वह न रो सकी, न कुछ

1. मन्नु भंडारी—तीसरा आदमी—यही सच है (क.सं.)—1966—पृ.38

कह सकी। चुप गर्दन झुकाकर पृथ्वी की ओर देखती रह गयी।¹ रमेश की निर्ममता इस कदर तक पहुँचती है कि वह बेटा विनय को भी रंजना से छीन लेता है। अपने मातृत्व की इस अवहेलना को भी रंजना को भोगना पड़ता है जो उसके अनकिये पाप का प्रायश्चित है—“रमेश उसे व्यभिचारिणी कहता, कुलटा और बेहया कहता, तो भी उसके मन में उतनी पीड़ा न होती। उसकी गोद से उसका पुत्र छीना जा रहा था, और वह बेबस गाय की तरह खड़ी थी। गाय से भी बदतर, क्योंकि वह हुंकार भी नहीं सकती थी।”² नौकरों से सुनी-सुनायी बातों पर विश्वास करनेवाले एक औसत पुरुष के रूप में रमेश जैसे पढ़े-लिखे कालेज के अध्यापक की मानसिकता मध्यवर्गीय संकुचित मानसिक अवस्था का प्रतिफलन है जो अपने पारंपरिक दायरे से बाहर आना नहीं चाहता।

भीष्म साहनी की "सिफारिश चिट्ठी" में ऐसा एक पात्र हमारे सामने आता है जो लोकापवाद के डर से अपने प्रमोशन की संभावना को खुद रोकता है। अपनी और अपने परिवार की तरक्की से भी ज़्यादा, वह, अपने प्रति दफतर के लोगों की संभावित ईर्ष्या से चिंतित है। त्रिलोकी कहता है— "खन्ना साहब बैठे-बिठाये बखेड़ खड़ा कर दिया। तरक्की तो होगी या नहीं दफतर के बाकी ख्वामख्वाह मेरे दुश्मन बन जायेंगे।"³ उसका तनाव इतना बढ़ जाता

-
1. शिवप्रसाद सिंह-प्रायश्चित-अन्धकूप(संपूर्ण कहानियाँ)-1985-पृ.174
 2. वही-पृ.174
 3. भीष्म साहनी-सिफारिश चिट्ठी-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.54

है कि वह अपने आपको कोसता है- "अब डायरेक्टर के साथ मेरा परिचय कराने की क्या ज़रूरत थी! वह उन्हें नीचे छोड़ने आया था। घण्टा-भर मेरे कन्धे पर हाथ रखे खुफ़ूस करते रहे। दफ़तर में जिसे मालूम नहीं था, उसे भी पता चल गया। भूल मुझसे हुई। अगर मैं उन्हें देखकर पीठ मोड़ लेता तो वे मुझे पहचान नहीं पाते, यह बखेडा उठता ही नहीं।"¹ त्रिलोकी अपने चौदह साल की क्लर्की ज़िंदगी से ऊब और परेशान है। घर की आर्थिक स्थिति उसे परेशान करती है। उसकी शैक्षणिक योग्यतायें, दफ़तर के अन्य क्लर्कों से, यहाँ तक कि सुपरिण्टेण्ड से भी अधिक है। शिक्षा विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष, उसके ही प्रोफेसर खन्ना साहब से उसकी मुलाकात उसकी ज़िंदगी में एक नया मोड़ ला सकती थी, पर त्रिलोकी की दुविधाग्रस्त मानसिकता ऐसा होने को नहीं देती है। वह असमंजस में पड़ जाता है कि उसके प्रमोशन के सिलसिले में खन्ना साहब अगर सिफारिश करें तो दफ़तर के लोग उससे बिगड़ जाएँगे। दूसरी तरफ, चौदह साल की क्लर्की की एकरसता और घर की बुरी आर्थिक स्थिति उसे बेहाल में धकेल देती है। एक ओर वह तरक्की चाहता है तो दूसरी ओर अपना आदर्श खोना भी नहीं चाहता। अंत में वह खन्ना साहब से सिफारिश चिट्ठी न भेजने को कहता है। मध्यवर्गीय ज़िंदगी की विडंबना यही है कि वह ज़िंदगी में कुछ पाना चाहता है, मगर, दूसरों के सामने झूठी प्रतिष्ठा का नाटक करता है। यह मध्यवर्गीय ज़िंदगी की सीमा है। उसे ऊपर उठने का अवसर प्राप्त है, पर अपने संकुचित दायरे में पड़कर ऐसा नहीं कर सकता।

1. भीष्म साहनी-सिफारिश चिट्ठी-मेरी प्रिय कहानियाँ-2004-पृ.54

अर्थाभाव के कारण घर-परिवार की ज़िम्मेदारियों के निर्वाह में पराजित होकर, सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी न कर सकनेवाले रमेश नामक युवक की कहानी द्वारा मुक्तिबोध मध्यवर्ग के मन की तड़प और बेतहाशा व्यक्त करते हैं "नयी ज़िंदगी" नामक अपनी कहानी में। रमेश जैसे युवक मध्यवर्ग में बहुतेरे हैं जो अपनी मनोकामना के अनुसार ज़िंदगी जी नहीं सकते। रमेश अपनी योग्यताओं तथा बाहरी सफलताओं के बावजूद घरेलू ज़िंदगी की समस्याओं से टकराकर बचैन हो जाता है। अपने विचारों, भावों और इरादों से वह नेतृत्व की द्वितीय पंक्ति में आ पहुँचा। लोगों के बीच उसके ज्ञान और व्यावहारिकता का गहरा असर था। देशीय स्तर से लेकर अन्तर्देशीय स्तर तक के मामलों में उसकी विशेष जानकारी थी और लोग उसका मूँह जोहते थे। वह सच्चा देश-प्रेमी था। वह हमेशा अपने देश के उद्धार की बातें सोचा करता था। वह एक अच्छा कवि और वक्ता था। उसे स्वयं अपनी कर्तृत्व-शक्ति और प्रभाव के स्वरूप की ज़्यादा जानकारी थी। रमेश की सामाजिक प्रतिष्ठा बड़ा प्रभावशाली और उच्च कोटी की थी। तो भी रमेश अपने को निकम्मा समझकर हीन-भाव से शिथिल हो जाता था। आर्थिक अभाव ने उसमें हीनता-ग्रन्थी को जगा दिया था। बीमार बच्चे को दवा लेने के लिए उसके पास पैसा नहीं था। उसका मन उसे कचोटता रहा कि वह एक उत्तरदायी पिता नहीं बन सका। अर्थाभाव की इस परिस्थिति से वह हमेशा दम घुटता रहा। अपने दोस्त से उसके कथन में, उसका मानसिक तनाव स्पष्ट हो जाता है कि वह एक सच्चा मनुष्य बनना चाहता है- "मुझे एक ऐसा गुरु

चाहिए जो छड़ी मारे। वह मुझ पत्थर में से एक सच्चा मनुष्य पैदा कर सकता है।¹ यह तो मध्यवर्ग का बन्धन है। अपने मनोनीत क्षेत्र में अग्रसर होने में बाधक बन पड़नेवाली गरीबी वैयक्तिक प्रगति को ही नहीं, सामाजिक प्रगति को भी अवरुद्ध कर देती है। सामाजिक समस्याओं से जूझने में यह गरीबी उसे रोक देती है।

कहानी के अंत में मुक्तिबोध ने मध्यवर्ग की इस समस्या का हल भी सुनवाया है। रमेश कहता है— "हाँ, अब मैं नयी ज़िंदगी की सारी ज़िम्मेदारियों को एक साथ निबाहना चाहता हूँ, लेकिन मेरेलिए इससे तो तुम्हारी आवश्यकता बढ़ जाती है।"² मध्यवर्ग के जीवन की सफलता भी यहीं है। परिवार से कटकर कोई भी समाज का उद्धार नहीं कर सकता। साथ ही एक सच्चा नागरिक होना है तो एक व्यक्ति को सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक समस्याओं से जूझना और देशीय तथा अन्तर्देशीय मामलों की भी जानकारी ज़रूरी है। पारिवारिक सफलता सामाजिक सफलता की पहली सीढ़ी है। कहानी में रमेश के दोस्त के ज़रिए मुक्तिबोध के ही विचार प्रकट होते हैं— "दुनिया के बारे में सारी योजनायें अपनी जेब में लेकर चलनेवाले लोगों के जीवन में, उनकी सारी सफलताओं के बावजूद अगर मैं उनमें अव्यवस्था, असंगठन और आवारागर्दी देखता हूँ तो, न जाने क्यों, मुझे बहुत बुरा लगता है।"³ दरअसल रमेश सचेत, जागरूक और संवेदनशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवि है जिसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि

1. मुक्तिबोध-नयी ज़िंदगी-काठ का सपना (क.सं.) 1967-पृ.68

2. वही-पृ.74

3. वही-पृ.69

"क्लासिकल" मध्यवर्ग की हैसियत प्राप्त करने में सहायक न थी। एक गरीब विधवा माँ के बेटे होने के नाते उसकी पढ़ाई नौवे दर्जे में आकर रुक गयी। माँ को नौकरानी बननी पड़ी। उसकी आवारागर्दी से प्रतिष्ठित परिवार के लोगों ने उसे गुण्डा समझा। पर लडके ने इस आवारागर्दी में भी पढ़ाई की, उन्नति की और वह लीडर बना। पर विरासत में मिली असंयम और अव्यवस्था की आदतें न गयीं। फलतः "मध्यवर्ग का होते हुए भी वह उस वर्ग का न था। फल यह था कि न तो निचली श्रेणी के लोगों की लाभदायक आदतें और मनोवृत्तियाँ उसके पास थीं, न मध्यम वर्ग के ऐसे प्रधान लाभ उसे उपलब्ध थे जो सामाजिक प्रभाव और बड़ी डिग्रियों से प्राप्त होते हैं।" इन कमियों को पार करना भी मध्यवर्गीय ज़िंदगी की चुनौती है। रमेश अपने विचारों, भावों और इरादों से प्रेरित होकर सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है। एक नयी ज़िंदगी शुरू करने की प्रेरणा भी उसे इन चुनौतियों से मिला।

ज़िंदगी में अकेला बन पड़नेवालों से दूसरों द्वारा किये जानेवाले शोषण का उल्लेख करती है मन्नू भंडारी अपनी कहानी "'अकेली" में। यह एक सोमा बुआ का अकेलापन नहीं, अपितु अपने परिवारवालों तथा बन्धुजनों से अलग बन पड़नेवालों का अकेलापन है। ये लोग अनाथ नहीं हैं, इनके परिवारवाले हैं और बन्धुजन भी हैं। फिर भी इनको अनाथों की सी ज़िंदगी जीना पड़ता है। परिवारवालों की स्वार्थ वृत्ति, चारित्रिक भिन्नतायें आदि इसके कई कारण हो सकते हैं। तो इन लोगों को दूसरों का आश्रय लेना पड़ता है।

1. मुक्तिबोध-नयी ज़िंदगी-काठ का सपना (क.सं.) 1967-पृ.72

दूसरों के संपर्क में ये अपने आपको हिला-मिला देते हैं और उनको अपना समझ लेते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि जिन लोगों को वे अपना समझ लेते हैं उनके प्यार और ममता, वास्तविक न होकर दिखावटी मात्र रहते हैं। दरअसल, ऐसे लोग इन बेसहारों की असहायता का लाभ उठाते हैं। मन्नु भंडारी ने सोमा बुआ की ज़िंदगी के द्वारा समाज के उन तथाकथित आवारों का चित्रण किया है। यह मध्यवर्गीय ज़िंदगी का और एक पहलू है। सोमा बुआ अपने पुत्र की मृत्यु तथा पति के तीरथवास से जीवन में अकेली बन जाती है। जब कभी पति वापस आता तो भी उससे मीठे बोल नहीं बोलता। दूसरों के घर को अपना घर समझकर तन-तोड़ मेहनत करनेवाली बुआ से देवर की लड़की की शादी की लिस्ट में उसके नाम होने की विधवा ननद की ज़राज़र झूठ उसके प्रति किये जानेवाला शोषण है। सोमा बुआ इसे सत्य मानती है, क्योंकि वह इन लोगों को अपना मानती है। सोमा बुआ जैसे लोगों से लाभ उठानेवाले कोई निम्न स्तर के या उच्च स्तर के लोग नहीं, बल्कि मध्यवर्ग ही है। यह मध्यवर्ग की चारित्रिक त्रुटी है जो दूसरों को पहचानने और बेसहारों को सहारा बन पाने में उसे रोकती है। मन की संकीर्णता मध्यवर्गीय ज़िंदगी की सीमा है जो अपने लिए ही नहीं दूसरों के लिए भी कष्टदायक है।

कमलेश्वर की एक कहानी है "ऊपर उठता हुआ मकान" जिसमें वयस्क दंपती के रागविहीन संबंध का उल्लेख है। जब दोनों आत्मीय संबंध का अनुभव करते हैं तो उन्हें लगता है कि उनका मकान ऊपर उड़ रहा है और

जब उनका संबंध रागविहीन होता है तो उन्हें लगता है कि उनका मकान नीचे की ओर धँसता जाता है। मध्यवर्ग का स्वभाव ही सचमुच इसी तरह है। कभी ऊपर की ओर, कभी नीचे की ओर। दो विपरीत मानसिकताओं के बीच याने दो सामाजिक स्थितियों में फँसा मध्यवर्ग सिर्फ कहानी का सच नहीं, बल्कि वह हमारे समाज का आत्यन्तिक सच है।

मध्यवर्ग की प्रतिरोधी मानसिकता

मध्यवर्ग हमेशा अपनी वर्तमान परिस्थितियों से अतृप्त रहता है। अपने चारों तरफ होनेवाली सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्यहीनतायें तथा पूँजिपतियों एवं शासक वर्गों से होनेवाले शोषण, अत्याचार और अन्याय उन्हें अशान्त बनाते रहते हैं। समाज के सबसे बड़े वर्ग होने के नाते, अपनी पूरी शक्ति और ताकत के साथ वह इन बुराईयों से लड़ता रहता है। इसमें समाज के भविष्य को बदलने का सामर्थ्य है। समाज के नेता इस वर्ग से आते हैं। गलती को गलती कहने का धैर्य तथा सत्य को प्रामाणित करने की शक्ति इसमें निहित है। वह क्रांतिकारी दर्शनों और परिवर्तनों का समर्थक होता है। आधुनिक युग में जनतांत्रिक शासन प्रणाली के व्यापन में और राजनैतिक तानाशाही के उन्मूलन में मध्यवर्ग का ही प्रमुख हाथ रहा है।

इन सबके बावजूद इसमें ये भी दोष पाये जाते हैं कि अपनी अन्तर्निहित शक्ति से अनभिज्ञ होकर, इनमें से ज़्यादा, या तो इन शोषणों को

सहते रहते हैं या प्रतिरोध करनेवालों का समर्थन नहीं करते या उन्हें अपनों में से अलग कर देते हैं। इसके पीछे उनकी अपनी ही स्वार्थता, अपने परिवार का आर्थिक घुटन और इन सबसे ऊपर कायरता कार्यरत रहते हैं। कभी कभी उसकी प्रतिरोधी मानसिकता जीवन-यथार्थ से टकराकर समझौते की राह पकड़ जाती है।

शेखर जोशी की "बदबू" नामक कहानी का नायक प्रतिरोधी मानसिकता से प्रेरित व्यक्ति है। वह कारखाने में अफसरों के शोषण के विरुद्ध लोगों को एकत्रित करने की कोशिश करता है। एक हद तक वह सफल भी रहता है। लेकिन अफसरों की चेतावनी, धमकी और दंड से मज़दूर डर जाते हैं और अपने लक्ष्य से पीछे रह जाते हैं। मज़दूरों के संगठित न रहने के तीन मुख्य कारण होते हैं। पहला है उनका अशिक्षित होना। अशिक्षित होने से वे अपने अधिकारों के प्रति अनजान हैं। इसलिए नायक अपने घर पर मीटिंग चलाता है जिसमें कामगारों के मकान की परेशानी, छुट्टियों के हिसाब न ठीक करने की तथा छोटी छोटी बातों पर जुर्माना होने की चर्चा होती है जो पहले कभी नहीं हुई थी। दूसरा कारण है गुलामी की मानसिकता। कहानी में बुजुर्ग कहता है— "घोड़े के पीछे और अफसर के आगे कौन समझदार जाएगा? एक आदमी के कारण इतने लोगों का नुकसान हो गया, ऐसे लड़ने-भिड़ने को ही जवानी बनी रखी हो तो आदमी दंगल करे, अखाड़े में जाए। नौकरी में नौकर की ही तरह रहना चाहिए।"¹ तीसरा कारण है ईर्ष्या। यदि कोई दूसरों को एकत्रित

1. शेखर जोशी-बदबू-साथ के लोग(क.सं.)-1981-पृ.104

करने या अफसरों के अन्यायों के विरुद्ध आवाज़ उठाने की कोशिश करता है तो दूसरे उसे नेता की दृष्टि से देखने लगते हैं जो वहाँ के पहले के नेताओं को अच्छा नहीं लगता है। "नेता ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा-काहे शर्मिन्दा करते हो भाई, अब तो कारखाने में बड़े बड़े नेता पैदा हो गए हैं। हम किस खेत की मूली है।"

दरअसल, अपने ही लोगों का असहयोग तथा अफसरों के दमन से उसकी प्रतिरोधी शक्ति क्षीण बन जाती है। पहले उसे हमेशा अपने हाथ से बदबू आती थी। वह बार बार अपने हाथ को साबुन से धोया करता था। बार बार वह अपने हाथ को सूँघ लेता है कि बदबू आती है या नहीं। अब उसे लगने लगा कि बदबू आती ही नहीं। मतलब है, वह अपनी परिस्थिति से या अपने परिवेश की समस्याओं से समझौता कर चुका है। मध्यवर्ग की प्रतिरोधी मानसिकता कभी कभी ऐसी समझौतों पर आकर ठहर जाती है।

"जहाँ लक्ष्मी कैद है" नामक अपनी कहानी में राजेंद्र यादव ने सदियों से दमित स्त्री मन की प्रतिरोधी मानसिकता का उल्लेख किया है। व्यवस्था के प्रति आक्रोश और उस व्यवस्था पर विद्रोह करने की ख्वाहिश स्वयं लक्ष्मी में है। "मुझे निकालो", "मुझे निकालो" वाली उसकी पुकार रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्ति पाने की कराह है। लक्ष्मी का विद्रोह सारे मध्यवर्गीय स्त्रियों का विद्रोह है। लक्ष्मी का विद्रोह केवल उसकी आवाज़ में है। लेकिन यह भी सच है कि

1. शेखर जोशी-बदबू-साथ के लोग (क.सं.)-1981-पृ.100

पहले स्त्री अपनी आवाज़ भी नहीं उठा सकती थी। वास्तव में स्वर उठाना प्रतिरोध की पहली सीढ़ी है। लक्ष्मी का कैद रहने का सांकेतिक अर्थ है पारंपरिक आचारों और रिवाज़ों में स्त्रियों का कैद रहना। इस कैद से मुक्ति पाने की लक्ष्मी की छटपटाहट सामाजिक कुरीतियों और अन्यायों से स्त्रियों की मुक्ति की छटपटाहट है। उसके पिता लाला रूपाराम इन सामाजिक कुरीतियों और अन्यायों का मानवीय रूप है। अपने पिता के प्रति कटु नफरत उसके इन शब्दों में स्पष्ट है- "तू ने मुझे अपने लिये रखा है, मुझे खा, मुझे चबा, मुझे भोग।" सदियों से भारतीय समाज में स्त्रियों की हैसियत क्या रही है इसका उल्लेख महादेवी वर्मा ने किया है- "स्त्री किस प्रकार अपने हृदय को चूर-चूर कर पत्थर की देव-प्रतिमा बन सकती है, यह देखना हो तो हिन्दू गृहस्थ की, दुधमुँही बालिका से शापमयी युवति में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने हृदय की, हृदय के समान ही प्रिय इच्छायें कुचल-कुचल कर निर्मूल कर देती है, सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती है और इस पर भी दूसरों के अमंगल के भय से आँखों में दो बूँद जल भी इच्छानुसार नहीं आने दे सकती। अर्धांगिनी की विडंबना का भार लिये, सीता-सावित्री के अलौकिक तथा पवित्र आदर्श का भार, अपने भेदे हुए जीर्ण-शीर्ण स्त्रीत्व पर किसी प्रकार सँभालकर क्रीतदासी के समान अपने मद्यप, दुराचारी तथा पशु से भी निकृष्ट स्वामी की परिचर्या में लगी हुई और उसके

1. राजेंद्र यादव-जहाँ लक्ष्मी कैद है-अकेली(क.सं.)लाइब्रेरी संस्करण-पृ.34-35

दुर्व्यवहार को सहकर भी देवताओं से जन्म-जन्मांतर में उसी का संग पाने का वरदान माँगनेवाली पत्नी को देखकर कौन आश्चर्याभिभूत न हो उठेगा? पिता के इंगित मात्र से अपने जीवन-प्रभात में देखे रंगीन स्वप्नों को विस्मृति से ढककर बिना एक दीर्घ निश्वास लिये अयोग्य से अयोग्य पुरुष का अनुगमन करने को प्रस्तुत पुत्री को देखकर किसका हृदय न भर आवेगा? पिता की अट्टालिका और वैभव से वंचित दरिद्र भगिनी को ऐश्वर्य का उपभोग करनेवाले भाई की कलाई पर सरलभाव से रक्षाबंधन बाँधते देख कौन विश्वास कर सकेगा कि ईर्ष्या भी मनुष्य का स्वाभाविक विकार है और अनेक साहसहीन निर्जीव से पुत्रों द्वारा उपेक्षा और अनादर से आहत हृदय ले उनके सुख के प्रयत्न में लगी हुई माता को देख कौन "क्वचित् कुमाता न भवति" कहनेवाले को स्त्री स्वभाव के गंभीर रहस्य का अन्वेषक न मान लेगा?.....आज हिंदू स्त्री भी शव के समान ही निस्पन्द है। संस्कारों ने उसे पक्षाघात के रोगी के समान जड़ कर दिया है, अतः अपने सुख-दुख की चेष्टा-द्वारा प्रकट करने में भी वह असमर्थ है।¹ आधुनिक स्त्री की दशा भी इससे सुधर नहीं हुई है, चाहे अल्पसंख्यक शिक्षा और नौकरी से इससे छुड़ सके। पर शेष अधिकांश अब भी सामाजिक और सांस्कृतिक बन्धनों में तडप रही है। भारतीय स्त्री "सती-सावित्री" का प्रतिरूप मानने लगी थी। पुराणों के आदर्श स्त्री पात्रों की दुहाई देकर उसे देवी की प्रतिष्ठा दी जाती थी जिससे उसे विद्रोह की बात तो दूर, अपनी आवाज़ को ऊँचा उठाने की नौबत भी नहीं दी जाती थी। लक्ष्मी

1. महादेवी वर्मा-जीने की कला-सं.डॉ.सरोज सिन्ह-2006-पृ.24

प्रतिरोध की प्रक्रिया में सफल नहीं होती है, पर उसमें प्रतिरोध करने की मानसिकता की जगृति ही उसकी सफलता है।

अगर रूपाराम पारंपरिक पुरुष का प्रतिनिधि है तो उसके अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करनेवाला एक पुरुष पात्र आता है, चाहे उसका विद्रोह कुछ शब्दों तक सीमित रहता है। वह लाला का नौकर चौकीदार दिलावर सिंह है जिसके मन में अपने मालिक के प्रति तीव्र धृणा से परे कुछ भी नहीं है। उसका विद्रोह इन शब्दों से भड़क उठता है— "इसकी तो बोटी-बोटी गरम लोहे से दागी जाए और फिर बाँधकर गोली से उडा दिये जाए।"¹ दरअसल, स्त्री की मुक्ति केवल स्त्री के विद्रोह से सफल नहीं होती है। उसे उस पुरुष की सहायता आवश्यक है जो गोविंद के समान नपुसंक न हो, लाला रूपाराम के समान परंपरावादी न हो और करनी के बदले कथनी पर आश्वस्त दिलावर सिंह जैसा नहीं हो। पौरुष पुरुष ही उसे अव्यवस्थित सामाजिक बन्धनों और धार्मिक रूढियों से बचा सकता है। कहानीकार ने इस तथ्य को समाज के सामने रखा है।

मन्नू भंडारी की "यही सच है" नामक कहानी एक आधुनिक स्त्री की प्रतिरोधी शक्ति की सफलता का चित्र खींचती है। दीपा पारंपरिक स्त्री-मन को चुनौती देती हुई, घर के चहारदीवारी से बाहर आकर, उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपने मन-पसंद की ज़िंदगी चुन लेती है। दीपा को पहले प्रेमी निशीथ ने स्वयं तिरस्कार किया था। उसको दूसरों के सामने अपमान, निंदा तथा परिहास

1. राजेंद्र यादव-जहाँ लक्ष्मी कैद है-अकेली (क.सं.) लाइब्रेरी संस्करण-पृ.35

सहना पड़ा। लेकिन कलकत्ते में एक नौकरी की इंटरव्यू के सिलसिले में दुबारा उससे मिलने पर, उससे कुछ सहायता मिलने पर, फिर से उसका मन चंचलित हो जाता है। लौट आने पर वह निशीथ की प्रतीक्षा करती है। पर उससे पॉसिटीव आटिट्यूड न मिलने पर एक बार फिर वह दुविधा में पड जाती है। उसे लगने लगा कि संजय का प्रेम ही सच्चा प्रेम है—"और मुझे लगता है कि यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था।"² सचमुच दीपा की सफलता सच्चे प्रेम के चुनाव में है। ऊहापोह और असमंजस में पड़े हुए अपने मन से वह विद्रोह करती है। सच्चे प्रेम की पहचान ही इस विद्रोह की सफलता है। यदि वह पारंपरिक स्त्री-मन वाली होती तो पुराने प्रेमी निशीथ की प्रतीक्षा में रोते-विलपते व्यर्थ जीवन बिताती।

मध्यवर्गीय ज़िंदगी की विडंबना यह है कि अपनी बेबसी और बचैनी के आगे उसे अपने सारे आदर्शों को खोना पडता है। अन्याय और भ्रष्टाचार का विरोध करने की उसकी प्रतिरोधी मानसिकता ज़िंदगी की अपेक्षाओं के आगे नगण्य-सा लगता है। मन्नू भंडारी ने अपनी "क्षय" नामक कहानी में ऐसी एक मध्यवर्गीय युवती-कुंती-का चित्रण किया है जिसे अपने परिवार के लिए सारे आदर्शों की बलि देनी पड़ी। सचमुच वह एक परिवार की स्वार्थ-लिप्सा की शिकार नहीं है, बल्कि एक भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था की शिकार है। प्रतिरोध की लालसा होने पर भी ऐसा न करने को बाध्य करनेवाले आर्थिक दबाव और संबंधों की मज़बूरी मध्यवर्ग की आदर्श-विहीनता का कारण हो

1. मन्नू भंडारी-यही सच है-सं.-मार्कण्डेय-कथाधारा-1999-पृ.113

जाता है- "क्षय क्या कुंती के पापा को ही है? इस क्षय की शिकार यह पूरी व्यवस्था है जो अपने लिए स्वेच्छा से चुने गये शिक्षण कार्य को लेकर कुंती के सारे आदर्शों की हत्या कर देती है।"¹

हमारे देश में सामाजिक कल्याण-हेतु बनाये गये सिद्धांतों और नियमों की कोई कमी नहीं है। वैयक्तिक स्वार्थता और असवधानी इन सिद्धांतों और नियमों के निर्वाह में बाधा बन जाती है। समाज की भ्रष्टता और शिष्टता देश की जनगणना के पौने भाग के अधिकारी मध्यवर्ग द्वारा ही संभव होता है। भ्रष्टाचारिता और अनीति के प्रति विद्रोह करने की शक्ति के साथ साथ उसमें भ्रष्ट और अनैतिक बन जाने की वांचित इच्छा परिस्थिति की मज़बूरी के कारण घटित हो जाती है। कुंती के पापा आदर्शवादी हैं। उन्होंने ही कुंती को आदर्शवाद की ओर प्रेरित किया और उन्होंने ही उस पर दृढ आत्मविश्वास की चेतना जगायी। मगर अपनी बीमारी और बच्चों के भविष्य की अनिश्चितता ने उन्हें बदल दिया। यह तो हर मध्यवर्ग की बेबसी है। इसके सामने सारे आदर्शवाद और प्रतिरोधी मानसिकता का व्यावहारिक पक्ष कमज़ोर बन जाती है—"कुंती आज जो कुछ भी है, विचारों से, विश्वासों से, पापा की ही तो बनाई हुई है.....लेकिन पापा बदल गए हैं, बहुत बदल गए हैं! शायद यह बीमारी ही ऐसी होती है कि आदमी को बदलना पड़ता है।"² बदले पापा का कुंती से निवेदन है कि वह आठवीं कक्षा में पराजित टुन्नी को, सिफारिश करके चढ़वा

1. मधुरेश-हिंदी कहानी का विकास-1996-पृ.109

2. मन्नु भंडारी-क्षय-नायक, खलनायक, विदूषक (क.सं.)-2002-पृ.220

देने की कोशिश करे। कुंती की प्रतिरोधी शक्ति वहाँ जाग उठती है और उससे कहलवाती है—“पापा, कम-से-कम स्कूलों को तो इन सारी बातों से भ्रष्ट न करवाओ। टुन्नी मेरा अपना विद्यार्थी होता तब भी मैं उसे कभी न चढ़वाती।”¹ पर, दुर्भाग्य की बात है कि आगे चलकर कुंती को भी अपने पापा के समान बदलना पड़ता है। पापा का बदलाव बीमारी से उत्पन्न असहायता और अनिश्चितता के कारण था तो कुंती को, पापा की इस अप्रत्याशित बीमारी से उत्पन्न आर्थिक दबाव के कारण था। सबसे पहले उसे सावित्री को उसके घर में जाकर ट्यूशन लेनी पड़ी जिसे आठवीं कक्षा में फेल हो जाने के कारण, सिफारिश और रिश्त देकर दूसरे स्कूल में नवीं दर्जे में भरती करवाया था। यह इरादा ही उसके आदर्श व्यक्तित्व पर सबसे पहला धक्का था। फिर आगे चलकर अपने नष्ट हुए आदर्श को फिर से पकड़ने की कोशिश में, बावजूद इसके कि स्कूल की आमदनी के बगैर मिलनेवाली ट्यूशन के दो सौ रुपयों को नष्ट करके, सावित्री का ट्यूशन खतम करने का इरादा करती है। उसकी पराजय का दूसरा चरण यहाँ से आरंभ हो जाता है। सावित्री की माँ उसे गाड़ी का प्रबंध, खुशामद और बेटी की शादी के लिए दसवीं कक्षा तक जाने का अनुरोध करती है। दो सौ रुपयों के अलावा गाड़ी के प्रलोभन में गिर पड़ी कुंती हू ब हू उसी मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है जो प्रलोभन में पड़कर अपना सारा आदर्श खो बैठता है।

1. मन्नू भंडारी-क्षय-नायक, खलनायक, विदूषक (क.सं.) -2002-पृ.-222

मज़बूरी से विरोध दर्ज करना कोई प्रतिरोध नहीं होता है। प्रतिरोध जीवन के प्रति आस्था से उत्पन्न होता है। सही-गलत के विश्लेषण से उत्पन्न होता है और व्यक्ति को तथा व्यक्ति द्वारा निर्देशित समाज को आगे ले चलता है। अनेक प्रकार की सीमाओं के बावजूद हिंदी कहानी के मध्यवर्गीय पात्रों में ऐसी प्रतिरोधी-दृष्टि दर्ज की गयी है जो समाजशास्त्रीय सच है। समाज के बहुसंख्यक मध्यवर्गीय समाज सामान्य समझौतावादी हो सकते हैं; पर उनमें से कुछ प्रतिरोधी संस्कार लिए होते हैं। इसे इसलिए समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा गया है कि यह दृष्टि समाज में आरंभ से रही है। समाज यदि आगे बढ़ा है तो इसी प्रतिरोधी-दृष्टि के कारण है।



अध्याय-चार

आधुनिक हिंदी कहानी के राजनीतिक आयामों का
समाजशास्त्र

आधुनिक हिंदी कहानी में राजनीति

स्वतंत्र भारत को आगे की ओर ले जाने में अर्थनीति और विज्ञान का जितना बड़ा हाथ है, उतना ही या उससे ज़्यादा हाथ राजनीति का है। राजनीति से प्रत्यक्षतः या परोक्षतः जुड़े असंख्य विषय हमारे रोज़मर्रा जीवन में भरे पड़े हैं। स्वातंत्र्योत्तर दौर में राजनीति ने जीवन के हर क्षेत्र को छुआ है। आधुनिक हिंदी कहानी स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक मानसिकता की अभिव्यक्ति है। अतः स्वभावतः इसमें राजनीति के पक्ष मिलते हैं। आधुनिक हिंदी कहानी जिसे स्वातंत्र्योत्तर भारत की कहानी मानी जा सकती है स्वतंत्र भारत की राजनीतिक दशा का सशक्त सबूत भी है। इन राजनीतिक कहानियों में कहीं कहीं आज़ादी के पहले के और बाद के राजनीतिक नेताओं के आदर्शों का तुलनात्मक चित्रण मिलता है तो कहीं-कहीं बदले राजनीतिक परिवेश का विस्तृत और सूक्ष्म अंकन प्राप्त होता है। प्रायः सभी कहानीकारों ने चाहे उन्होंने शहरीय, ग्रामीण या आंचलिक परिवेश का ब्यौरा दिया हो, राजनीति के भिन्न-भिन्न पहलुओं को अपनी कहानियों के द्वारा उजागर किया है। विभाजन की राजनीति, राजनीति और मूल्य विघटन, राजनीति और अधिकार, राजनीति और अमानवीयता जैसे विषयों के अन्तर्गत तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिवेश का समग्र चित्र हमारे सामने उभर आता है। इन घटकों द्वारा विस्तृत

अध्ययन के पूर्व स्वतंत्र भारत के राजनैतिक माहौल पर सामान्य रूप से एक नज़र डालना उचित लगता है।

"कोई भी राष्ट्र बन जाने के बाद फिर उसकी सुरक्षा और बहुमुखी उन्नति का सवाल पैदा होता है। उसकी राष्ट्रियता का सवाल सामने आता है।"¹ स्वतंत्र भारत का नया आसमान अपने नागरिकों की प्रतीक्षाओं और उत्कंठाओं से भरी हुई थी। अंग्रेज़ी दासता से मुक्ति का आह्लाद एवं नयी शासन-व्यवस्था और नये शासनाधिकारियों पर उम्मीद को लेकर भारतीयों ने एक नयी दुनिया में प्रवेश कर लिया। बदला परिवेश, विदेशी संस्कृति का प्रभाव, स्वतंत्र वातावरण एक नयी जीवन-शैली अपनाने में ये घटक काफी थे। अपने नये राष्ट्र की उन्नति और विकास की धुन हरेक के दिल में धधक उठी। नयी राष्ट्रियता का प्रवेश भी इसी धुन का परिणाम है। जिस राजनीति के कारण उसे अपने ही अस्तित्व को फिर से स्थापित करने का रास्ता मिला, उस पर जनता का विश्वास दृढ़ और गहरा बन गया, यहाँ तक कि उनका ध्यान राजनीति से हटकर ज़िंदगी के दूसरे क्षेत्र में पड़ गया। लेकिन राजनीति के क्षेत्र में आगे जो घटनायें घटित हुईं उनसे आम जनता की आशायें और उनका विश्वास धीरे धीरे अवसाद और अविश्वास में बदल गये। राजनीति अक्सरमात् छल-कपट, अविश्वास और स्वार्थ तत्वों का मंच बन गया- "जब हम पराधीन थे, राजनीति देशभक्ति का दूसरा नाम थी, हम स्वाधीन हुए और राजनीति देशद्रोह, जनद्रोह का "संवैधानिक धंधा" बन गयी। जनसेवा देश की दुहाई देते

1. वाङ्मय-जनवरी-मार्च-2008

हुए कुर्सी पाने, हथियाने, प्राप्त कुर्सी को बनाये रखने और कुर्सी की सहायता से अपने तथा अपनों के लिए धन-संपदा-ऐश्वर्य वृद्धि का निरंतर, निर्मम, अंधा खेल राजनीति बन गयी। "राज" पाने और भोगने की अनैतिक हरकतों को "राजनीति" की संज्ञा प्राप्त हुई।¹

आज़ादी के बाद लोगों ने पहचान लिया कि अब की जो राजनीति बनी है वह राजकाज को सुचारू रूप से नहीं संचालित करती है, अपितु राजनीतिज्ञों की अपनी स्वार्थ-नीति को परिपूर्ण करने में ही सहायक है। लोक कल्याण को लक्ष्य करके सामने आयी राजनीति दुर्भाग्यवश संकीर्ण व निहित स्वार्थों की रक्षा का साधन बन गयी। यद्यपि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि और नयी शासन प्रणाली लोकतंत्र के रक्षक बनकर लोगों के सामने प्रत्यक्ष हुए, परंतु अप्रत्यक्ष रूप से वे इसका भक्षक बन गये। लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों के रहते हुए भी समाज में असामनता और अधिनिवेश की प्रवृत्ति कायम रही जिसकी मूल वजह आज़ादी की अतिखुशी में पथभ्रष्ट राजनीतिज्ञों की बुरी मानसिकता है।

जाति और धर्म का भेदभाव इन दिनों कठिनतर हो गया है। यह "डिवाइड एण्ड रूल" वाली ब्रिटीश नीति का अनुवर्तन है जिसकी परिणति भारत और पाकिस्तान याने हिंदु और मुस्लिम राष्ट्र के विभाजन के रूप में हुई थी। जाति और धर्म की चुनौती लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। उसने

1. डॉ.माधव सोनटक्के-समकालीन हिंदी उपन्यासों में राजनैतिक चित्रण-सं.डॉ.सुकुमार भंडारे-2007-भूमिका

लोगों में मारक स्पर्धा को जन्म दिया— "अल्पसंख्यक बनाम बहुसंख्यक, सवर्ण बनाम दलित, जाति बनाम अन्य जाति और जाति का नारा देकर राजनीति को जाति और धर्म के आसपास केंद्रित या ध्रुवीकृत करने की साजिश हो रही है।"¹ ऐसा लगता है, आज़ादी के साथ प्रारंभ हुई इस दुःस्थिति का आज भी समाधान ढूँढ पाना जैसे राजनीतिज्ञों के वश की बात नहीं है। धर्म के आधार पर एक गरिमा संपन्न राष्ट्र का दो टुकड़ों में बँट जाना कूट राजनीतिक तंत्रों का आँखों देखी मिसाल है तो अंदरूनी कुटिलतायें इतनी व्यापक हुई कि अमुक अमुक को अलग अलग कर पहचानना मुश्किल बन गया है। लोक सभा, राज्य सभा, विधान सभाओं, विधान परिषदों से लेकर गाँव या छोटे छोटे इलाकों की शासन-व्यवस्था तक भ्रमित राजनीतिज्ञों के कूटतंत्र भरते रहे।

दरअसल, "राजनीति का अपना एक उद्देश्य है और वह है समाज व व्यक्ति दोनों का एक समन्वित व्यापक हित।"² इसे राजनीति का दार्शनिक पक्ष कहा जा सकता है, पर उसका व्यावहारिक पक्ष परिवर्तित परिस्थिति में अल्पसंख्यक सत्ताधिकारियों और उनके अनुयायियों की पुष्टि के हेतु बन गया। इन सत्ताधिकारियों का भ्रष्टाचार स्वतंत्र भारत के न्यायालयों तक पहुँचा जो आम जनता का अंतिम शरण केंद्र है। पुलिस थानाओं से लेकर न्यायालय तक की इस भ्रष्टाचारिता से साधारण जन-जीवन कष्टपूर्ण एवं अवरुद्ध हो गया।

1. श्रीकृष्ण शर्मा-भारतीय समाज और अपराध-2003-प्रकाशकीय

2. नरेंद्र मोहन-आज की राजनीति और भ्रष्टाचार-1997-पृ.24

1979 में सारिका पत्रिका में प्रकाशित सुरेंद्र मंथन की लघु कहानी "राजनीति" याद आती है जो राजनीतिज्ञों के चरित्र पर प्रकाश डालती है। कहानी ऐसी चलती है— गंदे नाले के संकरे पुल के बीच दो बकरियाँ आमने-सामने आ जुटीं। एक कहती—पहले मैं जाऊँगी और दूसरी कहती "मैं क्यों नहीं"। बहस देर तक चलती रही। अन्ततः पहली बैठ गई और दूसरी ने उसकी पीठ पर पैर रखा तो पहली एकदम खड़ी हो गई। संतुलन बिगड़ते ही दूसरी धड़ाम से नीचे नाले में जा गिरी। पहली मुस्करायी और छाती तानकर पुल पार करने लगी। सचमुच स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक परिवेश ऐसे छल-कपट और छद्म आदर्श के तहत में विकृत हो गया। ये राजनीतिज्ञ आपस में लड़ते हैं, फिर मेल करते हैं धोखा देने के लिए और धोखा देकर, दूसरे का सर्वनाश कर मस्ती में अपनी राह पर बढ़ जाते हैं। यह ऐसा एक ज़माना बन गया है कि कोई भी राजनीतिज्ञ बन सकता है। ज्ञान, क्षमता और कुशलता जो सच्चे राजनीतिज्ञों के अवांछनीय गुण माने जाते थे जो इन नेताओं में नहीं के बराबर हैं। अधिकार एवं सत्ता मोह नैतिक मूल्यों के विधटन और अमानवीयता को फैलाने में प्रेरक रहे।

आधुनिक कहानी में इन सबका समावेश हुआ है। कहानीकारों ने अपने तथा अपने समाज के सदस्यों के मोहभंग को चित्रित किया है। राजनीतिज्ञों पर उनका व्यंग्य एक सच्ची राजनीति के पुनःनिर्माण की प्रेरणा देता है, साथ ही अपने समाजवासियों को ऐसे ढोंगी राजनीतिज्ञों से दूर रहने का आह्वान भी देते हैं।

विभाजन की राजनीति

हिंदी में ही नहीं, बल्कि कई भारतीय भाषाओं में विभाजन पर कहानियाँ प्रस्तुत हुई हैं। बंगाल, पंजाब जैसी सीमांत प्रदेश के अनेक साहित्यकारों ने विभाजन से उद्भूत समस्याओं को अपनी रचनाओं में उभारा है जो उनके अनुभवों की प्रामाणिकता की अभिव्यक्ति हैं। आधुनिक हिंदी कहानियों में भारत-विभाजन की राजनीति का संकट जन्य पक्ष प्रकट है। ये कहानियाँ विभाजन के राजनीतिक यथार्थ के बदले मानवीय गरिमा के विघटन को सूचित करती हैं। विभाजन आम जनता की ख्वाहिश या माँग की परिणति न होकर, राजनैतिक नेताओं के स्वार्थ की पूर्ति थी। एक ओर भारतीय राजनीतिज्ञों के धार्मिक वैमनस्य की भावना देश-विभाजन का हेतु बन गयी तो दूसरी ओर उपनिवेशवादियों की कूटतंत्रज्ञता उनके अपने स्वार्थ की पूर्ति में सहायक निकली। देश विभाजन ने अवाम को सुख-चैन के बदले कटु यातनायें और चिर अशांति की स्थिति प्रदान की जबकि अल्पसंख्यक राजनीतिज्ञ जो विदेशियों से भी ज़्यादा देशी थे, अपने आप में संतुष्ट निकले।

भारत-पाकिस्तान विभाजन पर हुई सांप्रदायिक दंगों की आड़ में अनेक ऐसी दुर्घटनाएँ भी हुईं जो मानवीय संवेदनाओं की चुनौतियाँ बन गयीं। धार्मिक भिन्नता से उत्पन्न वैर के अलावा इकैतियाँ, बलात्कार, बलपूर्वक धार्मिक बदलाव आदि इनमें कुछ हैं। आधुनिक कहानीकारों ने इन यथार्थों को उनकी पूरी संवेदनाओं के साथ अपनी रचनाओं में उकेरा है। सांप्रदायिकता के आधार पर किया गया यह विभाजन दो कौमों के लोगों में छुपी मुहब्बत का

घातक बन गया। राजनीति का यह मूल्य विघटन, मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों के मूल्य विघटन का हेतु बन गया। भ्रष्ट राजनीति ने मनुष्य-मनुष्य के बीच के भ्रातृत्व भाव को नष्ट कर अमानवीयता को प्रतिष्ठित किया। मोहन राकेश की कहानी "मलबे का मालिक" में इस का उल्लेख हुआ है। मुस्लिम धर्मावलंबी गनी मियाँ हिंदु पहलवान रक्खे पर इतना विश्वास करता था कि उसके रहते, उसके बेटे को कुछ नहीं होगा—"तू बता रक्खे, यह सब हुआ किस तरह? उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था, रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"¹ यह दृढ़ विश्वास धर्मों की विभिन्नता से परे था। यह पारस्परिक विश्वास सांप्रदायिकता के कलंकित आवरण से टकराकर टूट गया। उसकी क्षति राजनीतिज्ञों के मूल्यहीन चरित्र की प्रतिक्रिया है।

राकेश इस कहानी में दोनों कौमों में छिपी भीतरी मुहब्बत को दर्शाना चाहते हैं और बताना चाहते हैं कि कूट राजनीतिक तंत्रों के शिकार होते हुए भी मनुष्य अपनी मानविकता को कैसे बनाये रखते हैं। विभाजन के पहले हिंदु और मुस्लिम एक ही गली में इतने विश्वास और मुहब्बत से रहते थे कि सांप्रदायिक दंगों के दिनों में भी इस विश्वास और मुहब्बत पर चिराग को विश्वास था। वह अपनी गली में सुरक्षा की साँस लेता था। पर हुआ तो यह कि जिस पर उसे पूरा विश्वास था, वही उसके तथा उसके परिवार का घातक बन गया। रक्खे का लक्ष्य चिराग का नव-निर्मित मकान था। पर उसे भी धोखा

1. मोहन राकेश-मलबे का मालिक-सं.दूधनाथ सिंह-सार्थक कहानियाँ-1987-पृ.58

देकर किसी ने उस पर आग लगा दी। मलबा होते हुए भी रक्खा उसका मालिक बन गया। राकेश जी ने गनी मियाँ का चित्रण करके, दरअसल, इन भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को याद दिलाते हैं कि उनकी कूट तंत्रता के बावजूद देशवासियों में आपसी प्रेम और सौहार्द उनकी संपूर्णता में हैं। अपने बेटे के हत्यारे को माफ करते हुए गनी मियाँ कहता है- "जो होना था, हो गया रक्खिआ। उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है। खुदा नेक की नेकी बनाए रखे और बद की बदी माफ करे। मैं ने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूँगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे।"¹ घोर मानसिक पीड़ा की वेला में भी अपने बेटे और उसके परिवारे के हत्यारे को माफ करनेवाला गनी मियाँ तत्कालीन समाज का यथार्थ है। इस यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए राकेश ने अपने समाज की सच्चाई को प्रस्तुत किया है।

सांप्रदायिकता का विष नेताओं के दिलों में अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु भर गया तो उसकी फलप्राप्ति के लिए उन्होंने इसे जनता में फैला दिया। इसके मूल में ब्रिटीश उपनिवेशवादियों की कूट-शासन नीति थी। भारत को अपनी "कॉलनी" बनाने के लक्ष्य में ब्रिटीश साम्राज्यवादियों ने यहाँ के हिंदु और मुसलमान लोगों में भेद पैदा किया। इतिहास को परखे तो जान पाएगा कि भारत ने बाहर से आये धर्मों को भी पनपने दिया। इनमें इस्लाम धर्म ने विशेष बल ग्रहण किया, क्योंकि इस विशाल देश में ऐसे अनेक मुसलमान राजा हुए थे जिनके शासन काल में जनता ने सुख-ऐश्वर्य और शांति की साँस ले ली थी।

1. मोहन राकेश-मलबे का मालिक-सं.दूधनाथ सिंह-सार्थक कहानियाँ-1987-पृ.58

मगर ब्रिटीश उपनिवेशवादियों की नज़र यहाँ की जनता की सुख-संपत्ति की वृद्धि पर नहीं, अपितु अपने ही ऐशे-आराम और संपत्ति की वृद्धि पर थी। अतः धार्मिक भिन्नता से परे एक मज़बूत समाज की फूट उनका लक्ष्य रहा और वे अपने इस लक्ष्य पर विजयी भी हुए। उनकी विजय की अवधि सदियों तक रही। भारत की भूमि पर सांप्रदायिकता का जन्म इस तरह हुआ।

धर्म को आधार बनाकर बनायी गयी यह सांप्रदायिकता वर्गों और वर्णों के आधार पर होनेवाले संघर्षों की तरह ही तीव्र और भयानक है। मनुष्य अपनी संवेदनात्मकता खोकर पशु बननेवाले इस संदर्भ में उसका पडोसी या मित्र मित्र न होकर शत्रु बन जाता है। इसकी वजह केवल यह है कि धर्म दूसरा है। सांप्रदायिक दंगों के अवसर पर अपने ही धर्म के लोग जहाँ इकट्ठे रहते हैं, वहाँ का वातावरण उन्हें सुरक्षित रहता है। जब कभी एक, दूसरे धर्मावलंबियों के बीच पड़ जाता है, यद्यपि वह इसका कुछ भी बिगाड़नेवाला न होने पर भी वह भयाक्रांत और सुन्न रह जाता है। भीष्म साहनी ने अपनी कहानी "अमृतसर आ गया है" में इन दोनों अवस्थाओं का वर्णन किया है। गाड़ी में धुस आये हिंदु परिवार को पठान बाहर धकेल देता है। उसकी क्रूरता का निदान केवल गाड़ी में उसका बहुसंख्यक होना था। पर जब गाड़ी अमृतसर पहुँच जाती है तो हिंदुधर्म का बाबू पठानों पर हमला बोल देता है, क्योंकि वह अपनी ही जात के लोगों का इलाका है। हिंदुओं के प्रति पठान लोगों का बर्ताव मनुष्यत्व के लिए चुनौती है। हिंदु बाबू भयाक्रांत होकर सीट के नीचे फर्श पर लेट जाता है। पर अमृतसर आने पर हिंदु अकेला उन पर

हमला बोल देता है, पर उन्हें न मिलने पर गाड़ी में घुसने की कोशिश करनेवाले दंपतियों में, पुरुष पर वार करता है।

भीष्म साहनी ने एक मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर भी इशारा किया है कि व्यक्ति अनजाने ही हत्यारा बन जाने पर अपने को विचित्र महसूस करता है— "उसने ध्यान से अपने कपड़ों की ओर देखा, अपने हाथों की ओर देखा। फिर एक-एक करके अपने हाथों को नाक के पास ले जाकर उन्हें सूंघा, मानो जानना चाहता हो कि उसके हाथों से खून की बू तो नहीं आ रही हो।"¹ तनाव और भय मन के संतुलन को नष्ट कर देते हैं। मानसिक संत्रास के इन क्षणों को भीष्म साहनी प्रकाश में लाया है।

जो राजनीति अपनी भौगोलिक सीमा के अंदर रहनेवाले नागरिकों की वृद्धि के हेतु रूपायित है, अपनी भ्रष्टता और संकीर्णता के कारण समान्य जन से अलग हो जाती है। विभाजन की राजनीति इसका गवाह है। संबंधों के निरर्थक होने की विडंबना विभाजन की राजनीति का और एक प्रतिफल है। विभाजन की वेला में व्यक्ति या परिवार ही नहीं, पूरे समाज ही अपनी जड़ों सहित उखाड़ दी जाती है। अपनी जन्मभूमि से अलग होनेवालों की मानसिक वेदना या तड़प सत्तालोभी राजनीतिक नेताओं की समझ के बाहर है अथवा जानते हुए भी वे अनजान होने का नाटक रचा करते हैं। कृष्णा सोबती ने "सिक्का बदल गया" नामक कहानी के द्वारा इस तथ्य की ओर इशारा किया

1. भीष्म साहनी-अमृतसर आ गया है- मेरी प्रिय कहानियाँ (क.सं.)-2004-पृ.71

है। कहानी में शाहनी का पति शाहजी और बेटा अब नहीं रहे। लम्बी-चौड़ी हवेली में वह अकेली रहती है। दूर दूर गाँवों तक फैली हुई ज़मीनें, खेतें सब उसके हैं। पर आज उसे यह सब छोड़कर जाना पड़ेगा, क्योंकि हिंदु होने के कारण उसे अपनी ज़मीन छोड़कर कैम्प में जाना पड़ता है। शेरा जो उसका असामी था, आज उसकी ऊँची हवेली की अन्धेरी कोठरी में पड़ी सोने-चाँदी की सन्दूकचियाँ उठाना चाहता है, जैसाकि पिछली रात फिरोज़ के साथ उसने ऐसा निश्चय किया था। लेकिन शाहनी के बड़े दिल के आगे उसका मन विचलित हो जाता है और वह उसकी रक्षा करने का निश्चय करता है। उसे लेने के लिए ट्रक आती है। वह अपने साथ कुछ भी लेने के लिए तैयार नहीं होती हालाँकि ऐसा करने को सब उसे प्रेरित करते हैं। पूरे गाँव के लोग उसकी हवेली के सामने इकट्ठे होते हैं और उसकी विदाई पर रो रहे हैं। लेकिन इसके साथ ही उसकी हवेली को लूटने की साज़िश भी होती है। लोगों का कहना था कि इसका कारण राज के पलटने या सिक्का बदल जाने का है। पर शाहनी का मन यह मानने के लिए तैयार नहीं था- "राज पलट गया है.....सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आयी।....."¹

शाहनी का दुख अपनी संपत्ति के खो जाने का नहीं है, मगर अपने संबंधों के टूट जाने का है। अपनी जन्मभूमि से अलग होने का है। "शाहनी के लिए बँटवारे के कारण हुकूमत के बदल जाने का, सिक्का बदल जाने का, कोई अर्थ नहीं है, उसे तो मानवीय मूल्यों के सिक्के बदल जाने, संबंधों के

1. कृष्णा सोबती-सिक्का बदल गया- बादलों के घेरे (क.सं.)-1980-पृ.128

निरर्थक बना दिये जाने का दुख है। राज पलट जाने, राजनीतिक दृष्टि से सिक्का बदल जाने से मानवीय मूल्य भी निरर्थक सिद्ध हो गये—यही उसकी अन्तर्वेदना है।¹ शाहनी की व्यथा का कारण सरोकारों का विघटन था। डॉ. अरुणा गुप्ता का मन्तव्य है— "अपनी ज़मीन से उखडने की उसकी पीड़ा अदम्य है, जिसमें न महत्व राज्य के पलटने का है, न सिक्का बदलने का, सारी पीड़ा है अपनों के बीच पाराया बन जाने की।"² सारा गाँव उसे अपना समझ रखा था, मगर वे ही बदली राजनीतिक परिस्थिति में अपने को बदल रखा है— "लाह बीबी ने अपने विकृत कंठ से कहा, शाहनी, आजतक कभी ऐसा न हुआ, न कभी सुना। गजब हो गया। अन्धेर पड़ गया।"³ गाँववालों की मानसिकता पर आया यह बदलाव विभाजन की राजनीति का ही फल है।

भ्रष्ट राजनीति देशवासियों में कितना दबाव डाल देती है, पूरी कहानी इसका दृष्टांत है। शाहनी का अपने गाँव से चला जाना वे भी पसंद नहीं करते, मगर लाचार होकर उन्हें विदा लेना पडता है। उसको अपने पास न रख पाने का पापबोध गाँववासियों में है— "वह छोटा-सा जनसमूह रो दिया। ज़रा भी दिल में मैल नहीं शाहनी के। और हम-हम शाहनी को नहीं रख सके। शेरे ने बढकर शाहनी के पाँव छुए— "शाहनी, कोई कुछ नहीं कर सका, राज ही पलट गया....."⁴ दाऊद खाँ की बातें भी इसी यथार्थ को स्पष्ट करती हैं—

-
1. डॉ.नरेंद्र मोहन-विभाजन की भूमिका और एक कथा-संसार-संचेतना-जूलाई-सितंबर-75-पृ.14
 2. डॉ.अरुणा गुप्ता-छठे दशक की कहानी में राजनैतिक मूल्य-1989-पृ.79
 3. कृष्णा सोबती-सिक्का बदल गया-बादलों के घेरे (क.सं.)-1980-पृ.125
 4. वही-पृ.128

"शाहनी मन में मैल न लाना । कुछ कर सकते तो उठा न रखते । वक्त ही ऐसा है । राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है....." विभाजन की विभीषिका ने जनमानस को झकझोर कर दिया ।

भारत-पाकिस्तान विभाजन से उद्भूत सांप्रदायिक दंगे, एक ओर बाहरी टूट-फूट और विनाश के कारण बन गये तो दूसरी ओर, स्वयं मनुष्य भीतर ही भीतर संघर्षों से घिर गये । यह समाज में बाहरी विनाश से अधिक घोर स्थिति थी । दंगों से भयाक्रांत एवं चेतनाशून्य मनुष्य और वीरान नगर विभाजन की राजनीति का एक चेहरा है । सांप्रदायिक दंगों से पीडित व्यक्तियों के अन्तर्संघर्ष का चित्रण करते हैं अमरकांत अपनी कहानी "मौत का नगर" में । कहानी में हिंदू घर्मवाला रामू, तीन सहयात्री, नौजवान पंडित और रिक्शा का सहयात्री मुसलमान दंगों से उत्पन्न आतंक के कारण गहरा अन्तर्संघर्ष अनुभव कर रहे हैं । एक छोटी सी आवाज़ भी भीड़ के आक्रमण का आभास देनेवाली भयानक सन्नाटा, अनजान की भयावह कल्पना से शरीर के अंदर विष का प्रवेश जैसा लगना, दरअसल, बाहरी आक्रमण से भी भयंकर मानसिक तनाव है । हिंदु और मुसलमान, जाति की इस भिन्नता के कारण उन दिनों मनुष्य परस्पर कितना डरते थे, कहानीकार ने इसका हृदयस्पर्शी चित्रण किया है— "वे रिक्शा के दोनों किनारों से सटे थे ताकि उनके शरीर स्पर्श न करें । दोनों शरीर को टेढ़ा करके अपने मूँह को दूसरी ओर घुमाए हुए थे । लेकिन बार बार कनखी से एक दूसरे को देख लेते थे । राम ने गौर किया कि

1. कृष्णा सोबती-सिक्का बदल गया-बादलों के घेरे (क.सं.)-1980-पृ.125

दाढ़ीवाले व्यक्ति की नज़रें इसकी कमर या पैंट की जेब की ओर भी चली जाती थी। इसका कारण वह जानता था, क्योंकि वह स्वयं दाढ़ीवाले की कमर की ओर देख लेता था। जब रिक्शा सड़क पर हिचकोले खाता था तो उनके शरीर एक दूसरे से आसटते थे, लेकिन वे फुर्ती से अलग होकर अपने अपने किनारों को पकड़ लेते थे।¹ यह अन्तर्संधर्ष तत्कालीन सामाजिकता का यथार्थ है। मनुष्य मन की विच्छिन्नता ही समाजिक जीवन के विघटन का मुख्य कारण बन जाता है जो परिस्थितियों और परिवेश पर होनेवाले आघातों और विनाशों से ज़्यादा हानिकारक है। इन संदर्भों का समाजशास्त्रीय प्रस्तुतीकरण इस कहानी में उपलब्ध होता है।

"कितने पाकिस्तान" नामक अपनी कहानी में कमलेश्वर ने पाकिस्तान को दुर्घटनाओं का प्रतीक माना है। असली पाकिस्तान की उत्पत्ति सांप्रदायिक भेदभाव के कारण हुई तो सांप्रदायिक दंगे से आहत दोनों धर्मों की जनता की उखड़ी ज़िंदगी एक एक पाकिस्तान बन गयी। उस समय दोनों कौमों का सामाजिक माहौल खोनेवालों से भरा हुआ था। परिवार से छूट जानेवाले, ज़मीन खोनेवाले, प्यार नष्ट होनेवाले, बंधु-संबंधियों से अलग रहनेवाले आदि अपनी बरबाद ज़िंदगी को लेकर या अपनी बुरी नियति को लेकर रो रहे थे। कमलेश्वर उनका बयान ऐसा करते हैं— "सभी तो अपने-अपने पाकिस्तान लिये हुए तड़प रहे हैं। आधे और अधूरे, कटे-फटे, अंग-भंग!"² आम जनता

1. अमरकांत-मौत का नगर-प्रतिनिधि कहानियाँ (क.सं.) -1984-पृ.35

2. कमलेश्वर-कितने पाकिस्तान-कोहरा (क.सं.) -1994-पृ.102

की इस बुरी नियति का नियंता कोई अदृश्य शक्ति नहीं था। उन्हीं के बीच में ज़िंदा, उन्हीं की तरह साँस लेते कच्चे मनुष्य थे, मगर उनका तंत्र अंग्रेज़ों का तंत्र था जिसकी वजह से भारत पर वे कब्जा कर सकते थे। अनिल कुमार सिंहा स्पष्ट करते हैं— "भारत में सांप्रदायिकता मुख्य रूप से ब्रिटीश उपनिवेशवाद के अंतर्विरोधों की उपज है। भारतीय उपमहाद्वीप में अपनी सत्ता के विस्तार के साथ ही उन्होंने भारतीय समुदाय को हिंदुओं और मुसलमानों के बीच में बाँट कर रखने की एक सफल कोशिश की ताकि इन दोनों समुदायों के लोग एकजुट होकर अंग्रेज़ शासकों का विरोध न कर सकें "जैसा कि इन दोनों समुदायों ने 1857 में किया था"। समुदायों को विभाजित करने का एक लाभ यह भी था कि शासक वर्ग एक का उपयोग दूसरे को दबाने में कर सकता था और साथ में यह भी था कि दोनों समुदाय के लोग आपस में लड़-लड़ कर ही अपनी सामूहिक ऊर्जा व्यय कर लिया करते और शासन के लिए कभी चुनौती नहीं बन सकते थे।" इस ऐतिहासिक विपत्ति से उत्पन्न प्रत्येक विसंगति, टूटन, संघर्ष, बिखराव, यहाँ तक कि देशाटन भी एक एक पाकिस्तान बन जाता है जैसाकि पाकिस्तान नाम ही किसी दुर्घटना या अप्रत्याशित आतंक का नाम हो। भौगोलिक सीमाओं के भीतर सिमटी पाकिस्तान एक तो ही है, मगर आज आदमी की मानसिकता की विच्छिन्नता में एक ही नहीं, अनेक पाकिस्तान उभर आए— "ओफ! मालूम नहीं कितना पाकिस्तान बन गए। एक पाकिस्तान

1. अनिलकुमार सिंहा-सांप्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस-हंस-जनवरी-2004-पृ.82

बनने के साथ-साथ, कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे, सब बातें उलझ कर रह गईं। सुलझा तो कुछ भी नहीं।"¹

सांप्रदायिक दंगे की विभीषिका को प्रस्तुत करने के साथ साथ मानवीय मूल्यों को विघटन से बचा कर रखने की कोशिश भी इस कहानी में हुई है। हिंदु धर्मवाला मंगल और इस्लाम धर्मवाली बन्नो की प्रेम-कहानी के आधार पर लिखी गई यह प्रेम कहानी भारत-पाकिस्तान विभाजन से टूटे दिलों की मर्मस्पर्शी संवेदनाओं को उजागर करती है। इसमें कहानीकार ने यह दिखाने की कोशिश की है कि पाकिस्तान केलिये टूटी ज़िंदगी, धार्मिक अंतरालों के बीच में भी मानवीयता का निदर्शन बन जाती है। मंगल और बन्नो के परिवारवालों में इतना गहरा संबंध था कि एक अवसर पर मंगल के दादा बन्नो के परिवार केलिए रक्षक बन जाता है— "घर के सामने ही मारकाट हुई। वे न होते तो शायद हम लोग ज़िंदा भी न बचते। हमला तो हम पर हुआ था। वे गली में उतर गए। तभी बांह पर वार हुआ। बाई बांह कट कर अलग गिर पड़ी। लेकिन उनकी हिम्मत—अपनी ही कटी बांह को ज़मीन से उठाकर वे लडते रहे—खून की पिचकारी छूट रही थी। कटी बांह ही उनकी हथियार थी। दंगाई तब आग के गोले फेंककर भाग गए। गली में उनकी बांह के चिथड़े पड़े थे।"² यह तो एक हिंदु द्वारा पूरे मुस्लिम परिवार की रक्षा है तो उलटे मुस्लिम हिंदु का रक्षक बन जाता है— "पुलिसवाले मुझे बहुत परेशान करते अगर

1. कमलेश्वर-कितने पाकिस्तान-कोहरा (क.सं.) -1994-पृ.89

2. वही-पृ.101

मास्टर साहब वहाँ खुद न पहुँच गए होते। उन्होंने ही सारी तफसील दी थी। उस वक्त उनका मुसलमान होना कारगर साबित हुआ था। एक मुसलमान हिंदू के लिए निर्दोषिता का बयान दे, यह बड़ा सबूत था।¹ धार्मिक विभिन्नता से परे बढ़ती इंसानी रिश्ता राजनीतिक कार्यकर्ताओं या नेताओं में पायी ही नहीं जाती है—शायद यही वजह भारत-पाकिस्तान विभाजन के रूप में प्रस्तुत हुई। भारत-पाकिस्तान विभाजन का यथार्थ है। इस यथार्थ को स्वीकार करते हुए दोनों धर्मवालों के पारस्परिक सौहार्द और प्रेम को दर्शाना कहानीकार का लक्ष्य है, क्योंकि वे समझते हैं कि यही अपने समाज की अंतश्चेतना है।

भारत-पाकिस्तान विभाजन से उद्भूत और एक समस्या अस्तित्व की समस्या है। दोनों देशों में उन लोगों की बहुतायत हुई जो अपने अपने देशों से अलग हुए। आतंक से भयभीत होकर अन्य देशों में वास करने के लिए मजबूर इन लोगों के लिए अपने अस्तित्व को बनाये रखना सबसे बड़ी चुनौती बन गयी। नयी जगह पर अपने अस्तित्व को बनाये रखने की कोशिश और उसकी पराजय से उभरनेवाले मानसिक असन्तुलन तत्कालीन मनुष्य-ज़िंदगी की विडंबना थी। "भटके हुए लोग" नामक कहानी में कमलेश्वर ने इनका वर्णन किया है। विभाजन से सीमा के आर-पार हुए तथा दूसरे प्रदेशों में बिखरे हुए लोगों का जीवन-यापन और उनका पुनर्वास नयी सरकार की सबसे बड़ी चुनौती थी। इसका सामना करने में तत्कालीन सरकार पराजित हो गयी। कहानीकारों ने इन भटके हुए लोगों की संवेदनाओं को निकट से जान लिया

1. कमलेश्वर-कितने पाकिस्तान-कोहरा (क.सं.) -1994-पृ.100

और अपनी कहानियों द्वारा उनका पक्ष लिया। कमलेश्वर ने अपने लेखन का लक्ष्य और उसकी अर्थवत्ता के संदर्भ में स्वयं कहा है— "मैं उन्हीं मुसीबतज़दा लोगों की कहानी कहना चाहता हूँ, जिन्हें मैं ने अपने चारों ओर पाया और अनुभव किया है। इसे ही मेरे लेखन का लक्ष्य कह सकते हैं।"¹

अपने वतन और अपनी ही जाति के लोगों से छूटकर रहनेवालों की ज़िंदगी की विडंबना; फिर ऐसे लोगों की प्रतीक्षाओं को कुचल देनेवाली नयी सरकारी नीति का जिक्र इस कहानी में हुआ है। पराये देश में मनुष्य का अस्तित्व मिट जाता है। कहानी में कहीं कहीं छूटी हुई अपनी धरती के प्रति मोह का वर्णन हुआ है— "छूटी हुई धरती का मोह मन में भर गया। आखिर पंजाब पंजाब है! यहाँ वह ज़िंदगी कहाँ? और हंसराज के सामने लम्बे लम्बे मैदान फैले पड़े थे। एक दूसरे को काटकर जाती हुई पगडंडियाँ। छतनार नीम तले दुपट्टे का तकिया बनाकर लेटी हुई बटोही औरतें। चौपालों में ढोलक की धमक के साथ दोहा माहिया। पीपल में पड़े हुए झूले। कीकर के झुण्ड और फसलों पर उड़ती मधुमक्खियों के चमकदार पर। नाचती-गाती वधुएँ जैसे फसल की धरती पर चली जा रही हों....."² स्वतंत्रता-प्राप्ति के बरसों बाद भी नये शासन-कर्ता अपने देश के इन नागरिकों के सपनों की पूर्ति में असफल रहे। अफसरों की भ्रष्टाचारिता इसकी वजह रही। कहानी में हंसराज जिस ज़मीन का हकदार था उसे किसी अफसर ने अपने आदमी को

1. कमलेश्वर-आजकल-फरवरी-1980-पृ.9

2. कमलेश्वर-भटके हुए लोग-कस्बे का आदमी (क.सं.) - 1982-पृ.44

दिलवा दी है। परसोतराम की हालत ही देखिए— जिस ग्यारहवीं दूकान की आस में, पराये शहर में वह अपनी ज़िंदगी काट रही है वह बनायी नहीं जाती है। दोनों घटनाओं में सरकारी अफसरों की भ्रष्टाचारिता ही मूल कारण बनता है जिससे नागरिकों को भटकना पड़ता है।

आधुनिक कहानी के दौर में लिखी गई आधिकांश कहानियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विभाजन के समाजशास्त्र को अपना आधार बनाया है। दरअसल, विभाजन एक राजनीतिक विडंबना थी। विभाजन की समस्याओं से जूझनेवाला समाज समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए भी चुनौती है।

राजनीति और मूल्यविघटन

"मूल्य" की अवधारणा सामाजिक जीवन को व्यवस्थित एवं सुशासित करने के लिए है। यह एक देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पक्षों की आधारशिला है। यह पूरे एक समाज को ही नहीं, बल्कि उसमें निवसित प्रत्येक व्यक्ति के आध्यात्मिक तथा बौद्धिक विकास की कुंजी है। मूल्यों का पतन या हास दूरव्यापक असर डालनेवाली बात है जिसका आधार प्रमुखतया वैयक्तिक स्वार्थ है। आज जो मूल्य संकट उपस्थित है वह व्यक्तिवादिता तथा व्यक्ति के स्वार्थ के कारण है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश के अवमूल्यन का आधार यही व्यक्तिवादिता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ तथा अतिमोह की संकीर्ण परिधि में विचरण करने लगा तो परंपरा से अनुशासित नैतिक मूल्यों में दरार आ गया। स्वतंत्रता-प्राप्ति, वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिक विकास, शिक्षा का प्रसार आदि से व्यक्ति-चेतना विकसित तो हुई। आज़ादी के

मिलते ही बड़े बड़े नेता पद-लोलुपता और संपत्ति के लिए भाग-दौड़ करने लगे तो आम जनता के मानस-पटल से आदर्श-चरित्र की संकल्पना मिट गयी। अवसरवादिता, भ्रष्टाचार और गैर-ईमानदारी ने पूरे देश की नैतिक व्यवस्था को पलट कर दिया।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद हुए जीवन-मूल्यों के परिवर्तित स्वरूप के मूल में राजनीतिक चेतना का आकस्मिक बदलाव है। अराजकता, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, धोखे-बाज़ी, अनीति और गुंडागर्दी आदि राजनीतिक क्षेत्र के ज़रूरी आवरण बन गये। राजनीतिक सत्ताधारियों के इस चारित्रिक पतन से जनता दिशाहीन और दिग्भ्रमित हो गयी। राजनीति के क्षेत्र में हुए इस मूल्यविघटन को आधुनिक कहानीकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा मूर्त कर दिया है।

अमरकांत की "बस्ती" इसका गवाही है। आत्मानंद छला जाता है दो राजनीतिज्ञों से जो एक समय उसके आदर्श नेता थे। पहली बार रामलाल से और दूसरी बार बाँकेलाल से। पर, वास्तव में ये दोनों आदर्श नेता ही थे तब तक, जब तक वे सत्ताहीन थे। रामलाल का प्रवेश उस समय होता है जब शहर के लोग मकान मालिकों की डाँट-फटकार बरदाश्त न कर सके थे। किराए के रद्दी मकानों में रहनेवाले लोगों के दुख-दैन्य को दूर करने के लिए जब उसने संघर्ष के मार्ग को चुन लिया तो आत्मानंद मानता है कि एक अच्छे और पवित्र काम के लिए अपनी ज़िंदगी को समर्पित कर रहा है। रामलाल के नेतृत्व में हुए आन्दोलन की सफलता इसलिए हुई कि इसकी नींव लोगों की निःस्वार्थ

भावना थी। धीरे धीरे बस्ती में एक स्वस्थ सामाजिक जीवन विकसित होने लगा, साथ ही लोगों के दिल में रामलाल के प्रति अगाध श्रद्धा भी बढ़ने लगी। फल यह हुआ कि आगे चलकर विभिन्न समितियों के कोषाध्यक्ष रामलाल ही बन गये और लोग अपने प्रिय नेता और पथ-प्रदर्शक रामलाल के आदर्शों में अपने को ढालने का प्रयास करने लगे। दरअसल, रामलाल की ज़िंदगी का दूसरा मोड़ यहाँ से शुरू होता है। धन और सत्ता के प्रभाव ने उसके व्यक्तित्व को बदल दिया। रामलाल के इस परिवर्तित चरित्र से आत्मानंद को गहरा आघात पहुँचता है। मगर उसके आगे बाँकेलाल आदर्श का अवतार बनकर आता है। पर हुआ यह कि उसने अपने को रामलाल से भी बढ़कर चोर स्थापित करने के लिए देरी नहीं की। गली में नालियों में जो लोहे की जालियाँ थीं, और मेनहोल के जो ढक्कन थे सब के सब इसी के नेतृत्व में गायब हो गयीं। दोनों नेताओं से छले गये आत्मानंद घोर मानसिक पीड़ा से तड़पने लगा-

- "आत्मानंद निराशा की अनंत गहराई में लुढ़कता गया। उसको अत्यधिक शर्म, अपमान और तुच्छता का अनुभव हो रहा था। उसके दिल के जैसे असंख्य टुकड़े कर दिए गए हों। क्या दुनिया ऐसी है? क्या विश्वास का यही फल मिलता है? कितना बेवकूफ उसे बनाया गया है! उसकी ज़िंदगी का क्या महत्व है? उसने क्या पाया अभी तक? न उसे ख्याति ही मिली और न धन ही। उसने काम के पीछे अपने बाल-बच्चों पर ध्यान नहीं दिया। अपनी घर-गृहस्थी सुधारने की भी उसने कोशिश नहीं की। वस्तुतः वह पहले रामलाल की गुलामी करता रहा, उसके बाद बाँकेलाल की।"¹

1. अमरकांत-बस्ती-प्रतिनिधि कहानियाँ-1984-पृ.132

कहानी के अंत में अमरकांत स्पष्ट करते हैं कि भ्रष्ट नेता लोग कैसे आम जनता को प्रभावित करते हैं- "अब लोग अलग अलग गिरोह बनाकर अपना स्वार्थ-साधन करने लगे। कोई जाति के आधार पर गिरोह बना लेता और कोई धर्म के आधार पर और कोई क्षेत्र के आधार पर। आपस में तनाव बढ़ गया और नये नये प्रकार के झगड़े खड़े होने लगे....."¹ नेता के गुण और अवगुण का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। "'यथा राजा तथा प्रजा" वाला सिद्धांत का सार भी यही है। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में गाँधीजी के महान आदर्श नेतृत्व में गुणसंपन्न राजनीतिज्ञ तो हुए ही, और जनता भी सच्चरित्र और ईमानदार निकले। पर बाद में बदले राजनीतिक परिवेश में जनता भ्रष्ट राजनीतिज्ञों का अनुसरण करने लगी तो सामाजिक व्यवस्था एकदम विचलित हो गयी। इस यथार्थ को अमरकांत ने प्रस्तुत कहानी द्वारा व्यंजित किया है।

"जार्ज पंचम की नाक" नामक कहानी के द्वारा कमलेश्वर ने भी इसी समस्या को उठाया है। फाँतसी शैली पर लिखी गई यह कहानी शासन के बागडोर चलानेवाले लोगों की गुलामी मानसिकता पर चोट पहुँचाती है। दो शतों की गुलामी का प्रभाव भारतीयों पर ऐसा जम गया कि अपने दिमाग और दिल उनका अपना न होकर गोरों का ही हो गया। उनकी चिंताओं, उनके आचार और विचारों में नयापन नहीं आयी, अपितु अंग्रेजों का अनुकरण मात्र निकला। दास्य-मनोवृत्ति हरेक भारतीय के मन में जम गयी है। आज़ादी के बाद भी गोरा हिंदुस्तानियों का मालिक रहा है। इस कहानी में इस मनोवृत्ति

1. अमरकांत-बस्ती-प्रतिनिधि कहानियाँ-1984-पृ.132

का पर्दाफाश हुआ है। जार्ज पंचम के बुत के लिए नाक की खोज हमारे अपने श्रेष्ठ नेताओं की नाक तक आ जाती है। कमेटीवालों की इज्जत के मुताबिक अंत में जार्ज पंचम को जिंदा नाक लग गई। प्रजातंत्रीय शासन नीति अपना आदर्श खोकर तानाशाही का स्वरूप लेने लगी और वह आम जनता और उनकी कामनाओं से एकदम बहुत दूर खड़ी रही।

राजनीतिक अत्याचारों पर प्रहार करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। राजनीति तथा शासन तंत्र का खोखलापन उन्हें तब व्यक्त हुआ जब वे इलाहाबाद छोड़कर दिल्ली आया था। वे कहते हैं— "दिल्ली आकर मेरा असंतोष और आक्रोश और बढ़ गया था, मुझे लग रहा था कि जिस आस्था और ममता से मैं "राजा निरबंसिया" की दुनिया में रह रहा था, वह व्यर्थ हो गयी थी। राजनीति सचमुच क्या होती है, भ्रष्ट राजतंत्र और नौकरशाही सत्ता द्वारा लगाए गए अप्रत्यक्ष प्रतिबंध और उनमें घुटते, संघर्ष करते व्यक्ति की क्या हालत होती है—यह सब दिल्ली में ही पहली बार बहुत गहराई से दिखाई दिया। यह भी लगा कि इस तंत्र पर कहीं से भी कोई प्रहार नहीं किया जा सकता।"¹

अमरकांत की कहानी "जनशत्रु" राजनीति के क्षेत्र में आए मूल्यविघटन का और एक सबूत है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति की एक प्रमुख विशेषता इसे कही जा सकती है कि कोई भी, कभी भी, अपनी मर्जी के

1. कमलेश्वर-जार्ज पंचम की नाक-1998-भूमिका

अनुसार एक दल को रूपायित कर सकता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि अमुक व्यक्ति ही एक दल बन जाता है। उसके विचार, आदर्श या फर्ज़ दल की विचारधारा बन जाती है। कुटिल राजनीतिक तंत्र का और एक चेहरा है छोटी छोटी सोसाइटी या संस्था का निर्माण जिसके ज़रिये एक राष्ट्रीय पार्टी का चयन कर सकता है। इन राष्ट्रीय पार्टियों के रूपायन का एक ही उद्देश्य है चुनाव जीतना। कहानी का नायक महंत बाबू चुनाव जीतने छोटी छोटी सोसाइटियों और संस्थाओं के ज़रिये राजनीति में प्रवेश करनेवालों का प्रतिनिधि है। वह राजनीति में अपना प्रवेश "रचनात्मक कार्य परिषद" नामक एक जेबी संस्था के संगठन से करता है।

महंत बाबू उन व्यक्तियों में अग्रणी है जिन्होंने समझ लिया कि देश एक संक्रमण काल से गुज़र रहा है और राजनीतिक पार्टियों के क्रांतिकारी विचार सदा के लिए निष्क्रिय भाषणों, प्रवचनों और नारों का रूप धारण करने की प्रक्रिया में है और सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कल्याण का हर काम परिश्रम व कुर्बानी के ठोस रचनात्मक तरीकों से अलग हटकर, खूब पैसा खर्च करके कागज़ पर, कागज़ी आँकड़ों की मदद से सिद्ध किया जानेवाला है। उन्होंने यह भी समझ लिया कि आनेवाले समय में पार्टी और उसकी विचारधारा की भी कोई महत्ता नहीं रहेगी, बल्कि व्यक्ति स्वयं पार्टी और विचारधारा बन जायेगा। उसने जिस जेबी संस्था का रूपायन किया जिसको लेकर उसकी प्रतीक्षा यह है कि भविष्य में राजनीतिक पार्टियों को इन जेबी संस्थाओं की बेहद ज़रूरत होगी। अपनी इस अलग पार्टी के गठन के

पश्चात् इसकी सभाओं, शैलियों, भाषणों का उसने खूब अखबारी प्रचार किया। इन सबके पीछे महंत बाबू का लक्ष्य एक ही था कि आगामी संसदीय चुनाव में खड़ा होना। उसके इस लक्ष्य में बाधा इस तरह आता है कि वह जिस निर्वाचित क्षेत्र में खड़ा होनेवाला है वह बहुत ही पिछड़ा और गरीब लोगों का इलाका है। वहाँ की जनता में अभूतपूर्व एकता भी है। दो बार से वहाँ से एक ऐसा आदमी जीता रहा जो रात-विरात उनके लिए मरने-कटने को तैयार रहता है। महंत बाबू अपनी आधुनिक चिंता और बुद्धि से, इस समस्या का ऐसा एक समाधान ढूँढ़ निकालता है कि वहाँ की जनता की एकता को छिन्न-भिन्न कर डाले। इसके लिए उसने यह उपाय निकाला कि लोगों को जाति और धर्म के भेदभाव पर आपस में लड़ा-भिड़ा करे। गाँव में वह गुंडाओं को भेजता है और वे पहले मुसलमानों को, बाद में, हिंदुओं को और फिर अलग-अलग जातियों के घर पर ईट-पत्थर फेंकते रहते हैं। पर अचानक एक दिन इनमें से एक पकड़ा जाता है। खबर पाते ही महंत बाबू वहाँ इस तरह पहुँच जाता है कि वह यात्री हो और यहाँ की भीड़ देखकर उसे रुकना पड़ा। वह मामला ऐसा संभालता है कि लोग पकड़े हुए आदमी की मुश्कें खोल देते हैं। डाँट-फटकार के साथ वह उसके कूल्हे पर ज़ोर की लात जमाता है। अगली मार के पहले वह व्यक्ति इस तरह भाग जाता है कि कोई भी उसे पकड़ न सका।

महंत बाबू का यह राजनैतिक खेल स्वतंत्रता-परवर्ती राजनीतिक चेतना का प्रतिरूप है। भारत में ब्रिटीश सत्ता ने भिन्न भिन्न जातियों तथा धर्मावलंबियों में फूट डालने की नीति अपनायी थी। बदकिस्मती है कि

प्रजातंत्रिक शासन-प्रणाली के रास्ते सत्ता पर आए खुद भारतीय राजनीतिज्ञ इस ब्रिटीश नीति को बिसर न सके तथा उसे अपनाने में हिचकते भी नहीं है।

महंत बाबू की चालाकी अनोखी है। वह अपने गुंडे को जन-रोष से बचाना चाहता है। इसकेलिए वह सबसे पहले गाँववासियों की इन्सानियत की प्रशंसा करता है और उनसे अपराधी को क्षमा करने का आह्वान करता है। मगर जब गाँववासी इसकेलिए तैयार नहीं हो जाते तो दूसरा तंत्र निकाल लेता है। वह कहता है कि वह उसका मन टटोल रहा था कि कहीं वे भीतर से कमज़ोर तो नहीं है। मात्र यह नहीं, एक जन-प्रतिनिधि होने के नाते वह उसे कडा दंड देना चाहता है। उसकी कुटिलता से अनजान गाँववासी गुंडे को उसके सामने खड़ा कर देते हैं। अपने मालिक की चालाकी गुंडा पहचान लेता है—“उस अपराधी ने अजीब तरह से चौकन्ना होकर उनकी ओर देखा, गोया किसी संभावित प्रहार से बचने की तैयारी कर रहा हो। उसकी आँखों में एक अद्भुत चमक भी आई।”¹

महंत बाबू द्वारा आयोजित यह गुंडागर्दी, वास्तव में, वोट की राजनीति का दुष्परिणाम है। यद्यपि लोक-तंत्र प्रणाली सुशासन की व्यवस्था करता है मगर वोट पाने केलिए नेता गण टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग अपनाने लगे। नरेंद्र मोहन के मत में “चुनाव प्रक्रिया व चुनावी राजनीति में भ्रष्टाचार का कुछ न कुछ समावेश हर लोकतांत्रिक देश में देखने को मिलता है, क्योंकि चुनाव में

1. अमरकांत-जनशत्रु-एक धनी व्यक्ति का बयान (क.सं.)-1997-पृ.23

विजय पाने की अदम्य आकांक्षा और ललक व्यक्ति को लगभग अंधा बना देती है।¹ वास्तव में जनशत्रु कोई गुंडा या बाहरी सत्ता नहीं है, बल्कि हमारे अपने राजनीतिज्ञ हैं। अमरकांत ने इस कहानी के माध्यम से इन राजनीतिज्ञों का पोल खोला है और आम जनता को इनकी चालाकी से सतर्क रहने की चेतावनी दी है। इस संदर्भ में कवि भरत भूषण अग्रवाल की कविता "'नाग-यज्ञ" की स्मृति आती है जिसमें उन्होंने स्वतंत्र भारत के नेता लोगों के कुर्सी हथियाने का मोह और एक बार हथियाने पर उसी पर बने रहने की चाह को चित्रित किया है— इस महानगर में जहाँ भी जाता हूँ/ कुर्सी पर एक साँप को/ कुंडली मारे बैठा पाता हूँ। कवि एक जनमेजय की प्रतीक्षा में है जो इन सर्पों का सर्वनाश कर सके। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत में मूल्यहीनता की जो स्थिति आई है उससे संबंधित मुक्तिबोध की एक कविता उल्लेखनीय है— राजनीति-साहित्य क्षेत्र भी/ महा असत्य-शूकरो का है एक तमाशा/ यद्यपि बोली जाती मूँह से भारतीय संस्कृति की भाषा।

राजनीति में जो मूल्य विघटन की स्थिति है वह स्वार्थ लिप्सा का परिणाम है। आज़ादी के मिलते ही एक ऐसी गलत धारणा नेताओं के मन में जम गयी कि अब आदर्श और बलिदान की कोई माँग नहीं है। अधिकार का मोह और भाई-भतीजावाद राजनीति के क्षेत्र में पनपने लगे तो आम जनता देश की मुख्यधारा से दूर रही। इस राजनीतिक यथार्थ को तत्कालीन कहानीकारों ने शब्दबद्ध किया है।

1. नरेंद्र मोहन-आज की राजनीति और भ्रष्टाचार-1997-प्राक्कथन

राजनीति और अधिकार

अधिकार का मोह सभी मनुष्यों में पाया जाता है। पर शिक्षित तथा सुसंस्कृत मनुष्य उसको काबू में रखता है। मनुष्य में दैवी वृत्तियाँ और पैशाचिक वृत्तियाँ होती हैं। पैशाचिक वृत्तियों पर विजय पाना ही धार्मिकता है। इसे नैतिक बोध भी कहते हैं। राजनीति एक देश का अनिवार्य घटक है जो एक समाज के लिए निर्णय लेती है और उन्हें लागू कर देती है। यह अधिकार से जुड़ा हुआ एक मानवीय कार्य है। डेमोक्रेसी (Democracy), मोनार्की (Monarchy), थियोक्रासी (Theocracy), आटॉक्रासी (Autocracy), ओलीगार्की (Oligarchy), मिलिटरी डिक्टेटरशिप (Military Dictatorship), टोटालिटेरियनिज़म (Totalitarianism) आदि इनकी विचारधाराएँ हैं। जनजातीय प्रदेशों को छोड़कर प्रायः संसार के सभी देशों में इन विचारधाराओं पर आधारित शासन नीति चालू होती है।

भारत की शासन नीति लोकतंत्र (Democracy) पर आधारित है। यह नेताओं को जनता से, जनता के लिए, जनता द्वारा चुने जानेवाली एक विचारधारा है। लोकतंत्र देश की सभी जनताओं को समता और स्वतंत्रता प्रदान करती है। लोकतांत्रिक के कायम होने के बावजूद अधिकार कुछ गिने-चुने लोगों पर केंद्रित है। इसीलिए इसे **power centred democracy** कह सकते हैं। यह सत्ता जब सब अधिकारों को अपने में समा लेती है तो वह भ्रष्ट हो जाती है।

प्रशासनिक क्षेत्र में अधिकारी वर्ग की भ्रष्टाचारिता और अनीतियाँ एक ओर जनता को परेशान करती रहीं तो दूसरी ओर स्वयं भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था ही आम जनता से दूर रहीं। अंग्रेज़ों द्वारा बनायी गयी शासन-व्यवस्था भारतीय जनता की संस्कृति और सभ्यता के अनुसार नहीं थी। फलस्वरूप सामान्य जनता हमेशा प्रशासनिक गतिविधियों से या तो अज्ञान या विमुख रही— "देश के पास जो प्रशासनिक ढाँचा है वह साम्राज्यवादी सत्ता की देन है। यह ढाँचा जिन कानूनों का आश्रय लेकर बनाया गया, उन्हें अंग्रेज़ों ने बनाया था और उनमें भारतीयता की छाप लगभग नहीं के बराबर है। परिणाम यह है कि जनता और सत्ता के बीच खाई निरंतर और अधिक गहरी तथा चौड़ी होती चली जा रही है और तो और, सत्ता और जनता की भाषा तक में अंतर आ चुका है।"¹

राजनीतिक क्षेत्र में अधिकार का निर्णायक स्थान है। दरअसल, कार्यों को अनुकूल वातावरण में बदलने की शक्ति को अधिकार कहते हैं। जब राजनीतिज्ञ अपने अधिकार को देश की सेवा हेतु उपयोग करता है तो नागरिक स्वयं राष्ट्र का हुक्मबरदार बन जाते हैं। पर प्रायः देखा यह जाता है कि अधिकार प्राप्त राजनीतिज्ञ समाज-सेवी बन जाने का वादा तो करता है, मगर अधिकार की मोहभंगिमा उस पर देशद्रोही का "लेबल" डाल देती है। भारत ने जब अपनी स्वतंत्रता हासिल की, तब से उसके अधिकारी वर्ग अपनी मौलिकता खोकर भ्रष्टाचारी तथा धोखेबाज़ बन गये। राष्ट्रीय और सार्वजनिक

1. नरेंद्र मोहन-आज की राजनीति और भ्रष्टाचार-1997-प्राक्कथन

क्षेत्रों में काम करनेवाले नेता लोग अपने प्रभाव और अपनी शक्ति को बेचकर भ्रष्टाचार में लगने का कार्य करने लगे। आजकल यह एक बड़ी बीमारी के रूप में देश को खा रहा है। यह बीमारी अधिकार के दुरुपयोग के लिए रास्ता बना देती है। देश भर के अधिकारी वर्ग भ्रष्टाचार के रास्ते पर हैं। आधुनिक दौर की कहानियों में समाज के इस यथार्थ का चित्रण हुआ है।

हरिशंकर परसाई ने अपनी कहानी "जैसे उनके दिन फिरे" में व्यंग्य के माध्यम से आधिकारी वर्ग की स्वार्थ-लिप्सा का चित्रण किया है। इसमें शासन-तंत्र में सबसे बड़ा तंत्र राजकोष भराने में राजकुमारों द्वारा अपनाये जानेवाले नीति का जिक्र किया है। चाणक्य का "कौटिल्य शास्त्र" यह बताता है कि एक राजा धन कमाने के लिए कितने निचले स्तर तक जा सकता है। बड़े व्यापारियों से धन कमाने के लिए निम्न स्तर की वेश्याओं को उनके पास भेज देता है। वे उनको धमकियाँ देती हैं तो अपमान से बचने के लिए पैसा देकर बच निकलते हैं। ये धन राजकोष में चला जाता है। दूसरा उपाय ऐसा होता है कि मृत्यु-दंड दिये गये अपराधियों को पंडितों द्वारा वध किया जाता है और ऐसा खबर फैला देता है कि भूत-प्रेतों द्वारा यह हुआ है। सामान्य जन इससे मुक्ति पाने के लिए मंदिरों में पूजा-पाठ के लिए पैसा देते हैं जो वास्तव में राजकोष में चला जाता है। यह तो चाणक्य सूत्र है राजकोष भराने का। आज शासन राजाओं के हाथ से जनता द्वारा चुने गये जन-नेताओं के हाथ में आ गया। देश की आर्थिक सुरक्षा के लिए वे भी धन इकट्ठा करते हैं, मगर अंतर केवल इतना है कि धन राजकोष में नहीं, अपितु अपनी अपनी जेब में चला जाता है।

कहानी में राजा ने छोटे राजकुमार को राजकीय सिंहासन पर इसलिए बिठा दिया कि उसने जनता से धन वसूल करने की विद्या अपनायी। उसका कहना है—“प्रजा से प्रसन्नता पूर्वक धन खींच लेना, राजा का आवश्यक गुण है।”¹ यह तंत्र छोटे राजकुमार ने सेवा-आश्रम से सीख लिया है। गाँधी भक्त सेवक आश्रम के नाम पर पैसा इकट्ठा करते हैं। ये सेवक ही नहीं, साधु-सन्यासी भी धर्म के आवरण में बड़े बड़े कुकर्म कर डालते हैं। छोटे राजकुमार ने सेवा-आश्रम से निकलकर “मानव-सेवा-संघ” नामक एक संगठन खोल दिया और प्रचार करने लगा कि गरीबों, भूखों, नंगों और अपाहिजों की सहायता करना समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है। सामान्य जन जो भोले-भाले हैं, इस षडयंत्र में फँस जाते हैं और खूब पैसे दान देते हैं। “बिना नशत्र लगाये खून निकालने” की यह विद्या आजकल के अधिकारी वर्ग का मूलमंत्र बन गया है।

“राजनीति का बँटवारा” में परसाई जी ने अधिकार-लिप्सा में डूबे एक परिवार के सदस्यों का चित्रण किया है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद राजनीति अधिकार प्राप्त करने का साधन बन गयी। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर, कुछ नेताओं ने असल में देश-सेवा नहीं की, अपितु अपने ही स्वार्थ की पूर्ति हेतु रास्ता बनाया था। मात्र अपने लिए नहीं, अपने ही परिवार के तथा सगे-संबंधियों के लिए भी उन्होंने रास्ता निकाली। लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था में संसद से पंचायत तक के अधिकार क्षेत्रों में अपना दावा हासिल करने के लिए ऐसे लोग उद्यत हैं।

1. हरिशंकर परसाई-जैसे उनके दिन फिरे-जैसे उनके दिन फिरे (क.सं.)-1969-पृ.13

कहानी में भैयाजी स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेकर जेल हो आए थे और परिवार के सब लोग देशभक्त हैं। मगर उन्होंने कैसे अपनी देशभक्ति का लाभ उठाया है वह हास्यास्पद तथा तत्कालीन परिवर्तित राजनीतिक स्थिति का परिचायक है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के संग्राम के दिनों में किस तरह अपने भविष्य को पूरी तरह से सुरक्षित करके स्वार्थी तत्वों ने उन आन्दोलनों में भाग लिया था, इस तथ्य को रेखांकित करते हुए कहानीकार ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ऐसे लोगों की लूट-खसोट के राजनीतिक हथकंडों को उद्घाटित किया है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जेल जानेवाले भैयाजी जैसे व्यक्ति पूरी राजनीति को ही अपनी तिजोरी में बंद रखते हैं। वोट और नोट की सिद्धांतहीन राजनीतिक माहौल में पैसेवाले सभी पार्टियों के अन्दर जाल फेंककर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। यहाँ भैयाजी और उसका परिवार आपस में देश की पूरी राजनीति का बँटवारा कर लेते हैं। भैयाजी स्वयं कांग्रेस और संगठन कांग्रेस का मोर्चा सँभालते हैं, छोटे भाई को जनसंघ का सदस्य बना देते हैं, बड़े भतीजे को समाजवादी पार्टी का सदस्य बनने का आदेश देता है तो छोटे भतीजे को कम्यूनिस्ट बनने की सलाह देते हैं। शेष रहता है राजनीतिशास्त्र में शोध करनेवाला बिगड़ा हुआ लड़का। भैयाजी उसे नक्सलवादी मानकर चैन की साँस लेते हैं। अब उन्हें विश्वास हो जाता है कि नगर निगम चाहे किसी भी पार्टी का हो, चुंगी की चोरी और अवैध व्यापार पक्का और सुरक्षित है— "भैयाजी खुश थे। कहने लगे, देखा तुमने? राजनीतिक ज्ञान इसे कहते हैं।

अब अपने घर में सब पार्टियाँ हो गईं। किसी का भी नगर-निगम हो, चुंगी चोरी पक्की। हमने सारी पार्टियों को तिजोरी में बन्द कर लिया है।¹

परसाई ने अपने व्यंग्य द्वारा राजनीतिक क्षेत्र के अन्तर्विरोधों का पर्दाफाश किया है। यह अन्तर्विरोध स्वतंत्रता-परवर्ती राजनीतिक क्षेत्र की वास्तविकता है। अपनी रचनाधर्मिता का पालन करते हुए कहानीकार ने तत्कालीन कहानीकारों का प्रतिनिधित्व किया है।

"हत्यारे" नामक कहानी में अमरकांत ने राजनैतिक-भ्रष्टाचारिता से पथभ्रष्ट होकर हत्यारा बने दो युवकों का चित्रण किया है। ये युवक नये सत्तासीन वर्ग की भ्रष्टाचारिता के शिकार बनी युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं। प्रशासनिक व्यवस्था की अनीतियाँ और भ्रष्टाचार लोगों में घूसा-खोरी, अन्याय तथा विद्रोह की भावनाएँ जगाती हैं। इसकी चरम सीमा में व्यक्ति हत्यारा बन जाता है। अमर कांत ने "हत्यारा" में ऐसी एक अवस्था का चित्रण किया है। अधिकार प्राप्त करने पर उस अधिकार के दुरुपयोग से देश की स्थिति अराजकीय बन जाती है। "हत्यारे" के युवकों की बातचीत से स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद के भारत की स्थिति व्यक्त होती है— "मैं ने सोचा था कि प्राइम मिनिस्टर होने पर मैं तुमको भ्रष्टाचार-निवारण समिति और जाति भेद-उन्मूलन-समिति का अध्यक्ष बना दूँगा। लेकिन जब तुम इतनी पी नहीं सकते तो अवसर आने पर धूस कैसे लोगे, जालसाजी कैसे करोगे, झूठ कैसे बोलोगे?"

1. हरिशंकर परसाई-राजनीति का बँटवारा-सं.डॉ.भारतभूषण-हिंदी गद्य मंजूषा-1998-पृ.18

फिर देश की सेवा क्या करोगे, खाक?"¹ स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू का शासनकाल, दरअसल, आम जनता के स्वप्नों को साकार करने में असफल रहा। यह तो केवल नेहरूजी का दोष नहीं था, बल्कि उँचे स्तर के अफसरों से लेकर निम्न स्तर के कर्मचारियों की स्वार्थता तथा बेईमानी का फल था। गोरे रंगवाले युवक का कथन इसकी पुष्टि देता है— "आज देश भारी संकट से गुज़र रहा है। सभी नेता और मंत्री बेईमान और संकीर्ण विचारों के हैं। जो ईमानदार हैं, उनके पास अपना दिमाग नहीं है। मेरी लीडरशिप भी कमज़ोर है। मेरे अफसर मुझको धोखा देते हैं। जनता की भलाई के लिए मैंने पाँचसाला योजनाएँ शुरू कीं, लेकिन ब्लाकों के सरकारी कर्मचारी अपने घरों को भरने में लगे हैं। मैं जानता हूँ कि सारे देश में कुछ लोग लूट-खसोट मचाए हुए हैं, लेकिन मैं उनके खिलाफ कोई कारवाई नहीं कर सकता।"² स्वतंत्र भारत को उन्नति की ओर ले जाने का महान स्वप्न नेहरूजी के मन में था; मगर अन्य सरकारी कर्मचारियों का स्वप्न अपने ही स्वार्थों को भरना था। फलतः सरकारी योजनाएँ पराजित हुईं।

युवा पीढ़ी एक देश का भविष्य है। जब वे ही पथभ्रष्ट हो जाए तो देश की अवनति होगी। अतः उनकी शिक्षा, व्यक्तित्व विकास तथा रोज़गारी का सुचारू रूप से गढ़न एक सुस्थिर देश के लिए ज़रूरी अपेक्षाएँ हैं। जब इन तथ्यों में बिखराव आते हैं तो नैतिक मूल्यों की च्युति समाज में फैल जाती है।

1. अमरकांत-हत्यारे-प्रतिनिधि कहानियाँ-1984-पृ.110

2. वही-पृ.106

पथभ्रष्ट युवा पीढ़ी देश की प्रगति को रोक देती है। स्वतंत्रता प्राप्ति तक उनके सम्मुख आदर्श चरित्रवाले नेता गण थे। पर उसके तुरंत बाद ऐसा परिवेश उभर आया कि ये एकदम अप्रत्यक्ष हुए। फिर न मालूम कैसा माहौल आया कि अधिकार स्थानों में उपविष्ट सभी नेता देश के लिए नहीं, अपनी ही स्वार्थ-पूर्ति-हेतु कार्य करने लगे। इसके लिए दूसरे को मार डालने में भी वे हिचक नहीं हुए। इन दोनों युवकों की हालत भी ऐसी ही हुई। वास्तव में उन्हें हत्यारा बनाने का कारण भी अधिकारी वर्ग है।

जनतांत्रिक शासन व्यवस्था जब से भारत में संचालित होने लगी तब से सत्ता हासिल करना हरेक राजनीतिक दल का प्रमुख लक्ष्य बन गया। राजनीतिक दलों की फूट का आधार ही सत्ता मोह है। आज हालत ऐसी हो गयी है कि चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिलता है। तो मंत्री मंडल ऐसा बनाया जाता है कि उसमें हरेक दल का प्रतिनिधि हो। राजनीतिक दलों की इस बहुलता ने देश में विकट संकट की स्थिति पैदा की है कि किसी भी कीमत पर मंत्री मंडल को गिरने से बचाये रखे। इसके लिए हरेक दल को तृप्त करना है। फलस्वरूप देश में शासन कम घटक दलों की तृप्ति का कार्य अधिक चलता है। सत्ता के लिए इस रस्साकशी में ऐसे ही लोग विजयी निकलते हैं जो "साम-दाम-दंड-भेद" का उपयोग करना जानता है और जिसका पूरी कार्य समिति पर दबाव है जैसाकि "प्रत्याशा" का नारायण जू है। गिरिराज किशोर "प्रत्याशा" नामक अपनी इस कहानी में ऐसे एक शरीफ राजनीतिज्ञ-किशन बाबू- का चित्र खींचता है जो मंत्री बनने की आशा में,

चुनाव में टिकट की प्रतीक्षा करते करते दो बार छला जाता है। अधिकार प्राप्त करने की लालसा और उसके लिए किए जानेवाले संघर्ष इस कहानी का विषय है।

इस बार किशन बाबू को पूरा विश्वास हो गया कि पार्टी-प्रेसिडेंट तथा प्रधानमंत्री का सबल सहमति उसके पक्ष में है। पार्टी-प्रेसिडेंट ने यहाँ तक भी कहा कि तत्काल चुनाव-क्षेत्र में चले जाइए। इस पर किशन बाबू और उसकी पत्नी रमला बहन चुनाव की सारी तैयारियाँ करने लगे। किशन बाबू पूरे तनाव में था। मगर, अंत में उसकी सारी उम्मीदों में पानी फेरते हुए पार्टी मीटिंग ऐसा खतम हुआ कि उसको चुनाव टिकट नहीं घोषित किया गया है। निराश होकर उसकी पत्नी रमला बहन विरोधी पार्टी में सदस्य बनने की इरादा करती है। राजनीति का क्षेत्र इतना संकीर्ण तथा संकुचित बन गया कि कोई भी राजनीतिज्ञ शरीफ नहीं बन सकता। "शरीफ और राजनीतिज्ञ"¹ -मेल नहीं खाता आज के ज़माने में। किशन बाबू शरीफ तो है, मगर वह सत्तामोही है। आजकल किशन बाबू जैसा राजनीतिज्ञ भी है जिनकी ख्वाहिश मंत्री की ऊँची कुरसी है, परंतु उसके लिए गैर-तरीका नहीं अपनाता। साथ ही नारायण जी जैसे राजनीतिज्ञों की भरमार भी है जो साम-दाम-दंड-भेद का उपयोग करते हैं। लॉबी, गुटबंदी और खुशामद—ये तीन घटक राजनीतिक क्षेत्र में सफलता की कुंजी मानी जाती हैं। चुनाव के लिए टिकट मिलना भी इन घटकों के मेल मिलाव से होता है। किशन बाबू जैसे राजनीतिज्ञों की हार का आधार भी यही

1. गिरिराज किशोर-प्रत्याशा-आन्द्रे की प्रेमिका तथा अन्य कहानियाँ (क.सं)-1995-
-पृ.63

रहा है— "पर उन्होंने नारायण की तरह अपनी लाँबी तैयार नहीं की थी और न प्रधानमंत्री पर अपनी गुटबंदी और खुशामद से आतंक ही कायम किया था।"¹ उदीयमान लेखिका कल्पना शर्मा से हुई साक्षात्कार में एक बार मन्मथ भंडारी ने कहा कि वास्तव में यह राजनीति ऐसा एक खेल है जिसमें आप एक बार चले जाओ तो आप फिर अच्छे नहीं रह सकते। हो सकता है कि आप कभी अच्छे रहे हों लेकिन सामनेवाले को परास्त करने के लिए आपको भी वही चालें चलनी पड़ती हैं जो सामनेवाला चलता है और एक बार आप इस कीचड़ में सने तो फिर सनते ही चले जायेंगे।

अधिकार के मोह में पारिवारिक संबंध भी काम नहीं करता। जिसे जो सही निकलता है वह वही कर बैठता है चाहे वह पति हो, पत्नी, पुत्र या पुत्री। अधिकार का मोह मानवीय सरोकारों से भी बढ़कर है। इसीलिए ही रमला बहन अपने पति की इच्छा के विरुद्ध विरोधी दल में सदस्या बन जाने की इरादा करती है। इसके लिए वह वही तरीका अपनाती है जहाँ उसका पति कमज़ोर निकला। वह खुशामद का तरीका है और साथ ही उनके सामने वह पति की खुलकर उपेक्षा भी करती है—"आपके पति तो.....

हाँ, उससे क्या होता है। मुझे लगता है आपकी पार्टी ज़्यादा डेमोक्रेटिक है और झूठे वायदे नहीं करती।"²

-
1. गिरिराज किशोर-प्रत्याशा-आन्द्रे की प्रेमिका तथा अन्य कहानियाँ (क.सं)-1995-पृ.64
 2. वही-पृ.74

रमला के विपक्षी दल में सदस्यता बन जाने की इरादा के पीछे भी अधिकार मोह है। मानवीय संवेदनाओं का हास राजनीतिक भ्रष्टता का मूल आधार है। अधिकार प्रमत्त राजनीतिज्ञ मानवीय संवेदनाओं से वंचित रहे। किशन बाबू का यह प्रश्न इसी की ओर संकेत करता है—“क्या राजनीति के पास इन मानवीय सवालों का कोई जवाब हो सकता है?”¹

राजनीति की संरचना जिस महान आदर्श को लेकर हुई है उसे पा जाना आज मुश्किल हो गया है। उसका सही इस्तेमाल मनुष्यत्व की श्रेष्ठता का निदर्शन रहेगा नहीं तो अल्पसंख्यक अधिकारियों की संकीर्ण और तंग मानसिकता से उत्पन्न मलिनता को बहुसंख्यक बेचारी जनता को भोगना पड़ेगा जिससे उनकी ज़िंदगी का हर क्षेत्र व्यथाओं और बेबसियों से दूभर हो जाएगा। कहानीकार राजनीति का सही इस्तेमाल करने का आह्वान देते हैं—“राजनीति भी रोशनाई ही है जो फैलती जा रही है। उसके पास भाँड़ने के सिवाय और कुछ नहीं। जब तक इस रोशनाई का इस्तेमाल होता है तो यह खुशखत इबारत देती है और जब बिखरकर फैलती है, सब कुछ अपने में गर्क कर लेती है।”²

स्वतंत्र भारत में चुनाव का माहौल मोल-तौल का समय बन जाता है। चुनाव का टिकट मिलने के लिए राजनीतिज्ञों के बीच मुठभेड उच्च

-
1. गिरिराज किशोर-प्रत्याशा-आन्द्रे की प्रेमिका तथा अन्य कहानियाँ (क.सं.)-1995-पृ.75
 2. वही

आदर्शवाले राजनीति के पतन का चिह्न है। स्पष्ट है कहानीकार समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाने में सफल हुए हैं। अपने लेखन का उद्देश्य वे इस तरह व्यक्त करते हैं—“यही कि समाज और राजनीति की तकलीफ इंसान की पूरी ज़िंदगी में सबसे महत्वपूर्ण होती हैं। अगर लेखक के रूप में हम लोग उसे पहचान सकते हैं और उसको रेखांकित कर सकते हैं तो इंसान के रूप में यह हमारा सबसे बड़ा काम, सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी निभती है। अगर नहीं तो फिर लेखक का कोई बहुत बड़ा दायित्व नहीं रह जाता है, जिसे की वह निभता है।”¹

“जनतंत्र एक ऐसी राजनीतिक-भौतिक व्यवस्था और शासन प्रणाली है जिसमें इसके द्वारा परम उपेक्षित और परम शोषित लोगों के मन में भी इसमें अपनी तत्सम भागीदारी के विश्वास का भ्रम सर्वाधिक सफलता के साथ बनाये रखा जाता है।”² जनतंत्र की यह परिभाषा, लगता है, भारतीय परिवेश में कभी भी सार्थक नहीं हुई है। आधुनिक कहानियाँ इस सच्चाई का दस्तावेज़ है।

राजनीति और अमानवीयता

एक सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य की ज़िंदगी को कई व्यवस्थाओं से संयोजित किया गया है। एक सामाजिक प्राणी होने के साथ ही साथ मनुष्य में अहम् की भावना तीव्र रूप में पायी जाती है जिससे वह स्वार्थ

1..गिरिराज किशोर से प्रियंवद का साक्षात्कार-सारिका-सितंबर-81-पृ.10

2. प्रफुल्ल कोल्ह्यान-साहित्य, समाज और जनतंत्र-2003-पृ.27

बन जाता है। इस वजह से समाज में व्यक्ति और व्यक्ति के बीच संघर्ष पैदा होता है और सामाजिक संगठन उथल-पुथल हो जाता है। मनुष्य-स्वभाव के इस विलोम विशेषता के कारण कुछ स्वीकृत नियमों के ज़रिये उसके सामाजिक जीवन-व्यवस्था को नियंत्रित रखा है। ऐसे संगठित समाज को राजनीतिक समाज या पॉलिटिकल सोसाइटी कहते हैं। सामाजिक संबंधों को नियंत्रित रखनेवाले नियमों के निर्माण तथा उन्हें लागू करनेवाले व्यक्तियों के दल को सरकार कहते हैं। सरकार के रूपायन में राजनीतिक पार्टियों का सहयोग ज़रूरी है ताकि वे अवाम की ज़रूरतों की पूर्ति करे।

हर राजनीतिक पार्टी स्वभावतया शुद्ध तथा महत्वाकांक्षी होती है। उसका लक्ष्य जन-कल्याण होता है। मगर चुने गए नेता लोग जब अपने चरित्र के अहम् की भावना को काबू में नहीं रख पाते तो राजनीति अमानवीय हो जाती है। उन राजनीतिज्ञों के लिए अवाम और समाज अप्रमुख हो जाते हैं। उल्टे, अपने तथा अपने सगे-संबंधियों के स्वार्थ तथा हित प्रमुख रहते हैं।

मगर यह भी सच है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जन-कल्याण के लिए कई योजनाएँ नयी सरकार ने लागू की हैं। बहुत सी पद्धतियाँ कई कारणों से लागू नहीं की सकी, तो भी, आम तौर पर समाज का बाहरी विकास ज़रूर हुआ है। पर यह भी सच है कि जनता अन्दर ही अन्दर टूटती जा रही थी, क्योंकि वे अनुभव कर रही थीं कि नयी ढंग से रूपायित सरकार और चुने गए राजनीतिज्ञ उनकी तमन्नाओं की पूर्ति में असफल होते जा रहे हैं और हर सरकारी योजना भ्रष्टाचार में डूबी जा रही है। इस मोहभंग के कारण समाज

अन्तरंगतः टूटता जा रहा था। समाज का आन्तरिक विकास संभव नहीं हो पा रहा था।

राजनीतिक क्षेत्र की अमानवीयता के मूल में राजनीतिज्ञों में पारदर्शी विचारों की कमी और समर्पण भाव का अभाव भी देख सकते हैं। आधुनिक कहानीकारों ने अपने समय की इस सच्चाई को कहानियों द्वारा प्रस्तुत किया है। कमलेश्वर की कहानी "बयान", मोहन राकेश की "ठहरा हुआ चाकू", मन्नू भंडारी की "सज़ा", राजेंद्र यादव की "लंच-टैम", हरिशंकर परसाई की "भोलाराम का जीव" आदि कहानियाँ इसके दृष्टांत हैं।

कमलेश्वर अपनी कहानी "बयान" में राजनीतिक अन्यायों की पोल खोलने के साथ साथ न्यायतंत्र के खोखलेपन को भी व्यक्त करते हैं। संवेदनशील और ईमानदार लोगों की ज़िंदगी की आहुति राजनीतिक अन्यायों से होती है। कहानी का नायक संवेदनशील, ईमानदार तथा अपने ऊपर निर्भर काम उसकी संपूर्ण गरिमा के साथ करनेवाला है। उस सरकारी फोटोग्राफर की ज़िंदगी की बरबादी, सरकारी नौकरों में सबसे बड़ा ओहदेवाले मंत्रीजी के षड़यंत्र से होती है। यही अमानवीयता की विडंबना है।

"बयान" का फोटोग्राफर सरकारी पत्रिका में नौकरी करता है। पहले अपने काम में वह खुश था और कहता था कि आज़ादी का यही सुख है। मगर कई बरसों बाद उसका उत्साह कम होने लगा और कहने लगा कि उसकी सच्ची होती नहीं है। यहीं से पत्नी ने पाया कि उसकी आँखों से खून

उतरने लगा है। एक बार ऐसा हुआ कि एक मंत्री ने बयान दिया कि रेगिस्तान को रोकने के लिए मीलों जंगल रोप कर पूरब की तरफ उसका बढ़ना रोक दिया है। इस फोटोग्राफर ने इसका जो चित्र खींचा था, उसमें जंगल कहीं नहीं था। कारण यह हुआ कि पेड़ लगाये थे, पर सब सूख गये थे। लोकसभा में विरोधी दल के सदस्यों ने प्रस्तुत मंत्री का विरोध किया। उन्होंने उसे हटा देने का आर्डर दिया। घर की हालत बुरी हुई तो एक विज्ञापन कंपनी में काम करना शुरू किया, तभी एक बच्ची भी पैदा हुई। पत्नी को भी स्कूल में काम करना पड़ा। गर्मी की छुट्टियों में स्कूल की नौकरी से हटा दी गयी तो आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। इससे बचने के लिए उसने पत्नी के अर्धनग्न चित्र खींच लिये जिनको छापने से पत्नी को स्कूल से निकाल दी गयी। निराश होकर उसने आत्महत्या की।

सर्वसामान्य सरकारी नौकर की ईमानदारी और वफादारी शासन के बागडोर चलानेवाले मंत्री से सहा नहीं रहा है। मंत्री पद की प्रतिष्ठा तथा इस पद से मिलनेवाली सारी सुख-सुविधायें उसे स्वार्थ तथा धूर्त बना देता है। वह इस ऊँचे ओहदे का दुरुपयोग करता है। उस सरकारी फोटोग्राफर से खींचे हुए चित्रों की सच्चाई मंत्री के पद के लिए हानिकारक निकलती है। इस राजनीतिक नेता द्वारा किया गया अन्याय, उसे आत्महत्या करने को विवश करता है। सार्वजनिक क्षेत्र भ्रष्टाचार, अन्याय और घूस-खोरी का अड्डा बन गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने बरसों बाद भी सरकारी दफतरों के इस दूषित परिवेश में परिवर्तन नहीं आया।

भ्रष्ट राजनीति के कारण ही न्यायालयों में न्याय की अवहेलना होती है। नीति और न्याय के समन्वित आधार पर विधि का निर्णय करनेवाले न्यायालयों में कभी कभी नीति और न्याय, आर्थिक संपन्नता या वैयक्तिक प्रभाव के आधार पर किया जाता है। सर्वसाधारण और गरीब अपने को असहाय पाते हैं। मुक्तिबोध कहते हैं— "बुजुर्गों ने, सत्ताधिकारियों ने, समाज-संचालकों ने, आर्थिक शक्ति से संपन्न वर्गों ने, समाज के प्रत्येक स्तर पर प्रकट और अप्रकट, सूक्ष्म और स्थूल भ्रष्टाचार का विधान कर रखा है। इस भ्रष्टाचार के कई रूप हैं। कभी वह कानून के रूप में भी प्रकट होता है, कभी कानून की आड़ में गैर-कानूनी रूप में। कानून या नियम तो आर्थिक शक्ति से संपन्न प्रभावशाली लोगों की सुविधा के लिए है।"¹ कानून कभी भी व्यवस्था का बयान नहीं करता, वह व्यक्ति का बयान करता है। सत्ताधारियों और पूँजीपतियों की अमानवीयता से उत्पन्न भयावह व्यवस्था जब कोई संवेदनशील व्यक्ति को आत्महत्या के लिए प्रेरित करती है तो भी कानून आत्महत्या को पाप मानकर, आत्महत्या करनेवालों के बन्धुजनों का बयान करता है और उस पर आरोप लगाने की कोशिश करता है। क्योंकि कानून को व्यवस्था नहीं, व्यक्ति चाहिए— "फैसला.....कुछ तो होगा ही। और वह ""व्यक्ति" के खिलाफ ही हो सकता है। जी; व्यक्ति माने अकेला आदमी जैसे अकेली मैं.....या आप या आप.....।"²

1. गजानन माधव मुक्तिबोध—एक साहित्यिक की डायरी—1996—पृ.33

2. कमलेश्वर—बयान—मेरी प्रिय कहानियाँ—ती.सं.1997—पृ.72

न्यायतंत्र का खोखलापन और भी स्पष्ट रूप से तभी दिखाई पड़ता है जब वह वैयक्तिक और पारिवारिक संबंधों में अपराध का कारण खोजता है। कहानी के नायक की आत्महत्या का कारण पत्नी के विवाह-पूर्वकालीन संबंधों तथा पति के दोस्तों के साथ के रिश्तों पर ढूँढा जाता है। न्यायाधीश और वकीलों के बेहूदे प्रश्न पत्नी को मानसिक दबाव में डाल देते हैं। क्योंकि कानून की नज़रों में वह अपने पति की आत्महत्या का ज़िम्मेदार है। जब किसी भी प्रकार के प्रमाण नहीं मिल रहे हैं तो खींचातानी करके उसको कानून के दाँव-पेंच में डालने की कोशिश हो रही है। पति की आत्महत्या के असली कारणों की खोज करने के बजाय, उस निरपराध स्त्री पर आरोप लगाया जाता है। उसके कुछ वक्तव्य देखिए—“लेकिन मैं फिर आपसे कहती हूँ—इन वजहों पर मत जाइए। ये वजहें कतई नहीं है। किस्से-कहानियों की बातें और होती हैं। यह मेरी ज़िंदगी की हकीकतें हैं। इस तरह मखौल मत उडाइए। मेरे अच्छे दिनों को गंदा मत कीजिए।”¹ अपने ऊपर आरोपित जुल्मों का निषेध वह इस तरह करती है—“मैं जानती हूँ, आखिर में यही इल्ज़ाम घूमकर मुझ पर आएगा। मेरी भरी-पूरी ज़िंदगी की बखिया उधेड़ेगा। मैं खूब जानती हूँ, आप लोग मुझे कहाँ ढकेल रहे हैं। क्या कानून का काम सिर्फ सबूत इकट्ठे करके किसी को ज़लील कर देना है? मैं अपने पति की मौत की ज़िम्मेदार कैसे हो सकती हूँ?”² कभी कभी अदालतों में पूछे जानेवाले बेहूदे सवाल अपराध के

1. कमलेश्वर-बयान-मेरी प्रिय कहानियाँ-ती.सं.1997-पृ.66

2. वही-पृ.67

मूल कारणों की खोज में सहायक नहीं निकलते, उल्टे निरपराध व्यक्तियों को मानसिक दबाव में डाल देते हैं। यहाँ पत्नी के उत्तर से हम इससे परिचित होते हैं—“यह सरासर गलत है.....आप लोग गलत और बेकार सवालों से सही नतीजे तक कैसे पहुँचेंगे। इन सब फिज़ूल की बातों से आप उनकी मौत की वजहें नहीं ढूँढ़ सकते। शादी से पहले का, बादल के टुकड़े की तरह तैरकर गुज़रा हुआ इश्क.....उस प्रेम की काली परछाइयाँ.....पति-पत्नी की कलह, छोटे-मोटे झगड़े, घरवालों से तनाव या पडोसियों से मन-मुटाव—ये सब बड़ी मामूली बातें हैं। आप अभी तक इन्हीं के सहारे सच्चाइयों तक पहुँचने में लगे हैं। इनसे कुछ भी हासिल नहीं होगा।”¹

राजनीति के षडयंत्र से कुचले मानव-मन की पीड़ाओं को कहानीकार ने प्रस्तुत किया है। “कमलेश्वर की कहानी” “बयान” राजनीतिक भ्रष्टाचार में निहित विध्वंसक प्रवृत्ति को सूचित करनेवाली रचना है। सच के यथार्थ को प्रक्षेपित करने का नतीजा राजनीतिक हत्याओं की पुरानी परम्परा से जुड़ जाता है। “बयान” एक साथ राजनीति की विध्वंसक प्रवृत्तियों की तथा आम आदमी की अकिंचनता की कहानी है।² राजनीति के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कमलेश्वर जी कहते हैं—“मैं “मनुष्य के लिए राजनीति” में विश्वास करता हूँ, “राजनीति के लिए मनुष्य” में नहीं। यो दोनों स्थितियाँ उतनी

1. कमलेश्वर-बयान-मेरी प्रिय कहानियाँ-ती.सं.1997-पृ.62

2. डॉ.ए.अरविंदाक्षन-आधारशिला-नई:कहानी कुछ विचारणीय प्रसंग(लेख)-2001-
-पृ.80

विरोधी नहीं है जितनी कि आज के समय-संदर्भ में बन गयी है।.....और जो स्थिति आज है, वही यथार्थ है—आदर्शों के सीमान्त पर तो अन्ततः सब ठीक साबित हो सकता है। पर आदर्शों तक पहुँचने की राह में मनुष्य को कितना छला गया है, और कितना छला जाता है, इसे नज़रान्दाज़ कैसे किया जा सकता है? यातनाओं के जंगल से गुज़रते मनुष्य की इस महायात्रा का जो सहयात्री है, वही आज का लेखक है। सह और समांतर जीनेवाला, सामान्य आदमी के साथ।"¹

भ्रष्ट राजनीति सामाजिक व्यवस्था को कितना उलट-फेर कर देती है, इसका स्पष्ट बयान देती है मोहन राकेश की कहानी "एक ठहरा हुआ चाकू"। समाज में मनुष्य का अस्तित्व सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर रहता है जिसमें राजनीति है, शासन व्यवस्था है, कानून है तथा युगों से चलते आनेवाले आचार-विचार हैं। ये सब तो समाज में मनुष्य की भलाई और जाति-धर्म और लिंग के परे मनुष्य के समान अधिकारों की प्राप्ति के लिए किये गये हैं। लेकिन मनुष्य की स्वार्थता तथा पैशाचिक मनोवृत्ति इस सुन्दर व्यवस्था को विघटित कर देती हैं। राजनीति के क्षेत्र में भाई-भतीजावाद इतना प्रबल है कि कोई भी राजनीतिक दल इससे मुक्त नहीं है। भ्रष्टाचार के मूल में शायद यही स्वार्थ-वृत्ति ही प्रमुख रही है।

एक दिन अपनी प्रेमिका मिन्नी से मिलने गया बाशी का एक सरदार से टकराहट हुई। वह जिस किराये स्कूटर में यात्रा कर रहा था, बर्फ खरीदने

1. कमलेश्वर-बयान-मेरी प्रिय कहानियाँ-ती.सं.1997-भूमिका

जब वह उससे उतरा तो एक सरदार उसमें आकर बैठ चुका था। दोनों के बीच गरम बातें हुईं और सरदार ने उसके मूँह पर एक झापड़ मारा, और साथ ही उसे धमकियाँ देते हुए एक चाकू खोल दिया। बात जानकर उसका मित्र महेंद्र ने पुलिस में रिपोर्ट दी। मगर पुलिसवाले डरते थे, क्योंकि वह उस इलाके का जाना माना गुण्डा है। जहाँ यह घटना हुई, वहाँ के लोग इसके विरुद्ध कुछ कहने या गवाही देने के लिए तैयार नहीं थे, क्योंकि सब में इसका आतंक था। पुलिसस्थाने में शनाख्त के लिए बाशी को बुलाया गया और थानेदार और सब इन्स्पेक्टर उसे आश्वस्त करते रहे कि उसे डरने की कोई बात नहीं, शनाख्त के अवसर पर नत्थासिंह को पता नहीं चलेगा कि वह यहाँ है। पर जब उसे लाया गया, पुलिसवाले उसे बाशी के ठीक सामने खड़ा कर दिया गया और दोनों एक दूसरे को भी पहचान गये।

प्रस्तुत कहानी में गुण्डागर्दी से आतंकित पुलिस विभाग के कर्मचारियों का चित्रण है। गुण्डे-मुस्टौड़े समाज का शाप है। सामाजिक व्यवस्था का सर्वनाश इन लोगों के कारण होता है। ये अपनी मुस्तैदी और ताकत के बल पर दूसरों पर अपना दबाव रखते हैं और बिना किसी डर या श्रम से आराम की ज़िंदगी बिताते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि समाज के कुछ वर्ग जिसे सत्ता का बल है या जिसके समर्थन न होने पर सत्तावाले सत्ताहीन हो जाते हैं और कभी कभी नियम-पालक भी, इनकी निडरता तथा मुस्तैदी का उपयोग अपने ही स्वार्थ की पूर्ति के लिए करता है। समाज में इनके विकास का मुख्य हेतु ऐसे लोगों की प्रेरणा शक्ति रही है। आदर्शनिष्ठ पुलिस के कर्मचारी भी इनसे दूर

रहते हैं क्योंकि इन नियम-पालकों को राजनीतिक नेताओं के हुक्म के आगे कानून से विचलित होना पड़ता है। आम जनता इनसे डरते हैं क्योंकि इनका प्रभाव ऊँचे ओहदेवालों तक है। अतः इनके खिलाफ गवाही देने से वे इनकार करती हैं।

कहानी में नत्थासिंह और उसके आदमियों से लोग इसलिए डरते हैं कि उसके पास सब कुछ हैं—अधिकार और बल। बाशी और महेंद्र को मेडिकल स्टोर का इंचार्ज ऐसा उपदेश देता है— "अब बेहतरी इसीमें है कि आप इस चीज़ को चपुचाप पी जाएँ और बात को ज़्यादा बिखरने न दें। यहाँ आप को एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलेगा जो उसके खिलाफ गवाही देने को तैयार हो। अगर आप पुलिस में रिपोर्ट करें और पुलिस यहाँ तहकीकात के लिए आए तो सब लोग साफ मुकुर जाएँगे कि यहाँ पर ऐसा कुछ हुआ नहीं।"¹ यही समाज की वास्तविक स्थिति है, यही बेसहारा वर्ग की मानसिक अवस्था है।

दूषित राजनीतिक परिवेश ही समाज में गुंडागर्दी को बढने देता है। राजनीतिक नेता तथा ऊँचे पद के पुलिस अफसर इनसे बुरा लाभ उठाते हैं और बदले में, धन और ऐशे-आराम की सुविधायें इन्हें दी जाती हैं और कानून की सभी उलझनों से मुक्त किया जाता है। अदालतों में इनके विरुद्ध या तो कोई गवाही देने नहीं आता और आ गया तो झूठी गवाही ही देगा। जब बाशी

1. मोहन राकेश-एक ठहरा हुआ चाकू-पहचान (क.सं.) - द्वि.सं.1974-पृ.17

और महेंद्र नत्थासिंह के विरुद्ध रिपोर्ट करने थानेदार और डी.एस.पी. के पास जाते हैं तो उनसे ऐसी डरावनी बातें ही मिलती हैं जैसे— "आप जैसे आदमी को तो ये एक दिन में साफ कर देंगे—आपको इनसे बचकर रहना चाहिए।"¹ राजनीतिक भ्रष्टता में गुंडाओं का इतना बड़ा हाथ है कि नत्थासिंह इसका प्रतिनिधि है— "उस दौरान कई बातों का पता चला कि उस आदमी का मुख्य धन्धा लड़कियों की दलाली करना है—कि ऊँचे सरकारी और राजनीतिक दल के अमुक अमुक व्यक्तियों को वह लड़कियाँ सप्लाई करता है—कि उसकी कितनी भी रिपोर्टें की जाएँ, कभी उसके खिलाफ कारवाई नहीं की जाती—कि नीचे से कारवाई कर भी दी जाए, तो ऊपर से अमुक-अमुक का फोन आ जाता है जिससे कारवाई वापस ले ली जाती है।"²

प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था से लोगों की उम्मीद थी ऐसा एक देश जिसमें अधिकार और कानून सब को एक समान प्राप्त हो। संविधान के अनुच्छेद 39(क) में यह व्यवस्था की गयी है कि समाज में सभी को न्याय सुलभ हों तथा कोई भी व्यक्ति आर्थिक या अन्य निर्योग्यता के कारण न्याय प्राप्त करने से वंचित न रह जाए। पर भारतीय परिवेश में यह न हो पाता है। शासक वर्ग, पूँजीपति, बड़े बड़े नेता लोग और ऊँचे ओहदे का अफसर आज़ादी का सुख केवल अपने लिए या अपने परिवार के लिए या भाई-भतीजों के लिए ही कर रहे हैं। "स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् राजनीति धीरे-धीरे

1. मोहन राकेश-एक ठहरा हुआ चाकू-पहचान (क.सं.) - द्वि.सं.1974-पृ.18

2. वही

राष्ट्रीय सामाजिक जीवन के लिए त्याग से छूटकर व्यक्तिगत योगक्षेम और स्वार्थपरता के पंक में लिप्त होने लगी।¹

जहाँ ऐसे लोगों के लिए कानून रास्ता निकालता है वहाँ निरपराधों एवं असहायों के ऊपर बेसफाई जुल्म रख देता है। नत्थासिंह पर कारवाई न करनेवाले पुलिस, पिटाई करके दूसरे पर जुल्म की ज़िम्मेदारी डाल देने की कोशिश करती है— "साथ के कमरे में ठुकाई करते हुए पूछा जा रहा था, तू नहीं था, तो कौन था कुत्ते के बीज? सीधे से बता दे—क्यों अपनी पसलियाँ तुडवाता है?"² गुंडा तथा पुलिस अफसरों में एक तरह का समझौता रहता है। फिर सामान्य जन की आँखों में धूल उड़ाने के लिए सबके सामने उनको कैदी बनाते हैं और जेल भेज देते हैं। कभी कभी यह भी होता है कि शनाख्त के लिए इन मुजरिमों को प्रार्थी के आगे ले आते हैं। वास्तव में यह पहले अव्वल का ढोंग है। पुलिसवाले दोनों का -गुण्डा तथा प्रार्थी-का एक ही समय पर पक्ष लेते हैं। इस नाटक से पुलिस अपने को सुरक्षित तथा न्याययुक्त स्थापित कर सकती है। थानेदार और सब इन्स्पेक्टर बाशी से बार बार बताते रहे कि शनाख्त के अवसर पर नत्थासिंह को पता नहीं चलेगा कि वह यहाँ है। पर घटित यह हुई कि दोनों आमने-सामने आ गये और एक दूसरे को पहचान गये। फिर नाटक का अगला दृश्य यह हो जाता है कि थानेदार सब इन्स्पेक्टर पर और सब इन्स्पेक्टर सिपाहियों पर आरोप करने लगे।

-
1. रामदरश मिश्र-हिंदी कहानी-अंतरंग पहचान-नयी कहानी:यथार्थ के विविध आयाम (लेख) - 1977-पृ.85
 2. मोहन राकेश-एक ठहरा हुआ चाकू-पहचान(क.सं.)-द्वि.सं.1974-पृ.23

राजनीति की अमानवीयता से ग्रस्त अदालत के कलंकित वातावरण का चित्र पेश करती है मन्नू भंडारी अपनी कहानी "सज़ा" में। नरेंद्र मोहन सत्यहीन राजनीति को एक विकृति मानते हैं— "आज की राजनीति की कठिनाई यह है कि वह व्यक्ति को स्वार्थी और संकीर्ण बना देती है—और जहाँ स्वार्थ और संकीर्णता हो वहाँ सत्य उपलब्ध नहीं होता, वहाँ समस्या का समाधान भी नहीं मिलता, बल्कि समाधान के स्थान पर एक विकृति आ जाती है।"¹ "सज़ा" कहानी का आधार यही विकृति है।

कहानी के पापा को झूठी चोरी में फँसाकर नौकरी से मुअत्तल कर दिया गया है। निर्दोष होने पर भी अदालत ने उसे निरपराध घोषित करने में बड़ी देरी लगा दी। इस देरी का कारण कानूनी पेचीदगी है। इससे एक निर्दोष व्यक्ति की ज़िंदगी ही नहीं बल्कि उसका पूरा परिवार ही बरबाद हो जाता है। अपनी रफ्तार से चलनेवाला कानून एक केस की पूर्ति में लंबी अवधि लेता है जो सामान्य ज़िंदगी बरदाश्त नहीं कर सकती, विशेषकर वह जो दूसरों के छल-कपट में फँस जाता है।

अक्सर ऐसा होता है कि छोटे छोटे अपराधी पुलिस द्वारा पकड़े जाते हैं और बड़े बड़े गुनाहकार अपने को साफ बचाकर ले जाते हैं। यह भ्रष्ट राजनीति का अदालत पर होनेवाले प्रभाव को सूचित करता है। कभी कभी जजों और वकीलों को राजनैतिक नेताओं की आज्ञा का पालन करना पड़ता है।

1. नरेंद्र मोहन—आज की राजनीति और भ्रष्टाचार— 1997—पृ.239

इससे आम जनता न्याय और नीति से वंचित रह जाती हैं। सामान्य जन की इस विवशता का कारण भ्रष्ट राजनीति के चंगुल में पड़े कानून हैं। ऐसी कानूनी कार्य पद्धति मानवीय संवेदनार्यें खत्म कर देती है, उसे निस्तेज और विकारहीन बना देती है जैसे कहानी के पापा बन गये हैं—"उनका भावहीन चेहरा गढ़े में धँसी हुई निस्तेज, निर्जीव आँखों में खुशी की चमक क्यों नहीं आ रही? वह ऐसी पथराई आँखों में बाबा को देख रहे हैं, मानो उन्हें बाबा की बात ही समझ में नहीं आ रही हो।"¹ बाहरी तौर पर समाज जितना भी विकसित हो, उनका अंतर्संघर्ष उन्हें बरबाद करता ही रहता है। पारदर्शी विचारवाले राजनीतिज्ञों की कमी और अपने देश और देशवासियों के प्रति समर्पण भाव का अभाव राजनीतिज्ञों को भ्रष्ट तथा अत्याचारी बना देते हैं।

इस तरह स्वातंत्र्योत्तर भारत के जन-सेवक जन-घातक बन जाते हैं तो आम जनता पुलिस थाना और न्यायालय से विमुख हो जाते हैं। कारण तो स्पष्ट है कि जिनके पास धन है और जिन्हें राजनीतिज्ञों से गहरा संबंध है, अपराधी होते हुए भी वे हर तरह के कानूनी-व्यवस्थाओं तथा दंडों से बच निकलते हैं। मोहन राकेश और मन्नू भंडारी ने इस यथार्थ की ओर संकेत किया है।

राजेन्द्र यादव ने भी इस सामाजिक यथार्थ को अपनी कहानियों में समाविष्ट किया है। उनकी "लंच-टैम" नामक कहानी वकीलों की धन लोलुपता पर व्यंग्य कसती है। असहायों और गरीबों को अदालत में वकालत

1. मन्नू भंडारी-सज़ा-मेरी प्रिय कहानियाँ-ती.सं.1977-पृ.116

देने इतने सारे पैसे खर्च करने पडते हैं कि घर की सारी संपत्ति ही खतम हो जाती है। वकील लोगों के इस अमानवीय चरित्र का स्रोत, दरअसल, राजनैतिक भ्रष्टाचारिता ही है। निर्धन देवीसहाय की मुकदमा चलाने के लिए बार बार पैसे की माँग करनेवाले वकील साहब तथा उसके सहायक इस भ्रष्टाचारिता के नमूने हैं। मुकदमा चलाये बिना ही वे लोग देवी सहाय से रुपये वसूल करते हैं और उसे बेवकूफ बना देते हैं। मात्र रुपये ही नहीं, बीमार बहू के लिए खरीदे फलों को भी बाँट कर खा लेते हैं—“मुंशी जी ने थैला हाथ में लेकर उन्हें समझाया—“जब तक बाबू लोगों को खुश नहीं रखोगो, कैसे ये लोग वकील साहब से आपके काम की सिफारिश करेंगे।”¹

बार बार उसकी गरीबी और असहायता पर खिल्ली उड़ानेवाले ये लोग समाज के टूटे आंतरिक पक्ष के प्रतिनिधि हैं। समाज की प्रगति में गतिरोध बननेवाले ऐसे घटक भ्रष्ट राजनैतिक क्षेत्र का पार्श्वफल है। आजकल न्यायालय भी राजनीतिज्ञों का कठपुतला बन गया है। न्यायतांत्रिक व्यवस्था में अराजकता आ गयी है। न्यायालय जो सामान्य जन का अंतिम आशा-केंद्र है, उनके लिए अप्राप्य बन गया। न्यायाधीश और वकील न्याय-अन्याय की विवेचना धन और वैयक्तिक प्रभाव के आधार पर करते हैं। “1989 में भारत के तत्कालीन सर्वोच्च न्यायाधीश श्री. ई. एस. वेंकटरमैया ने स्टेटसमैन समाचार पत्र को दिये गये एक साक्षात्कार में कहा था कि हर उच्च न्यायालय में अनेक ऐसे जज हैं, जिन्हें शराब पीने की लत है, और वे वकीलों के घरों

1. राजेंद्र यादव-लंच-टैम-मेरी प्रिय कहानियाँ-ती.सं.-1976-पृ.61

में बैठकर शराब पीते हैं। उन्होंने यह भी कहा था कि देश के उच्च न्यायालयों में कम-से-कम नब्बे तो ऐसे न्यायाधीश हैं ही, शराब जिनकी कमज़ोरी है तथा अनेक ऐसे जज भी हैं जो राजनीतिज्ञों के साथ सीधे संबंध रखते हैं और ऐसे भी जज हैं जो अपने पद का लाभ अपने रिश्तेदार अधिवक्ताओं को पहुँचाते हैं।¹

सरकारी दफ्तरों की भ्रष्टाचारिता में भी राजनीति है। अपना काम चलाने के लिए सरकारी दफ्तरों के कर्मचारियों को रिश्त देना भी राजनीति है। हरिशंकर परसाई ने "भोलाराम का जीव" में राजनीति के इस विशेष पक्ष पर विचार किया है। भोलाराम नामक प्राइमरी स्कूल अध्यापक के पेंशन की फाइलें इसलिए रोक दिया जाता है कि उसने उस पर वज़न नहीं रखा था, मतलब, सरकारी दफ्तर के अमुक अमुक को रिश्त नहीं दिया था। रिश्त के बिना पेंशन को पास न कराने में राजनीति है। इस राजनीति का आधार सरकारी कर्मचारियों में समर्पण भाव का अभाव है। पेंशन की बात ही नहीं, हमारे इर्द-गिर्द घटित होनेवाले कुछ विशेष संदर्भों का जिक्र भी कहानी में मिलता है। चित्रगुप्त कहते हैं— "महाराज आजकल पृथ्वी पर इसप्रकार का व्यापार बहुत चलता है। लोग दोस्तों को फल भेज देते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवेवाले उड़ा लेते हैं। हौज़री के पार्सलों के मोज़े रेलवे के अफसर पहनते हैं। मालगाडी के डिब्बे-के-डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनीतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बंद कर देते हैं।

1. नरेंद्र मोहन-आज की राजनीति और भ्रष्टाचार-1997-पृ.138

कहीं भोलाराम के जीव को भी किसी विरोधी ने, मरने के बाद भी खराबी करने के लिए नहीं उड़ा दिया!"¹ इसी तरह ठेकेदारों, इंजिनियरों और ओवरसियरों के बुरे कारनामों का उल्लेख है—"बड़े बड़े इंजिनियर भी आ गये हैं जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओवरसियर हैं जिन्होंने उन मज़दूरों की हाज़िरी भरकर पैसा हड़पा जो कभी काम पर गये ही नहीं।"² ये चित्र विसंगत परिवेश में जन-जीवन की दूभर स्थिति को प्रकट करते हैं।

स्वतंत्रता के बाद सामान्य जनता और उनकी माँगों शासन कर्ताओं और राजनीतिज्ञों के लिए अवांछित नहीं रह गयीं। उपेक्षित या हाशिये पर रखे गये आम जनता को कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में प्रमुख स्थान दिया। राजनीति और उसकी अमानवीयता का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने पर हम इस नतीजे पर आ जाते हैं।

कहानी में संकेतित राजनीतिक प्रसंगों का समाजशास्त्र

राजनीति जीवन के प्रसंग से अलग नहीं है। वह ज़िंदगी के हर क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। राजनीति की संकल्पना सामाजिक संगठन के रूप में हुआ है। सामाजिक सदस्य होने के नाते हर व्यक्ति राजनीति में जाने-अनजाने हिस्सेदार हो जाता है। राजनीति आधुनिक समाज की देन है। आधुनिक

1. हरिशंकर परसाई-भोलाराम का जीव-सदाचार का तावीज़ (क.सं.)-1967-पृ.56
2. वही-पृ.56-57

समाज के मनुष्य राजनीति को अपने समाज की नियामक शक्ति के रूप में देखते हैं। समाज राजनीतिज्ञों को सामाजिक व्यवस्थाओं के अधिकारी मानता है।

कहानी में राजनीतिक प्रसंग राजनीति के व्यावहारिक रूप को प्रत्यक्षतः या परोक्षतः दर्शाते हैं। उसके समाजशास्त्र पर विचार करते समय यह तथ्य सामने आता है कि राजनीति अपनी अवधारणागत स्थिति से कोसों दूर चली गयी है। वह व्यावहारिकता के चंगुल में फँस गयी है। कहानी जब एक राजनीतिक प्रसंग को उठाती है तो ये तमाम प्रसंग उसमें गुंफित होते हैं। अतः तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का ब्यौरा देना उसका उद्देश्य नहीं है बल्कि मानवीय स्थिति को उसके संकटजन्य परिदृश्य में प्रस्तुत करना भी है।



अध्याय—पाँच

आधुनिक हिंदी कहानी के ग्रामीण यथार्थ का समाजशास्त्र

ग्रामीण कहानी बनाम आंचलिक कहानी

ग्रामीण जीवन को लेकर हिंदी में पहले-पहल प्रेमचंद ने ही कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। लेकिन उनकी कहानियों के लिए ग्रामीण विशेषण जोड़ा नहीं गया। कारण स्पष्ट भी था। प्रेमचंद की कहानियों का सरोकार बृहत्तर सामाजिक संदर्भ से था। इतने पर भी यह कहना अनुचित न होगा कि ग्रामीण कहानी की अवधारणा को पुष्ट करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में रेणु के "मैला आंचल" उपन्यास के प्रकाशन के साथ आंचलिक शब्द का अति प्रचलन सा हो गया। ग्रामीण तथा आंचलिक शब्द को लेकर बहसों भी चलीं। इतने पर भी इन दो शब्द प्रयोगों के बीच विभाजन रेखा खींचना कठिन है। रेणु की रचनाएँ भी अंततः ग्रामीण ही हैं। अतः इस अध्ययन में ग्रामीण शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

ग्रामीण कहानियों का यथार्थ

ग्रामकथाओं का अवतरण कहानी के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक घटना है जिसका प्रत्यक्षीकरण प्रेमचंद का प्रदेय है। मगर उसे एक प्रदेश-विशेष के सामाजिक स्पन्दन के रूप में साकार करने में स्वतंत्रता के उपरांत के कहानीकार ही सफल हुए। उन्होंने इसे साहित्य की मुख्यधारा में प्रवेश

कराया। इस ऐतिहासिक घटना में उन्हें सहयोग दिया ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के प्रचार और प्रसार ने। मार्कण्डेय ने इसका खूब विश्लेषण किया है— "ग्राम-कथानकों का आगमन सिर्फ कहानी के नये उत्कर्ष का सूचक मात्र नहीं है, बल्कि उस एक बहुत बड़े वर्ग की सामाजिक जागरूकता का नवीन उत्कर्ष है, जो अब तक कला-साहित्य के प्रचलित प्रतिमानों से दूर गाँवों में था और जिसका पठन-पाठन सहज रूप से किसी सरकारी छोटी-मोटी नौकरी के लिये हुआ करता था। स्वतंत्रता और जनतंत्र की इस नयी ऐतिहासिक देन की ओर लोगों का ध्यान कम ही गया है। भारत-जैसे देश में इस वर्ग का भविष्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ उत्तरोत्तर उज्वल होगा, इसमें अगर किसी को भ्रम अथवा संशय हो तो वह निश्चय ही एक अदूरदर्शिता सिद्ध होगी। गाँवों से आनेवाले खेतिहर किसानों के बौद्धिक तथा कलात्मक उन्मेष ने युद्धोत्तर काल के संकुचित एवं घुटनशील वातावरण की ताज़गी और विस्तार ही नहीं दिया वरन् नयी सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्थाओं के कारण वह स्वतः महत्वपूर्ण हो उठा, इतना महत्वपूर्ण कि प्रेमचंद-जैसे लेखक के ग्राम-कथानकों की महान प्रसिद्धि, प्रचार और प्रसार के होते हुए भी नयी ग्राम-कथा ने अपनी जगह बना ली।"¹

स्वतंत्रता के बाद के ग्रामीण समाज में कई प्रकार के परिवर्तन हुए। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से उसे परखना और विश्लेषित करना आवश्यक है। भारतीय जीवन का प्रामाणिक रूप तत्कालीन ग्रामीण कहानियों के माध्यम

1. मार्कण्डेय-मार्कण्डेय की कहानियाँ-2002-पृ.241

से उभर कर सामने आया। इस अर्थ में आधुनिक कहानी बदले ग्रामीण जीवन का दस्तावेज़ है।

स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण यथार्थ का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

आज़ादी के आसपास के दशकों में हुए आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति से नगरों के चेहरे बदलने लगे। बदला नगर सबका ध्यान अपनी ओर खींचने लगा। आज़ादी मिलते ही वह सबका आकर्षण केंद्र बन गया। अपनी ही शासन-विधि में, तकनीकी और यांत्रिकीकरण की नींव पर नागरिक सभ्यता बढ़ने लगी। शिक्षा और नौकरी की सुविधायें विकसित होने लगीं। आडंबर और ऐशे-आराम के साधन सुलभ होने लगे। नगरवासियों की जीवन-शैली में पाश्चात्य संस्कार का असर पड़ने लगा तो वह एकदम नयी, प्रभावी, और मोहक होने लगी।

जिस अनुपात में शहरी-जीवन आज़ादी से प्रभावित रहा उसी अनुपात में न सही ग्रामीण-जीवन-परिस्थितियाँ भी प्रभावित रहीं। स्वतंत्रता के बाद के ग्राम्य जीवन की पूर्ण जानकारी के लिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवेश को समझना संगत लगता है। इस बदले परिवेश को ग्रामीण कहानीकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दृष्टांत प्रस्तुत किये हैं।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य

ग्राम-जीवन के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मूलभूत परिवर्तन आने में कई कठिनाईयाँ थीं। सामंती ढाँचा पूरी तरह से सुरक्षित था। कृषि संस्कृति में कोई परिवर्तन नहीं आया था। जातिवाद ग्रामीण समाज में प्रबल और प्रकट था और निम्न जाति के लोगों को उच्च जातियों से हमेशा अत्याचार सहना पड़ा। धन और बल के सहारे ये लोग निचली जाति का शोषण करते रहे। अज्ञान और अशिक्षा के कारण वे हमेशा दमित रहे। निम्न जाति के लोगों में ऐसी एक मनोग्रन्थी भी उत्पन्न हुई थी कि उनका जन्म भी इन लोगों की सेवा-शुश्रूषा और उनके जूठे खाने के लिए हुआ है। नहीं तो ऐसी एक धारणा उनके अवचेतन मन में घुसा दिया गया था। समाज में बड़ी जाति का इतना दबदबा था कि छोटी जाति निरपराध होकर भी, उन पर अपराधों का आरोपण बेदर्द किया गया था। कारण-अकारण उसको सज़ा सहनी पड़ती थी। गाँव में ज़मींदार लोगों की ताकत इतनी मज़बूत थी कि असहाय और निरीह लोग हमेशा इनके अत्याचार के शिकार बने रहे। विशेषकर स्त्री वर्ग, इनसे कभी भी बच नहीं पाया था। चाहे खेत-खलिहान में हो, या घरों के काम-काज में, वे सुरक्षित नहीं थीं। उनकी इज़्जत लूटी जाती तो भी ताकतवरों के खिलाफ पूछनेवाला कोई नहीं था।

भर आर्थिक विपन्नता के बोझ को सहने के लिए ग्रामीण समाज बाध्य ही था। उस स्थिति से बचने की इच्छा तो प्रबल थी। इस कारण से स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज में युवकों का प्रस्थान हम देख पाते हैं। नगरोन्मुखता

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्रामीण जन-जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। नगरीय परिवेश हमेशा गाँववासियों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा। शिक्षा और नौकरी की सुविधायें उनको नगर की ओर खींचती रहीं। आडंबरपूर्ण नगरीय जीवन निरीह गाँववासियों को मोहक भ्रम में डाल देता था। परंपरा से कटकर बहनेवाली स्वतंत्र जीवन-शैली ने, रूढ़ियों से जकड़े ग्रामीणों को उन्मुक्त हवा में साँस लेने दिया। फलतः शहर की ओर गाँव की राहें लंबी-चौड़ी होने लगीं। इससे दो बातें सिद्ध हुईं- एक, गाँववासी शहरी नहीं बन पाये, और दूसरी, गाँव लौटने पर वह गाँवई भी नहीं बन सका। दो संस्कृतियों के बीच वह दम घुटता रहा। नगरोन्मुखता ने ग्रामीण समाज को शिक्षित और अशिक्षित- दो वर्गों में बाँट दिया। शहर के उच्च शिक्षा-केंद्रों में विद्या प्राप्त करके लौटे पढ़े-लिखों के लिए गाँव में नौकरी की सुविधा नहीं थी। अतः शहरों के दफतरों में क्लर्क, चपरासी या स्टोरकीपर बनना, वे बहतरीन समझते थे। यहाँ तक कि कम कूली में मज़दूरी करके शहर में निचले स्तर की ज़िंदगी बिताने में भी वे तैयार होते थे- "गाँव के पढ़े-लिखे नवयुवक गाँव के वातावरण से अपने को जोड़ नहीं पाते और छोटी-मोटी नौकरी की तलाश में नगरों की ओर दौड़ते हैं। वे नगरों के चौराहों पर बिकने के लिए खड़े हैं। दर-दर की ठोकें खाते हैं।"¹ इसके बावजूद गाँव की गरीबी और आर्थिक असुरक्षा ने गाँववासियों को नगरों की ओर धकेल दिया। यातायात के उत्तरोत्तर विकास ने इस प्रक्रिया में उन्हें

1. शिवप्रसाद सिंह-ग्रामकथा: गाँव से कटी हुई पीढ़ी का लेखन (लेख) सारिका 11 सितंबर 1971

खूब सहायता की। दूसरी ओर, अशिक्षित गाँववासी अपने परंपरित कृषि-संप्रदायों पर आश्रय लेने से गरीबी से बच नहीं पा रहे थे। परंतु वे अपनी परंपरा पर ही अड़िग रहनेवाले थे। आधुनिक जीवन-शैली और आचार-विचार से एकदम अलग होने के कारण ग्रामीण जीवन में बिखराव सा दिखाई देता है।

ग्रामीण समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए नये शासक वर्ग ने ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन किया। ज़मींदारों के अन्याय और अत्याचारों से, सदियों से पीड़ित असहाय ग्रामीणों को इस नीति ने आश्वासन के द्वार खोल दिये। उन्होंने विश्वास किया कि जिस खेत पर वे तन-तोड़ काम करते हैं, वह उनका अपना बन जायेगा। मगर काले मानस ने अपना खेल समाप्त नहीं किया था। उन्होंने नये ढंग से अपना खेल शुरू किया। पुराने ज़मींदार नये राजनीतिज्ञ और पूँजीपति बन गये। ज़मीन उनके पास ही रही। मात्र यह नहीं, प्रजातंत्रीय प्रणाली के ज़रिये ये सत्ता पर भी आसीन हो गये। गुण्डे और पुलिस उनके संरक्षक बन गये। जनता अपना विश्वास खो बैठी — "इस नये उभरे वर्ग में भूस्वामियों और पूँजीपति दोनों के सम्मिलित गुण दृष्टिगोचर होते हैं; जिसमें पुराने ज़मींदारों की कुटिलता और पूँजीपति वर्ग की चतुराई और निर्ममता का सम्मिश्रण है। अपना काम निकालने में सिद्धहस्त यह वर्ग देश की राजनीति और समसामयिक जीवन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है।"¹

1. कुँवरपालसिंह-हिन्दी उपन्यास-सामाजिक चेतना-1976-पृ.155

आज़ादी के बाद गाँवों में छोटी जातियों की हालत तुलनात्मक ढंग से सुधर गयी है। नयी शासन प्रणाली में इनके उद्धार-हेतु आरक्षण-नीति लागू की गयी। शिक्षा, नौकरी और राजनीति में ये भी भागीदार हो गये। उच्च-नीच की भिन्नता से परे सामाजिक समानता का बोध इनमें जागृत हुआ। विशेषकर, राजनीतिक चेतना ने अपने अधिकारों को अपनाने की प्रेरणा दी। समाज के अन्यायों और अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने की हिम्मत उनमें आ गयी। गाँव में उन्होंने कई तरह के संगठन बनाये, उनका नेतृत्व किया और जनता में आत्म-सम्मान की भावना जगायी। बहू-बेटियों की इज़्जत लूटनेवालों पर वे टूट पड़े- "सदियों से दलित, अपमानित, उत्पीड़ित और गुलामों से भी अधिक दुर्व्यवहृत छोटी जाति का मनुष्य स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में अब हर घटना का प्रतिशोध लेना चाहता है।"¹ निम्न जाति के लोग बड़ी जातियों का सा खान-पान, रहन-सहन आदि अपनाने लगे ताकि वे भी ऊँचे हो उठे। दरअसल, यह गाँवों और शहरों में टकराव की स्थिति लायी। "समाजशास्त्री ए.आर.देसाई ने धीरे धीरे गाँव में होनेवाले परिवर्तन को नये भौतिकतावाद तथा सांस्कृतिक शक्तियों का दबाव माना है।"²

-
1. डॉ.राजेन्द्र कुमार-स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में ग्राम्य जीवन और संस्कृति-1988-पृ.61
 2. The ideology, the institutions, the rituals, the ethics and the aesthetics of the rural-religion are undergoing a change, through gradual, under the pressure of new material and cultural forces---- A.R.Desai--Rural Sociology in India, 1969, p.64

आर्थिक परिप्रेक्ष्य

किसी भी समाज का अस्तित्व उसकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर है। आर्थिक अवस्था सुदृढ़ है तो समाज के अंग स्वस्थ रह सकते हैं। आर्थिक स्थिति बिगड़ी रहती है तो समाज में तरह तरह के दुर्व्यवहार और विघटन सिर उठने लगते हैं। लोगों का कुत्सित मनोविकार आर्थिक विषमता की उपज है। जो शासन देश की आर्थिक व्यवस्था को सुरक्षित रख सकता है वही सुशासन कायम कर सकता है।

शहर की अपेक्षा गाँव की आर्थिक स्थिति काफी खराब थी। गाँव किसानों का साम्राज्य है। परंपरागत कृषि रीति अपनातेवाले ग्रामीण मौसम की कृपा पर शरण लते हैं। कभी कभी उन्हें वर्षा ऋतु बाढ़ के रूप में तो कभी कभी ग्रीष्म ऋतु सूखे के रूप में आक्रमण करती हैं। गरीबी हमेशा उनके घर-द्वार पर खड़ी रहती है। नयी सत्ता ने आधुनिक कृषि रीति के उपयोग पर बल दिया और विविध कुटीर-उद्योगों को लागू करने की कोशिश की। मगर ग्रामीण परिवेश भी ऐसा था कि बड़े लोगों का छोटे लोगों पर शोषण, अज्ञता, जातिभेद आदि में परिवर्तन नहीं हो पाए। राजनीति ने नेताओं और सरकारी अफसरों को एकसाथ भ्रष्ट बना दिया था। फलस्वरूप गाँववासी इन योजनाओं का सही फायदा उठा नहीं सके।

प्रजातांत्रिक शासन-प्रणाली के लागू होते ही ज़मींदारी प्रथा का अंत हो गया। "ज़मीन जोतनेवालों की" का नारा प्रचलित हो गया। कृषि भूमि

खेतिहरों के अधीन होने का नियम लागू हुआ। लेकिन निरीह और अशक्त किसान या तो इससे अनभिज्ञ रहे या अपना हक छीननेवालों का सामना न कर सके। अतः पुराना ज़मींदार ही उनके मालिक रहे। वे उनके मज़दूर बनकर रह गये। भूमि का असमान वितरण आर्थिक अव्यवस्था का एक कारण बन गया। खेतिहर मज़दूरों की संख्या अधिक और खेती के लिए ज़मीन कम। सरकार ने भूमिहीनों को ज़मीन दी, लेकिन वह झगड़ों में फँस गई। परिणामतः बेरोज़गारी बढ़ गई। खेतीहीन मज़दूरों की आजीविका के लिए सरकार ने कुटीर उद्योगों की शुरूआत की। इसके लिए कृषकों को अनुदान या ऋण देने का प्रबंध किया गया। मगर हुई यह बात कि अनुदान या ऋण के पैसे सरकारी अफसरों और क्षेत्रीय जन नेताओं के जेब में जा फँसा। इधर-उधर कुछेक को पैसे तो दिये, मगर प्राप्त कर्ता ने इसका यथोचित उपयोग न कर, जुए, शराब, ऋण चुकाने या शादी-भोज में व्यय किया। राजनीतिज्ञों द्वारा उन्हें अन्याय ही मिला। दूसरी तरफ अज्ञान गाँववासियों का सही रास्ता दिखानेवाला कोई नहीं था कि इस धन का समुचित उपयोग कैसे कर सके। कुछ लोग इससे बच गये, मगर अधिकांश भटक गये। सरकारी योजनाएँ भी पूर्ण रूप से सफल नहीं हुईं।

बेरोज़गारी ने गाँववासियों को निराशा और टटून के काले कुएँ में धकेल दिया। अपने परिवार की भूख मिटाने के लिए, बच्चों की पढ़ाई या लड़कियों की शादी के लिए उन्हें गाँव के साहूकारों और ऋण-दाताओं से धन लेना पड़ा। इन ऋणों को वे कभी भी चुका नहीं पाए। उसकी ज़मीन-जायदाद सब कुछ साहूकार के हो गये। यह मात्र उसकी अपनी पीढ़ी के लिए नहीं,

आनेवाली पीढ़ियों के लिए भी अभिशाप बन गया। गाँव में भले ही उनकी नौकरी लग भी जाए, मगर ठेकेदार या मालिक उन्हें उचित वेतन न देकर, कम वेतन ही देते हैं। पुल, सड़क आदि बनाने का ठेका राजनीतिज्ञों के हाथों द्वारा ही प्राप्त होता है जिसका कमीशन उसे देना पड़ता है। सरकारी अफसर ही सरकार की इन योजनाओं में पानी फेरता है और गाँववालों को नितान्त गरीबी में डाल देता है। जिस गाँव में उनका जन्म हुआ, पला, बढ़ा, वह उसकी ज़रूरतें पूरा न कर सका तो उन्हें गाँव छोड़ना पड़ा। फलतः उन्होंने नगर की ओर प्रयाण करना शुरू किया जहाँ उनकी कामनाएँ पूर्ण होने की संभावना थी। बहुत से गाँववासियों ने शहर में नौकरी की तलाश की। इसके दो परिणाम हुए— एक, वे धन कमा सके, दूसरा, इसका दूरव्यापक बुरा फल हुआ कि उसका परिवार टूट गया। माता-पिता, पत्नी और बन्धुजन उनसे अलग हो गये। अलगाव की यह स्थिति उन्हें हमेशा बेचैन करती रही। गाँव में उनका परिवार असुरक्षित और संत्रस्त रहा।

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

राजनीति वह नीति है जो प्रत्येक समाज की शासन-व्यवस्था को सुचारू रूप से परिचालित करने में सहायक होती है। राजनीति एक ओर सत्ता केंद्रित है तो दूसरी ओर उसका एक विशाल कर्मक्षेत्र है जिसमें संपूर्ण देश का प्रत्येक व्यक्ति शामिल हो सके। प्रजातंत्रीय देश में राजनीति का मतलब सत्ता का विकेंद्रीकरण है। "अधिकार जन की ओर" वाला आदर्श उच्च राजनीतिक संकल्पना है।

स्वतंत्रतोपरांत की ग्रामीण राजनीति की सबसे बड़ी देन राजनीतिक चेतना का विस्तार है। प्रायः हरेक गाँववासी ने राजनीति का मतलब समझा और देश की गतिविधियों में अपना भी हक समझा। वह किसी न किसी पार्टी में अंग बना। जब गाँवों में राजनीतिक पार्टियों का बोलबाला शुरू हुआ तब शहरों में इसकी व्याप्ति बढ़ने लगी थी। ग्रामीण जनता का शहरी जीवन से व्यापक संपर्क भी गाँव में राजनीति के फैलाव का कारण बना। शहरों में राजनीतिक क्षेत्र में जो भ्रष्टाचार दिखाई पड़ा, वही ग्रामीण परिवेश में उसी रूप में या उससे अधिक गहरे रूप में लक्षित हुआ। इसका प्रमुख कारण ग्रामीण जनता की निरक्षरता थी। उनका भोला मानस राजनीतिक कूटतंत्रों को पचाने में असमर्थ रहा। पुराने ज़मींदार ही नये राजनीतिज्ञों के रूप में प्रत्यक्ष हुए। इनका सत्ता पर पूरा प्रभाव था। संपत्ति और प्रभुत्व से इन लोगों ने राजनीतिक क्षेत्र को अपने कब्जे में रखा। फलतः आम ग्रामीण जनता, वास्तविक राजनीतिक कर्मकाण्डों से दूर और वंचित रही। वे अब भी शोषण के शिकार रहे, भले ही इसका चेहरा बदल गया था।

नयी सरकार ने ग्रामीण जनता की उद्धार-हेतु कई योजनायें लागू कीं, मगर स्वार्थ राजनीतिक नेताओं ने इन्हें जनता तक नहीं पहुँचा दिया। इस प्रकार राजनीति का प्रवेश ग्रामीण जनता में एक ओर राजनीतिक चेतना को जगा दिया, मगर पूर्ण रूप से वे जनतांत्रिक अधिकारों तथा स्वतंत्रता का फल न भोग सके।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

शहर से भिन्न जीवन जीने से, पारंपरिक जीवन बोध को मूल्य प्रदान करने से ग्रामीण संस्कृति की अपनी कुछ विशेषतायें होती हैं। सबसे बड़ी खूबी ग्रामीण संस्कृति की सरलता है। जीवन के प्रति आस्था तथा निष्ठा, सहजीवियों के प्रति सहभाव, प्रकृति के प्रति आकर्षण और प्रेम, व्यवस्थित जीवन का मोह, प्रीतिकर मनोव्यापारों को लेकर स्वस्थ दृष्टिकोण आदि के कारण ग्रामीण संस्कृति बाहरी अभावग्रस्तता के बावजूद, स्वस्थ और आकर्षक रहती है।

लेकिन यह स्वस्थ ग्रामीण संस्कृति कई प्रकार की विषम परिस्थितियों के बीच विकास करती है। आर्थिक अभाव, विपन्नता, शोषण, हीनता-बोध, अशिक्षा, अज्ञान, गलत नियतिवाद आदि के बीच रहने से ग्रामीण संस्कृति में कई प्रकार की रूढ़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसमें जीवन-संघर्ष के अस्पृहणीय तत्व ही अधिक मिलते हैं। अतः ग्रामीण कहानियों में ये दोनों तत्व बखूबी मिलते हैं। ये दो प्रकरण ग्रामीण संस्कृति के दो प्रमुख तत्व हैं। अतः कहानी में इनको आवश्यक "स्पेस" भी मिले हैं।

शहरीय और ग्रामीण संस्कृतियों में अंतर होता है। शहरी संस्कृति में आडंबर का चकाचौंध रहता है तो ग्रामीण संस्कृति सरलता का प्रतीक बन जाता है। शहरियों में स्वार्थ-वृत्ति की भावना प्रमुख रहती है तो गाँवियों में प्रेम, त्याग, सहानुभूति की संवेदनायें उच्च स्तर की होती हैं। भौतिकता का असर नगरवासियों में गहरा है और वे अपने ज्ञान और तर्क बुद्धि द्वारा वैज्ञानिक खोजों की निजता को मानते हैं। आध्यात्मिक चेतना गाँववासियों में प्रखर होती

है और प्रापंचिक नियन्ता ईश्वर को सबका मूल कारण मानते हैं। प्राकृतिक कोप और मारक-रोग को वे पैशाचिक वृत्ति मानते हैं। वे भूत-प्रेतों की कल्पना करते हैं और उनसे बचने के लिए मंत्र-तंत्र और ओझा-फूँक में विश्वास करते हैं।

लोकोन्मुखता ग्रामीण संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। मेले, त्योहार, लोकगीत आदि गाँव की संस्कृति के विशेष परिचायक हैं। तीज-त्योहारों के अवसर पर मेले लगाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार के प्रदर्शन, व्यापार, नाच-गाने जैसे विभिन्न मनोरंजनकारी कार्य मेले में आयोजित होते हैं। ग्रामीण मेलायें वस्तुतः हर गाँव की मुहर हैं। ध्यान देने की बात यह है कि स्वतंत्रता के पूर्व इन मेलों, त्योहारों और उत्सवों में जितना उमंग और उल्लास था, वह स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् नहीं दिखाई पड़ रहा है। बेरोज़गारी, आर्थिक विषमता, कलुषित राजनीति, स्वार्थनीति आदि इसके कारण बताये जाते हैं। कभी कभी मेले और उत्सव सांप्रदायिक दंगों की रण-भूमि भी हो जाते हैं।

परिवर्तनहीनता और परिवर्तनशीलता के बीच के दो पाटों के बीच ग्रामीण संस्कृति ने कभी गति पकड़ी तो कभी गतिहीन हो गई। ग्रामीण कहानी के सांस्कृतिक पक्ष पर विचार करते समय इसका विश्लेषण अनिवार्य है।

आधुनिक हिंदी कहानी में ग्राम जीवन का समाजशास्त्र

ग्रामीण जीवन लोक संस्कृति का भण्डार है। ग्रामीण यथार्थ लोक जीवन का यथार्थ है। आधुनिक कहानी ने ग्रामीण जनता के सहज लोक पक्ष को चित्रित करने के साथ-साथ समाज के भीतर लहराती सच्चाई को भी

उभारा जो उसकी असलियत है। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्यों से गुज़रता ग्रामीण जीवन कभी कभी परिवर्तन के लिए बाध्य रहता है तो कभी कभी गतिहीन भी दिखाई देता है। अधिकांशतः सभी आधुनिक कहानीकारों ने इस दौर की अपनी कहानियों में ग्रामीण समाज के इस यथार्थ को रेखांकित किया है।

ग्रामीण सामाजिकता

मार्कण्डेय की कहानी "कल्याणमन" परिवर्तित भारतीय परिवेश में गतिहीन ग्रामीण समाज का चित्र खींचती है। ग्रामीण जीवन की इस गतिहीनता का कारण ग्रामीण परिवेश के अंतरंग में व्यापी सामंती सभ्यता है। आज़ादी के बाद रची गयी जनतांत्रिक शासन-प्रणाली ने सामंती सभ्यता के अंत का मोह किसानों में फैलाया। परंतु यह एक ढोंग मात्र था। गरीब किसानों से भूमि हड़पने के लिए ज़मींदार और अधिकारी वर्ग अब भी सभी प्रकार के कुत्सित मार्ग अपनाते हैं। कहानी में मंगी का पति बंगा प्रतीक्षा करता रहा कि अब सुराज्य होने से कल्याणमन उनका हो जाएगा। पर बंगा के मरते ही घर में एक ओर लाश पडी थी और दूसरी ओर प्यादा बेदखली का हुकुनामा उसे दे गया। जब ठाकुर को पता लगा कि निडर मंगी परास्त होनेवाली नहीं है तो वे उसके बेटे "नाबालिग" पनारू को प्रलोभन देकर माँ के विरुद्ध खड़ा कर दिया— "मैं जानती थी कि यह सँभाल नहीं पायेगा। इसे तुम लोग फँसा लोगे..... और हुआ भी तो वही।"¹ अंत में एक उन्मादिनी की तरह वह स्टीपा देने लगती है।

1. मार्कण्डेय-कल्याणमन-मार्कण्डेय की कहानियाँ-2002-पृ.187

गरीब किसानों की सुराज्य की प्रतीक्षा ज़मींदारों के अत्याचारों से बिखर जाती है। वे भी अंग्रेज़ी शासन नीति "डिवाइड एण्ड रूल" को अपनाकर परिवारों को नष्ट कर देते हैं। पनारू को मंगी के विरुद्ध खड़ा करने में ठाकुर का बड़ा लड़का सफल होता है। पनारू अपनी माँ पर संदेह उठाता है और ठाकुरों पर विश्वास करता है कि अपने भविष्य की सुरक्षा इनके हाथों पर है। अपनी शक्ति और कुटिलता से गरीबों और असहायों को मानसिक तनाव में डालकर, उनसे भूमि हड़प कर, अपने को संपन्न और गरीबों को और भी गरीब या जड़-समेत उन्मूलन की दशा पर पहुँचा देना प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था की चुनौती बन गयी। नये शासक वर्ग इस चुनौती का सामना न कर सके। मुक्तिबोध का कथन है— "धनी-निर्धन वर्ग के बीच की खाई गहरी होती जा रही है, उच्चवर्ग और निम्न वर्ग के बीच की दीवार बढ़ती जा रही है, भूदान-यज्ञ के बावजूद ज़मीन के लिए संघर्ष जारी है, साहूकारी बैंकों और प्राथमिक शाखा-समितियों पर भी धनी किसानों का वर्चस्व हो गया है।"¹

पूँजीपतियों का शासन चला गया, मगर उसका असर उतरा नहीं था। अतः ग्रामीण जनता पीड़ित ही रह गयी। "भूमि जोतनेवालों" का नारा खूब प्रचलित हुआ, मगर भूमि अब भी ज़मींदारों और ठाकुरों के अधीन में रही। सत्ता और संपत्ति उच्च वर्ग के हाथ में ही रह गयी। फलतः वर्गीय भेदभाव कायम रहा। किसान सभाओं और पंचायतों में किसानों की भागीदारी हो गयी

1. मुक्तिबोध-नया खून-(मासिका)-जनवरी-1956-पृ.6

और अपने अधिकारों के प्रति वे सचेत होने लगे। पर चालाकी और धमंडी राजनीतिज्ञों और अधिकारियों के आगे असहाय निकले। उनकी धमकी और डर से गाँवों के अनेक किसानों को अपनी पुरवी खेती से हाथ धोना पड़ा। कहानी का प्रस्तुत भाग इसका गवाह है- "जगई खाली इराने-धमकाने से स्टीपा देकर भाग गया और मुसई ने सौ रुपये लेकर माँ-बाप की धरती पर से पाँव उठा लिये। बस यही तो एक बच रही है, और उसके साथ भी क्या काम किया ठाकुर ने। कितनी बार पटवारी को धमकाया, कितनी बार उसे रुपये देने की लालच दी। एक बार तो यहाँ तक कहा, तुम मँगी का नाम कल्यानमन वाले खेत से काटकर, अपना चढ़ा लो। मैं आधा तुम्हें ही दे दूँगा पर कुछ तो बचाओ।"¹

रामदरश मिश्र ने इसी परिवर्तित सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है। ग्रामवासियों में आत्मबोध और आत्म-सम्मान की भावना जाग उठी है। वे अब शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने लग गये हैं। उनकी कहानी "एक औरत: एक ज़िंदगी" बदली ग्रामीण मानसिकता का चित्र खींचती है। इसमें उन्होंने अपनी अस्मिता को बनाये रखने, पुरुष-वर्चस्ववादी समाज से लड़नेवाली एक औरत की ज़िंदगी की कहानी खींची है। कहानीकार ने इसमें उच्च वर्ग की चरित्रहीनता, ताकतवरों के पक्ष लेनेवाले ग्रामीण बलहीनता, रूढियों की व्यर्थता और पंचायती अफसरों की अन्यायशीलता को भी लक्ष्य किया है।

1. मार्कण्डेय-कल्यानमन-मार्कण्डेय की कहानियाँ-2002-पृ.187

भवानी नरेश की विधवा बहू है। नरेश का पूरा खानदान अपनी नंगई और गुंडागिरी के लिए गाँव भर में मशहूर है। तो भी नरेश अच्छा था। वह मिडिल पास होकर एक प्राइमरी स्कूल में शिक्षक हो गया। उसका सपना था एक मकान बनवाने का। मकान आधा ही बना था कि नरेश मर गया। कुछ दिन बाद बाढ आयी और उसमें नरेश द्वारा बनवाये गये अधूरे मकान की दीवारें ढहने लगीं, छतें भहराने लगीं। अपने दो बच्चों के अलावा खानदान के अन्य सदस्य भी पहले से ही दुनिया से विदा कर लिये थे। सुनसान परिवेश में चकित भवानी ने अपने और अपने बच्चों की परवरिश हेतु गाँव की प्राचीन परंपराओं और प्रथाओं को तोड़ने का निश्चय किया। क्योंकि जिन-जिन से उसने सहायता माँगी, वहाँ से कुछ भी मिला नहीं और जिससे सहायता मिली उससे अनैतिक व्यवहार का सामना भी करना पड़ा। उसने खुद खेत जोता, सींचा और फसल कटवायी। किसी के सामने कभी भी नहीं झुकी। ब्राह्मणी होकर भी बाज़ार में बैठकर सामान बेचा। उसने समाज की कई रूठियों को तोड़ा जो कभी भी व्यक्ति के जीवन को सहायता दे नहीं सकीं। भवानी कहती है—“हाँ, ठीक कहती हो, काकी जी! मैं पूजा-पाठ में मन लगाऊँ और गाँववाले मेरी खेती-बारी में मन लगावें और एक दिन पूजा से जागकर पाऊँ कि मेरे सारे खेत पट्टीदारों के नाम हो गये हैं और मैं अपने दोनों बच्चों के लिए भिखारिन-सी रास्ते पर खडी हूँ। इससे उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी न।”¹ वह ज़िंदगी के व्यावहारिक पक्ष को प्रमुखता देती है। उसने जाति की उच्चता को तोड़ा जो जीवन-यापन में पैरों की बेड़ियाँ बन गयी हैं।

1. रामदरश मिश्र—एक औरत: एक ज़िंदगी – अकोला मकान (क.सं) –1999—पृ.31

इह समझती है कि जीवन की ज़रूरतें जाति की उच्चता से परे हैं। ग्रामीण समाज में प्रायः दिखाई देता है कि उन्नत कुल की स्त्रियाँ, घर में खाके पड़ने से भी बाहर नहीं जाती, उल्टे निम्न वर्ग की नारियाँ पुरुषों के साथ ही खेत में काम करती या मज़दूरी करती जीवन-यापन करती हैं। कहानीकार ने भवानी के द्वारा उच्च कुल की व्यर्थ गरिमा को तोड़ा है—“वह अपने कोले के अमरूदों, जामुनों, नींबुओं को ले जाकर बाज़ार में बेचने लगी।”¹ भवानी ब्राह्मणों की चरित्रहीनता पर प्रश्न उठाती है—“और जूठी हांडी में मुंह डालते घूमना, खलिहान फूंक देना, बैला चुरा लेना अच्छा काम है? ब्राह्मण का काम है?”² भवानी संपन्न और ताकतवरों के पक्ष लेनेवाले डरपोक ग्रामीण लोगों की इन्साफ पर तड़प उठती है। जब धनपति के आदमियों ने उसके खलिहान को आग लगाया तो प्रतिकार में वह धनपति के खलिहान को आग लगाने की कोशिश करती है। लोगों ने उसे रोक लिया। वह चीख उठती है—“क्यों मुझी को रोकने को वीर बने हैं आप लोग? धनपति को रोकने में डर लगता है? आपका इन्साफ कमज़ोर केलिए ही है?”³ दरअसल, ग्रामीण जनता का भीरुत्व ही उन्हें शोषण के शिकार बना रहे हैं। सदियों से दमित मानसिकता और अज्ञता ही इसके कारण हो गये हैं। जब तक वे इन से मुक्ति नहीं पा सके, शोषक वर्ग अपनी कब्जा कसके ही पकड़ेंगे। ग्रामीण जनता को जगाने की कोशिश कहानीकार ने इसमें की है।

1. रामदरश मिश्र—एक औरत: एक ज़िंदगी—अकेला मकान (क.सं) —1999—पृ.35

2. वही—पृ.35

3. वही—पृ.35

लेखक की सामाजिक सापेक्षिकता तभी संपूर्ण होती है जब वह अपनी रचनाओं में अपने परिवेश को उजागर कर सके। उनकी संवेदनीय क्षमता परिवेश से एकाकार हो जाती है। श्री रामदरश मिश्र ने प्रायः अपनी संपूर्ण रचनाओं में अपने समय-समाज को उभारने की कोशिश की है। ग्रामीण समाज की विसंगतियाँ और समस्यायें उनकी संवेदना-क्षमता को तड़पाती रहीं। अपने समय के इन निरीह जनता के उद्धार की कामना उनकी रचनाओं द्वारा प्रस्फुटित होती है। अपने अनुभवों को उन्होंने शब्दबद्ध किया है— "दरअसल जीवन ही मेरी कहानियों का आधार रहा है और वही प्रतिपाद्य रहा है।..... मैं ने अपने परिवेश में अभिशप्तों को देखा है, काफी दूर तक उनके साथ जिया है और अभीशप्त ज़िंदगी के भीतर से उठते उनके विद्रोही तेवर को भी देखा है या उन्हें एक जीवनवादी दृष्टि के साथ अपनी पीड़ा को हँसकर झेलते देखा है। अभिशप्त ज़िंदगी की पीड़ा तो मेरी लगभग सभी कहानियों में है। किंतु विद्रोही तेवर सबमें नहीं है।"¹

ग्रामीण समाज में स्वतंत्रता के उपरांत हुए अनेक परिवर्तनों में, नारी मन का परिवर्तन विशेष उल्लेखनीय है। आज़ादी के पूर्व की दास्य मनोवृत्ति से ग्रामीण स्त्री मुक्त होने लगी। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं था। वह भोग्य वस्तु मात्र थी। वह हमेशा शोषण और अत्याचार का शिकार रही। अपने मूक परिवेश में वह सब कुछ सहन करती रही। अपने भाग्य को कोसती रही। मगर, अब वह समझने लगी है कि दुनिया में उसका भी एक हिस्सा है। जीवन

1. रामदरश मिश्र-मेरी प्रिय कहानियाँ-1990-पृ.14

में उसका भी समान अधिकार है। वह किसी की दासी नहीं, वह अपने ही पैरों पर खड़ी रह सकती है। सबसे बड़ी बात यह हुई कि वह अपने आपको पहचानने लगी है। उसका आत्मबोध सजग हो उठा है जैसेकि नन्हो के साथ हुआ। नन्हो शिवप्रसादसिंह की कहानी "नन्हो" की नायिका है।

ग्रामीण स्त्रियों में आत्मज्ञान और आत्मसम्मान की भावनायें जागना गरिमापूर्ण स्थिति है। अपने स्वत्व की पहचान केवल अहंबोध की पहचान मात्र नहीं थी बल्कि इसके द्वारा पूरे एक समाज के उद्धार की हेतु बन जाती है। नन्हो द्वारा इस बदलाव का चित्र उभर आता है। नन्हो में आत्मज्ञान इतना सजग है कि वह अपने स्त्रीत्व की अवहेलना को धिकारती है। रामसुभग का पश्चाताप उसके प्रति प्रेम का रूप ले लेता है। नन्हो के हाथ को अपने दोनों हाथों से पकड़ कर, उसने अपने दिल के प्रेम को व्यक्त करता है। मगर लुक-छिपकर करनेवाले इस प्रेम-नाटक को नन्हो ठुकरा देती है— "शरम नहीं आती तुम्हें.नन्हो साँपिन की तरह फुफकारती हुई बोली—बड़े मर्द थे तो सबके सामने बाँह पकड़ी होती। तब तो स्वाँग किया था, दूसरे के एवज़ तने थे, सूरत दिखाकर ठगहारी की थी। अब दूसरे की बहू का हाथ पकड़ते सरम नहीं आती....."²

आत्मसम्मान की यह भावना उसमें और एक बार भी उजागर होती है जब रामसुभग उसे चेतावनी देता है कि एक विधवा होने के नाते उसे रात

1. शिवप्रसाद सिंह-नन्हो-सं.भीष्म साहनी-हिंदी कहानी संग्रह-1988-पृ.203

को गली-गली घूमना ठीक नहीं है— "इतनी कलक होती है तो पहले ही ब्याह कर लिया होता। इस तरह डाँट रहे हो लाला, जैसे मैं तुम्हारी जोरू हूँ। खबरदार, फिर कभी आँख दिखायी तो....."¹ दरअसल, उसके मन में रामसुभग के प्रति चाह है। पर वह पौरुष चाहती है। यह आत्म-बोध बदली ग्रामीण मनसिकता का परिचायक है।

भारत के सामाजिक परिवेश में चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण, विधवा स्त्री उपेक्षिता बन जाती है। सब तरह के उमंग-उल्लास, खुशियों, उत्सवों और त्योहारों से भी उसे हटा दिया जाता है। समाज एक प्रतिरोध ही लगाता है कि वह किसी भी मंगल कार्य में न भाग ले। मंगल कार्य में उसे अपशकुन मानता है। एक ओर पति की मृत्यु की तड़प, दूसरी ओर समाज की उपेक्षा। मृत्यु, नियति का खेल है, इसे हटा नहीं सकता। दूसरा, मनुष्य का खेल है जिसके पीछे स्वेच्छाचारी सामंती सभ्यता का स्वार्थ है। नन्हो में इस परंपरिक प्रचलन के प्रति विद्रोह है। वह गादी देखने जाती है, कीर्तन की पंक्तियाँ गुनगुनाती रात को घर लौट आती है। इस पर रामसुभग का डाँटना सामंतीय पुरुष वर्चस्व का प्रभाव है। उसके इन वाक्यों में रूढ़ियों के प्रति चोट है— "हाँ, गलती ज़रूर थी। मैं विधवा हूँ, उत्सव तमाशा मेरेलिए नहीं है।"² सामाजिक आचार-रीतियाँ या रूढ़ियाँ एक विधवा को उत्सव-तमाशा देखने लायक नहीं बनाती। इनके विरुद्ध उठनेवाली आवाज़, किये जानेवाले कार्य स्त्री मन के विद्रोह को व्यक्त

1. शिवप्रसाद सिंह-नन्हो-सं.भीष्म साहनी-हिंदी कहानी संग्रह-1988-पृ.205

2. वही-पृ.205

करते हैं। नन्हो उस स्त्री का प्रतीक है जो पहले कमज़ोर थी, अब शक्तिशाली और संयम बन गयी है। रामसुभग से छले जाने पर लँगड़ा मिसरीलाल से उसकी शादी उसकी कमज़ोरी थी। अपने पिताजी की गरीबी उसे कमज़ोर बनाती थी। वह अपने आपको भाग्यहीन समझती थी। फिर पति की आकस्मिक मृत्यु, रामसुभग की पौरुषहीनता और पाँच बरस के एकाकी जीवन ने उसे मज़बूत एवं संयम बना रखा और अपने पैरों पर खड़ी होनेवाली बना गयी। नन्हो ने समाज की इस धारणा को ठुकरा दी कि स्त्री पुरुष की सहायता से ही जी सकती है। उसने अपनी ज़िंदगी से प्रमाणित किया कि वह अकेली भी जी सकती है— "मैं कमज़ोर थी बाबू, भाग्य से हार गयी। पर आज तो मैं अपने पैरों पर खड़ी हूँ, आज मुझे तुम हारने मत दो। तुम्हारा रूमाल मेरे पाँव बाँध देता है लाला, इसी से लौटा रही हूँ, बुरा न मानना।" नन्हो स्वतंत्रता के बाद के बदले ग्रामीण परिवेश की स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है।

शिवप्रसाद सिंह ने "बडी लकीरें" नामक अपनी कहानी में ग्रामीण सामाजिकता का और एक चेहरा खींचा है। पढे-लिखे ग्रामीण युवकों का अपने गाँव के प्रति महत्वाकांक्षा, साथ ही साथ निरक्षर तथा लोभी ज़मींदारों द्वारा उनका शोषण इस कहानी का विषय बन गया है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद गाँवों में शिक्षा का प्रचार और प्रसार हुआ। गाँधीजी ने ग्रामीण जनता की शिक्षा पर बल दिया। उनके "बैसिक एड्युकेशन" का नये संविधान में स्थान दिया गया। 1937 में गाँधीजी ने "हरिजन" में लिखा कि मेरे लिए शिक्षा का

1. शिवप्रसाद सिंह-नन्हो-सं.भीष्म साहनी-हिंदी कहानी संग्रह-1988-पृ.208

मतलब है, शिशुओं और बड़ों के शारीरिक, बौद्धिक तथा आत्मीय भलाईयों के विकास और प्रकाश। शिक्षा में "बैसिक क्राफ्ट" को उन्होंने महत्व दिया। वे विश्वास करते थे कि गाँव का पिछड़ेपन नौकरी की उपलब्धी में सहायक शिक्षा के अभाव के कारण है। शिक्षित होने का महत्व तथा शिक्षा द्वारा उपलब्ध होनेवाली सामाजिक प्रगति का चित्र उन्होंने जनता के सामने रखा। धीरे धीरे चित्र बदलने लगा।

शिक्षा के प्रचार और प्रसार हेतु खुली पाठशालाओं ने गाँववालों में शिक्षित होने की लालसा उत्पन्न की। बावजूद इसके, शहर का आकर्षण एक नयी ज़िंदगी की ओर खींचातानी करने लगा। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए युवा वर्ग गाँव से बाहर जाने लगे। बुजुर्ग ग्रामीण माता-पिता या तो स्वयं इसके लिए तैयार हो गये या स्वयं युवा पीढ़ी अपनी मर्जी से जाने लगे। उच्च कामनायें और महत्वाकांक्षाओं को लेकर घर लौटे इन नौजवानों के दिल में अपने गाँव को सुधारने का तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कुछ कर दिखाने का मोह जाग उठा। मगर इन नवशिक्षित युवकों की कामनाओं और इच्छाओं को तथाकथित जन नेताओं ने, जो असल में पुराना ज़मींदार ही हैं, पनपने नहीं दिया। इसकी वजह यही थी कि ये लोग अपने अधिकारों और सुख-संपन्नताओं को, जिन्हें सदियों से वे अनुभव करते आये थे, छोड़ना नहीं चाहते थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की राजनीति को इन्होंने अपने अनुकूल बना दिया। नये शासक इन्हें नियंत्रित नहीं कर सके। फलतः शिक्षित नयी पीढ़ी अपने लिए ही नहीं, समाज के लिए भी, कुछ न कर बैठी। वे इनसे धोखा

खाता रहे। सच कहे तो ये इन शिक्षितों को चूतिया बनाते रहे। शिवप्रसाद सिंह ने "बड़ी लकीरें" के सरवा को इन युवकों का प्रतिनिधि बनाया है। वह अक्सर ग्रामसभा की मीटिंगों में किसी न किसी बात का विरोध करता था। एम.ए. पास होने के बावजूद भी उसे नौकरी नहीं मिली थी। अतः पिता का डॉट-फटकार नित्य सुनना पड़ता था। फिर भी वह अपने गाँव को सुधारने की बात सोचता रहा। उन दिनों, सूखे में टेस्ट वर्क के लिए सरकार ने सवा लाख की स्कीम गाँव में भेजी। ग्राम प्रधान ने हमेशा की तरह इस काम को अपने पुत्र के दोस्त झब्बू को सौंपना चाहा। पर इसे ग्राम प्रधान मोतीलाल के जिगरी दोस्त और ग्राम सभा के पायेदार सदस्य रामखेलावन सिंह का लड़का श्रीकांत ने विद्रोह किया। तो जब उसे सौंपने की चर्चा हुई तो वह टाल दी गयी और उसने ऐसा एक प्रस्ताव रखा कि जो इसमें रुचि लेते हैं उनसे थोड़ा थोड़ा काम बतौर नमूने के कराइए और जिसका काम सबसे अच्छा आता है, उसे मुसल्लम काम सौंपिए। उसका यह प्रस्ताव पास हुआ और झब्बू और सरवा उम्मीदवार हुए। सरवा को ऐसा लगा कि यह कुछ कर दिखाने का चाँस है। बड़ी उम्मीद से वह मंगरू बो के पास जाता है ताकि कुछ राय मिले। पर वह इसे उन लोगों का षड़यंत्र कह देती है। जब सरवा घर लौटा तो पिता उससे बता देते हैं कि झब्बू और श्रीकांत घर आकर बोली बोल रहे थे कि ज़रा हाथ लगा देना, नहीं बड़ी नवहंसाई होगी। साथ ही उसे चार सौ रुपये इकट्ठा करने को कहता है। पिता बेटे को चेतावनी देते हैं कि झब्बू, मेवा, श्रीकांत और रामखेलावन के चक्कर में मत पड़ना, नहीं, घर की दो-चार बीघे ज़मीन भी नीलाम हो जायेगी। सरवा निश्चेष्ट हो जाता है।

स्वतंत्रता के उपरांत नयी सरकार ने ग्राम सुधार की कई योजनाओं के साथ बाढ़, सूखा और हिमपात से खेतों की सुरक्षा हेतु भी कई योजनाएँ बनवाईं और इनकेलिए लाखों रुपये खर्च में दे दिये। ग्राम पंचायतों के अधीन में कर दिये इन रुपयों से प्रायः ग्रामीण सुधार की बातें नहीं हुई थीं, अपितु, ग्राम प्रधान या पंचायती सदस्यों की जेबें भर जाते थे। पंचायत और वहाँ के मुख्य कर्मचारी पहले के ज़मींदार ही थे, क्योंकि वे ताकतवर थे और निरक्षर ग्रामीणों को धोखा देने के कौशल में पहले से ही निपुण थे। उन लोगों ने नयी ढंग का शोषण कार्य शुरू किया। सरवा को लगता है कि ग्राम-प्रधान मोतीलाल, उसका पुत्र मेवालाल, मेवालाल का दोस्त झब्बूलाल, ग्रामसभा के पायेदार सदस्य रामखेलावन सिंह और उसका पुत्र श्रीकांत— "सब एक लाइन में है। पर मैं ऐसा मुरदा बरम हूँ जिसके मुँह से लपट तो दूर, लतकारी भी नहीं निकल सकती।" दरअसल, पंचायतों का स्वरूप नकली है। वह पहले की ज़मींदारी व्यवस्था का प्रतिरूप मात्र है।

शिवप्रसाद सिंह ग्रामीण परिवेश के बदलाव को अचंभित होकर देखते हैं। उन्हें यह आजमाने में कठिनाई महसूस होती है कि ग्रामीण निष्कलंकता धोखा-धड़ी और छल-कपट में बदल गयी है। प्रकृति के साथ गहराई से मिल जुलकर रहनेवाले इन भूमिपुत्रों के दिल अंतडियों से भर गया है। सरवा के ज़रिये कहानीकार इसको प्रकट करते हैं— "सुना था बड़ी बड़ी कचहरियों में ही किच किच होती है। बड़े बड़े दफतरों में अन्धी सरंगे हैं। बड़ी

1. शिवप्रसादसिंह-बड़ी लकीरें-भेडिये (क.सं.)-1972-पृ.23

कुर्सी पर बैठनेवाले ही टालमटोल के मास्टर हैं, पर इस बित्ते भरभर की गाँव सभा भी ऐसी अंतडियों से भरी होगी, इसका मुझे गुमान न था।¹

वर्गीय भेदभाव ग्रामीण परिवेश में ज़ोर पकड़ी थी। निम्न स्तर के लोग उच्च स्तर के लोगों से सब तरफ से पीड़ित थे। धन, भूमि, अधिकार के क्षेत्रों में ही नहीं, कभी कभी भक्ति के क्षेत्र में भी वे उच्च वर्ग के शोषण के शिकार रहे। दमित निम्न स्तर के लोग इनसे विद्रोह करना चाहते हैं, मगर असफल होकर ऐसे एक नेता या अवतार की प्रतीक्षा रखता है जो उनकी कामनाओं को पूर्ण कर सके। शिवप्रसादसिंह ने "कलकी अवतार" में शोषण से पीड़ित लोगों की मनोकामना का चित्र खींचा है जो अवतार की प्रतीक्षा रखता है। कहानी के नायक रोपन को अधःस्थित वर्ग के होने के कारण ज़िंदगी भर अपमान मिला। उसे बेइन्साफी मिली। पुरखों से मिले खेत का नीलाम हुआ। उसे सबसे बड़ा दुख और अपमान तब हुआ जब ज़मींदार भेदूसिंह ने अपने पहले लड़के की शादी पर बाप-दादे के वक्त की रिवाज़ छोड़कर बारी और बारिन का पहिरावा नहीं दिया। रोपन समझता है कि वह खुद इन अन्यायों का सामना नहीं कर सकता। भेदूसिंह अब उसके दिल में सबसे बड़ा अत्याचारी है। अशक्त, शोषित और पीड़ित हमेशा एक ताकतवर की प्रतीक्षा करते हैं जो उनकी दमित इच्छाओं की पूर्ति कर सके या अपनी सारी पीड़ाओं को दूर कर सके। दुनिया में इसके कई मिसाल हैं, पुराणों और धर्म-ग्रन्थों में इनका जिक्र है। ईसा मसीहा, मुहम्मद नबी जैसे पैगम्बर, विष्णु

1. शिवप्रसादसिंह-बड़ी लकीरें-भेडिये(क.सं.)-1972-पृ.13

के दस अवतार, देवी के विभिन्न रूप मानव को दानवों की क्रूरताओं से बचाने के निमित्त हुए हैं। कलियुग में कल्की के अवतार की घोषणा हुई है और हरेक भक्त के दिल में उनके आने की प्रतीक्षा है।

रोपन के दिल में भी कल्की अवतार की प्रतीक्षा है। इस प्रतीक्षा को रंग दिया है ठाकुरवाड़ी के पुजारी घनश्याम उपाध्याय ने। वह उसे विश्वास दिलाता है कि कलियुग में श्वेत अश्व पर सवार होकर कृष्ण काय कान्तिवाले भगवान हाथ में नंगी तलवार लेकर सारे अत्याचारियों का नाश करेगा। यह सुनकर रोपन इसलिए आत्मविभोर हो उठता है कि इस बार भगवान का रंग काला होगा— "वाह महाराज! तो इस बार भगवान जी का रंग काला होगा। तब अपना ज़माना आयेगा। गरीबों का राज अब होकर रहेगा। रोपन बारी अपनी काली बाहें सहलाते-सहलाते आत्मविभोर हो जाते।"¹ यह एक सामाजिक अवधारणा बन चुकी है कि काला रंग गरीबों और अछूतों का रंग है। गोरे-चिट्ठे रंगवाले उच्च कुल के आभिजात्य वर्ग की दृष्टि में ये हीन और हेय हैं।

इतिहास गवाह है कि ब्रिटीश सत्ता के "कलॉनियलिसम" का आविर्भाव गोरों का कालों पर हुए अधीनस्थ मनःस्थिति से हुआ है। "अपारत्तीड" ने आफ्रिका भूखंड की जनता को सदियों से गुलाम बनाया। वर्ण की यह भिन्नता कई रूपों में, दुनिया के हर समाज में, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अब भी विद्यमान है। रोपन खुश होता है, क्योंकि काला रंगवाला भगवान आयेगा तो अपना ज़माना आयेगा। गरीबों का रंग काला है— उसकी चिंताओं की तह में

1. शिवप्रसाद सिंह-कल्की अवतार-भेड़िये (क.सं.) -1977-पृ.8

यह विचार जम गया है। यह एक रोपन बारी का विचार नहीं है, सदियों से , समाज के निम्न, अछूत या गरीब लोगों के दिल में यह विचार जमा हुआ है। समाज में उसकी जड़ें गहराईयों तक जाकर अड़ गयी हैं। गोरे अंग्रेजों का राज पलट गया तो क्या, भारतीय मन से मिटा नहीं।

काले भगवान की प्रतीक्षा रोपन के मन में इतनी जम गयी है कि श्वेत अश्व पर सवार काले आदमी को देखकर वह पहचान भी नहीं पाता कि वह मनुष्य है। अचंभे में पड़कर उसका मानसिक संतुलन खो जाता है। उसके मन की अभिलाषा और प्रतीक्षा चरम सीमा पर पहुँच जाती है कि वह घोड़े के पीछे पीछे दौड़ जाता है। घोड़ा ज़मींदार के घर के आगे पहुँच जाता है जिसे वह आजीवन शत्रु मानता है। सवार को स्वागत करनेवाले और उससे बातें करनेवाले ज़मींदार को देखकर रोपन आनंदविभोर हो उठता है, क्योंकि वह सोचता है कि बेचारा ज़मींदार क्या जाने, यह उसकी मृत्यु है। फिर उन्माद की अवस्था में वह ज़मींदार के घर में प्रवेश करता है जहाँ पाँच सालों तक उसने कदम नहीं रखा था। और कुछ खाये-पिये बिना घर का सारा काम कर डालता है। काले आदमी की उसने खूब सेवा-शुश्रूषा की। उसका भ्रम तभी टूट जाता है जब ज़मींदार भेदूसिंह काला आदमी का परिचय कराता है कि वह अपनी बहिन के लिए ज़मींदार के बेटे को देखने आया है।

भारत को आध्यात्मिक राष्ट्र कहा जाता है। भारतीय संस्कृति और परंपरा आध्यात्मिक तत्वों पर आधारित है। परमात्मा पर अटूट विश्वास और उसके प्रति अगाध भक्ति भारतीय मानसों की विशेषता है। वेद, पुराण और

शास्त्र साक्ष्य देते हैं कि मनुष्य की बलहीनता पर ईश्वर शक्ति का अवतार बनता है। शोषकों और पीड़ितों का रक्षक बनकर आनेवाले भगवान की प्रतीक्षा हर युग में पायी जाती है। त्रेता युग और द्वापर युग के बाद अब कलियुग में भी यह प्रतीक्षा जारी रखती है। अतः रोपन बारी की प्रतीक्षा को गलत मानना या भ्रम मानना उचित नहीं होगा। मगर गलती इसमें है कि इस विश्वास को सही रास्ते में न ले जाकर, अपनी किसी स्वार्थ-पूर्ति करनेवाले पूजारियों की अधम मनःस्थिति में है। ठाकुरबाडी के पूजारी घनश्याम उपाध्याय के घर का आगन्तुक दलित रोपन बारी से कलियुग में भगवान का रंग काला कह देना, सचमुच, अज्ञानी-अनपढ़ दलित रोपन बारी पर किए जानेवाला शोषण है।

"शिवप्रसाद सिंह का व्यक्ति कठोर वैज्ञानिक स्तर पर आस्था, जीवन संघर्ष और कर्म का समर्थन करता दिखाई देता है।¹ अवतारों की कल्पना को वैज्ञानिक धरातल पर वे विरोध करते हैं। वे विश्वास करते हैं कि दमित मनुष्य की मुक्ति या अत्याचारों का दमन अवतार से नहीं, करतार से होता है। इसमें नयी पीढ़ी के योगदान को वे महत्व देते हैं। वे पारंपरिक रूढ़ियों और आचार-विचारों को वैज्ञानिक धरातल पर विश्लेषित करके मानव-मन को संकुचित दायरों से बाहर निकालना चाहते हैं। कहानी में "शोभन" नामक पात्र की सृष्टि इसलिए हुई है— "नये ज़माने के लोग ही पुराने लोगों को ठीक करेंगे

1. डॉ.मधु सन्धु-शिवप्रसादसिंह स्रष्टा और सृष्टि (लेख) सं.पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु-कहानियों का अस्तित्ववादी संदर्भ-1995-पृ.289

दादा । गांठ बांध लो । हमें अवतार नहीं करतार चाहिए । करतार यानी अपना हाथ ही तारेगा ।"¹

कहानीकार का दृष्टिकोण स्पष्ट है । वे चाहते हैं कि ऐसी एक ज़माना हो जाए जहाँ लोग एकरसता का अनुभव करे, अपने अस्तित्व को पहचान ले, उनमें आत्मबोध की भावना जागृत हो जाए और कोई भी मानसिक या शारीरिक रूप से शोषित न हो । "शिवप्रसाद सिंह की कहानियों का नायक हारा हुआ है, बौना व्यक्ति है । वह चाहे भिखमंगा, डोम, अछूत, किसान, हिजड़ा हो अथवा पौराणिक पात्र एकलव्य, द्रोणाचार्य या कलि । इस आंचलिक व्यक्ति को परम्परा से ढेरों अन्धविश्वास मिले हैं, किंतु उसकी अस्तित्वगत सजगता परम्परित अन्धविश्वासों, अवतारीय धारणाओं, पूजा-व्रतों आदि को लॉघ रही है । उसका विश्वास करतार पर नहीं, कर-तार पर आकर ठहर गया है । यही उसका क्षमता-बोध है, आस्था है, जो मनुष्य को धरती का मनुष्य बनने को बाध्य करती है । जिसका स्वर हम भैरों, पांडों, मंगरू, नन्हों, गुलाबी, द्रोणाचार्य, अर्जुन आदि अनेक पात्रों में पाते हैं ।"²

मार्कण्डेय ने "'महुए का पेड़" नामक अपनी कहानी में ग्रामीण जीवन के बहुआयामी तथ्यों को उभारा है । एक ओर असहाय विधवा नारी के प्रति ज़मींदार का शोषण है, तो दूसरी ओर प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करनेवाले

1. शिवप्रसाद सिंह-कलकी अवतार-भेड़िये (क.सं.)-1977-पृ.4

2. डॉ.मधु सन्धु-शिवप्रसादसिंह स्रष्टा और सृष्टि (लेख) सं.पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु-कहानियों का अस्तित्ववादी संदर्भ - 1995-पृ.290

ग्रामीण मानसिकता है। इनके अलावा मार्कण्डेय जी ने ग्रामीण संस्कृति में जम गई रूढ़ियों की अर्थशून्यता या उनसे मानव ज़िंदगी पर पड़नेवाली आपत्तियों की ओर भी इशारा किया है। ज़िंदगी की यातनाओं से मुक्ति की जगह मृत्यु देनेवाली उसकी नकारात्मकता को व्यक्त किया है। विधवा दुखना की बेबसी केवल उसके वैधव्य के कारण नहीं, मगर इस वैधव्य से लाभ उठानेवाली अमानवीयता से भी है। उसकी संतानहीनता उसके वैधव्य को और भी तीव्र एवं आवारगी की शून्यता को गहन बना देती है। गाँव के ज़मींदार तो अपनी शक्ति और प्रभुता को प्रायः दुखना सरीखे असहायों पर जताते हैं। जब तक दुखना का पति ज़िंदा था, वह दस बीघे का काश्तकार था। बाग में पचासों पेड़ थे। उसकी मृत्यु के दूसरे दिन ही ठाकुर ने बेदखली का हुक्मनामा भेज दिया। ज़मीन, पेड़ सब कुछ उससे छीन लिये गये। अब उसकी झोंपड़ी ठाकुर की ज़मीन पर पड़ी है। एक महुए के पेड़ के अलावा अब उसके पास कुछ भी नहीं है। वही उसकी संतान है। उसकी विशाल पौरुष की छाया के नीचे वह अपने आप को सुरक्षित पाती है। दुखना की ज़िंदगी पर ज़मींदार की अमानवीयता का दूसरा प्रवेश पेड़ की चोरी के रूप में है। पेड़ की माँग तो ज़मींदार द्वारा सीधा-साधा होता है। पर दुखना की अस्वीकृति तथा सतर्कता ने पेड़ की जान को बचाये रखी। अपनी असहायता वह हरखू की माँ से प्रकट करती है— "इस दुनिया में कमज़ोर का ठिकाना नहीं। ज़मीन ठाकुर की है, पेड़ मेरा है। अब उसकी बखरी बन रही है, लकड़ी की कमी है, कहता है, इसे दे दो, तो बड़ा काम हो जाए।" मगर औसत गंवाई की तरह जब वह तीर्थ यात्रा के लिए

1. मार्कण्डेय-महुए का पेड़-सं.दूधनाथ सिंह-सार्थक कहानियाँ-1987-पृ.82

निकल जाती है तो ज़मींदार उसकी संपत्ति पर कब्जा करता है। वास्तव में दुखना का अकेलापन उसे ब्राह्मणवादी तीर्थ-रूढियों की ओर धकेल देता है। यह जानते हुए भी कि अपनी अनुपस्थिति में ठाकुर महए के पेड पर कब्जा कर लेंगे, तीरथ का मोह न छोड़े पाने के मूल में यह पारंपरिक धार्मिक विश्वास काम करता है कि तीरथ मोक्ष का मार्ग है। पर दुखना को मोक्ष नहीं, बल्कि वह सर्वनाश का कारण बना।

गंवई लोगों में धार्मिक रूढ़ियाँ इतनी अकड़ गयी है कि उनके निर्वाह में वे अपना सब कुछ नष्ट कर देते हैं। उनके मन की संवेदनात्मकता या तरलता का एक कारण यही ईश्वरीय चेतना है। पेड़-पौधों या जानवरों से उनके लगाव की वजह भी इसी चैतन्य का बहिस्फुरण है। पर इस चैतन्य से अलग होकर, इसी परिवेश में साँस लेनेवाले ज़मींदारों के काले-कारनामों से भी ग्रामीण माहौल भरा हुआ है, यह नियति का खेल है। असहायों पर सहायता पहुँचाने के बदले उनके शोषण पर तुले उच्च वर्ग ग्रामीणता का कलंक है।

राजनैतिक चेतना

अनेक कहानीकारों ने स्वतंत्रतोपरांत के ग्रामीण जन-जीवन को राजनीतिक संदर्भ में देखते हुए बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन ने ग्रामीण लोगों में सशक्त देशप्रेम की भावना जगायी। विदेशी सत्ता का शासन, उसकी नीति और स्वेच्छाचारिता से लोग तंग हो चुके थे। अपनी ही जन्मभूमि में दास बनकर जीवित रहने से उनमें यह आत्मबोध जाग उठा

कि इस ज़मीन में अपना ही हक है, बाहर से आए हुए लोगों का नहीं। अपने अस्तित्व को मिटा देनेवाली नीति के प्रति उनके मन में विद्रोह भर उठा। उन्होंने यह भी पहचान लिया कि खंडित होकर रहना अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मारने के बराबर है। इसलिए जब देशीय नेताओं ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध झगड़ा मोल लिया तो वे तन-मन से उसमें शामिल हो गए। उन्होंने एकता के साथ रहने का, काम करने का और सोचने का महत्व समझा। वास्तव में भारतीयों में सदियों से सुप्त देश प्रेम को जगाने का श्रेय ब्रिटीश शासकों को है। धधक कर फैल गयी इस विप्लवाग्नि से वे बच भी नहीं निकले।

शहर के लोग भले ही राष्ट्रीय चेतना से जागृत थे, मगर गाँववासियों में इसकी पहुँच में देर लगी। स्वतंत्रता-प्राप्ति से राजनीतिक चेतना उनमें लहरों सी फैल गयी। राजनीति सामाजिक जीवन का एक अविभाज्य अंग बन गयी। कुटिल राजनीतिक तंत्रों एवं भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के बुरी कारतूतों के बावजूद हर गाँववासी किसी न किसी दल में शामिल होकर देश की राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने लगा। देशप्रेम के जागरण के साथ साथ नयी शासन प्रणाली में अपने अधिकार और तज्जनित उत्तरदायित्व-बोध उनमें प्रविष्ट होने लगे। चुनाव की महत्ता को वे समझने लगे और चुनाव की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। "हंसा जाई अकेला" नामक अपनी कहानी में मार्कण्डेय ने ग्रामीण जनता की जागृत राजनैतिक चेतना का चित्रण किया है। लेकिन इसके साथ साथ उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में अचानक आ पड़े मूल्य विघटन का भी उल्लेख किया है।

लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली बहुत जल्दी ही भ्रष्ट होने लगी। देश में राजनीतिक दलों का बोलबोला हुआ। हरेक अपने अपने दलों की विजय हेतु दूसरों पर दोषारोपण करने लगा। कूटनीति रची गयी। व्यक्ति के चरित्रों की अवहेलना करने लगी। चुनाव के अवसर पर दलबंदियों की टकराहट जोर पकड़ती है। कहानी में सुशीला के विरुद्ध दूसरे दलों के लोग चिट्ठियाँ भेजते हैं कि उससे जनता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है, इसलिए उसे यहाँ से बुला लिया जाय। चुनाव के दो दिन पहले उस पर यह आरोप करती हुई नोटिस आती है कि वह गाँधीजी के आदर्शों को तोड़ रही है, इसलिए काम से अलग किया जाता है। "दूसरे दल के लोगों ने चिट्ठियाँ भिजवायीं-सुशीला जी को यहाँ से बुला लिया जाए। जनता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।.....चुनाव के दो दिन पहले उन्हें नोटिस मिली कि वह बापू के आदर्शों को तोड़ रही है, इसलिए उन्हें काम से अलग किया जाता है।"¹

गाँव के पूँजीपति और ज़मींदार असहाय किसानों को डरा-धमकाकर वोट पाने की कोशिश करते हैं। कभी कभी ये लोग रुपये और भोजन दिलाकर भी इनको अपने वश में करने की कोशिश करते हैं। गाँव में राजा साहब कांग्रेस के विरोध में लड़ते हैं। हंसा किसानों को याद दिलाता है- "बाबू साहब जो कहें मान लो। पूड़ी-मिठाई राजा के तम्म में खाओ! खरचा-खोराक बाबू साहब से लो और मोटर में बैठो! लेकिन कँगरेस का बक्सा याद रखो। वहाँ जाकर खाना-पीना भूल जाओ! कँगरेस तुम्हारे राज के लिए लड़ती है।

1. मार्कण्डेय-हंसा जाइ अकेला-चुनी हुई कहानियाँ-1989-पृ.43

बेदखली बंद होगी। छुआ-छूत बंद होगा। जनता का राज होगा।"¹ यह प्रखर राष्ट्रीय चेतना बदले ग्रामीण परिवेश का उत्तम दृष्टांत है।

गाँव की आर्थिक स्थिति बहुत खराब रहती है। पारंपरिक कृषि रीतियों को अपनाने से, ज़मींदारों द्वारा कृषिभूमि को हड़प लिए जाने से और सरकारी अफसरों और राजनीतिक नेताओं द्वारा सरकारी सहायताओं को हड़प लिये जाने से उनकी आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ जाती है। सरकार ने पंचवर्षीय योजनायें देश की आर्थिक उन्नति को लक्ष्य करके लागू कीं। गाँवों को इसमें प्रमुख स्थान दिया। गाँधीजी की आर्थिक नीति में गाँव को केंद्र में रखा गया। मगर इतिहास साक्षी है कि इनके उद्धार-हेतु जो योजनायें बनायीं गयीं वे सब कागज़ी रहीं। योजनायें निरर्थक बन गयीं। योजनाओं की निरर्थकता तत्कालीन कहानीकारों का दुख बन गया। मार्कण्डेय की कहानी "आदर्श कुक्कुट-गृह" इसी प्रश्न को सामने लाती है। यह कहानी भी स्वातंत्र्योत्तर शासन-नीति की खोखलापन या गलती को उजागर करती है।

गरीब किसानों को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए सरकार की योजनाएँ शुभकार्य बनकर गाँव में शुरू होने लगीं। नहर, नलकूप, रेल, तार सभी तो इन योजनाओं के अन्दर आ गये। "राष्ट्रीय विकास-खंड" जैसे संगठनों की स्थापना भी किसानों की भलाई-हेतु बना गयी है जिसमें से रुपये उधार लेने की सुविधा की गई। लघु कुटीर-उद्योग के रूप में कुक्कुटों के पालन

1. मार्कण्डेय-हंसा जाइ अकेला-चुनी हुई कहानियाँ-1989-पृ.45

का प्रचार हुआ। आदर्श कुक्कुट गृह नाम से बड़े धूमधाम से इसका उद्घाटन हुआ। मगर भ्रष्टाचारिता उद्घाटन में ही दिखाई पड़ी। कुक्कुट गृह की बनावट में किसनों की आजीविका के मुर्गों को ही पकड़ लिया। मात्र यह नहीं कि उद्घाटन समारोह की समाप्ति में बड़े बड़े वि.आई.पी. से लेकर टाकसी ड्राइवरों तक कुक्कुट गोशत की रुचि पाने सब के सब कुक्कुटों को अपने साथ ले गये। "सभा समाप्त हुई। सारे अफसर पार्टी पर बैठ गये तो गाँव के लोगों ने कुक्कुट-गृह देखना शुरू किया। साहबों के चपरासियों ने कतार लगा कर मुर्गों की आलोचना की। इसी बीच पार्टी खतम हुई और कलक्टर साहब मोटर में जा बैठे। उनका ड्राइवर धीरे से आया और छोटे बी.डी.ओ. को बुलाकर एक ओर ले जाते हुए कहने लगा, "मेम साहब को बडा शौक है, मुर्गों के गोस्त का।"

"हाँ, हाँ, पकड न लो।" साहब ने लापरवाही से कहा, और दूसरे अफसरों को बिदा करने लगा। चपरासी ने लपक कर मुर्गों की गरदन पकड़ी, वह कुड....कुड....कुडम चिल्लाया। रमजान उठ खड़ा हुआ। उसने अपने टूटे चश्मे को हाथ से हिलाया, नीचे-ऊपर किया। तब तक धीरे धीरे चपरासियों ने छोटे साहब साहब को घेर लिया औरएक-दो....दो-तीन...मुर्गों इक्कों पर बँध गये, साइकिलों के कैरियरों में टँग गये, झोलों में कस लिये गये और मेहमानों के जाते-जाते आदर्श कुक्कुट-गृह खाली हो गया।"¹

हरेक योजना की शुभसमाप्ति इसी ढंग से होती थी। उद्घाटन ही समाप्ति की वेदी बन जाती है। गरीब किसानों की आशायें वहीं निराशा के गर्त

1. मार्कण्डेय-आदर्श कुक्कुट गृह-मार्कण्डेय की कहानियाँ-2002-पृ.267

में पड जाती हैं। योजनाओं को चालू करने में सक्षम अफसरों की कमी या उनकी अर्कमण्यता या अक्षमता इनका कारण बन जाता था।

राजनीतिक चेतना के परिवर्तित स्वरूप का चित्रण उनकी ही और एक कहानी "नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाना" में मिलता है। सत्य और अहिंसा के सशक्त हथियारों से लायी गयी आज़ादी बहुत जल्दी ही राजनीति की कूटनीतिज्ञता, भ्रष्टाचारिता, और दल-बद्धता में गुलामी से भी बदतर हो गयी। राजनीति कुरसी की नीति बन गयी। कहानी का प्रमुख पात्र बुचऊ कहता है—"राजनेता तो गन्ही महतमा के साथ चली गयी बच्चन! विचार नहीं रहा अब, अउर बिना विचार की नीति कहाँ? देखा न.....अब काम-धंधा सबमें बेबिचारी आ गयी। जो कुछ आग-पानी हिरदय में रहा, वह बुझाय गया। हमका छोड़ा, नेता लोगों को देखा, उनका भी वही हाल। जिस कुरसी पर बैठ गये.....बस वह उनकी हो गयी। अब तो कुरसी की नीति है।" आम जनता से वोट पाकर जिन नेताओं ने कुरसी पायी, दुर्भाग्यवश, अधिकार और प्रभाव की उन्मत्ता में वे अपने को, जन को तथा देश को भी भूल गये हालाँकि इनसे देश की माँग अब पहले से भी दुगुना थी। गाँव की गरीबी, अशिक्षा, बेकारी आदि बडी चुनौतियाँ बनकर उनके सामने खड़ी थीं। किसानों की दुर्दशा का मुख्य कारण भूमिहीनता ही थी। आम जनता की प्रतीक्षायें आसमान छूने लगी थीं। चुनाव के बाद अधिकार हासिल करने के बाद स्थिति एकदम पलट गयी।

1. मार्कण्डेय-नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाना-मार्कण्डेय की कहानियाँ-2002-
पृ.112

नेताओं की मनोवृत्ति में बदलाव आया। मूल्य और आदर्श उनसे फिसलने लगे। उनकी कथनी और करनी में अंतर आने लगा। आम जनता अचानक आ पड़े इन परिवर्तनों के आगे भौचक्के रह गयी। उनकी प्रतीक्षाओं ने निराशा का रूप धारण करने में अधिक समय न लिया। बुचरु का मोहभंग पूरे एक देश की जनता का मोहभंग है—“गड़बड़ तो यह है, कि लोक में से बात की मर्जाद उठ गयी। कहने करने में भेद हो गया। गन्हीमहात्मा कहते रहे, कि कउनो देश की आपन मरजाद होती है.....आपन एक चरित्तर होता है, मुदा वह सब बुझ रहा है। वे आन्हर हैं, जो इसे नहीं पहचानते।”¹

मार्कण्डेय की “भूदान” कहानी भी शोषक ज़मींदारों की छल-कपटता का सबूत है। दरअसल, इस शोषक वर्ग से किसानों की मुक्ति हेतु भूदान आन्दोलन चलाया था। साधु विनोबा भावे के नेतृत्व में संगठित यह कार्यक्रम भूमिहीन किसानों को लक्ष्य करके आयोजित किया गया। इससे कुछ किसान लाभान्वित भी हुए। फिर भी अनेकों ज़मींदारों की कूटनीति में फँसकर अपनी ज़मीन खो दी। रामजतन उनमें से एक है। उसकी हानी के पीछे भूदान आन्दोलन से लाभ उठानेवाले ज़मींदारों का षड़यंत्र है।

नये सत्तासीनों की खूबी इसमें है कि उन्होंने गाँवों को देश की प्रगति की पहली सीढ़ी बना रखी। ग्राम-सुधार हेतु बनायी गयी योजनायें, दरअसल, एक ओर नये शासकों की दीर्घ-दृष्टि का परिचायक था तो भी दूसरी ओर,

1. मार्कण्डेय-नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाना-मार्कण्डेय की कहानियाँ-2002-पृ.112

उनके संचालन में आ पड़ी कमियाँ, उनकी ही असमर्थता का दृष्टांत निकलीं। विचलित राजनीतिक वातावरण अधिकारियों को सत्मार्ग पर चलने नहीं दिया। धन का लाभ, पद की लालसा एवं उच्च तथा संपन्न वर्ग से मिलन ने उन्हें भ्रष्ट बन जाने की नौबत दी। किसानों की अज्ञता तथा अबोधापन उनके मार्ग को सरल बनाया। रामजतन के घर की भूमि को हडप कर, उसे धोखा देने के पीछे भी इसी मानसिकता है। रामजतन पर आ पड़े विनाश की कथा गाँववासियों के शब्दों से स्पष्ट होता है—“भूदान-कुमेटी के मंतिरी जी ने तो कब का रामजतन को समझा-बुझा दिया है कि ठाकुर के जिस दान से उसे भूय मिली थी, वह केवल पटवारी के कागज़ पर थी। असल में तो वह कब की गोमती नदी के पेट में चली गयी है।”¹

स्वतंत्रता के बाद भी ज़मींदार ही गाँव के अधिकारी रह गये। क्योंकि धन और प्रभाव उनके ही पास थे। जनतांत्रिक चुनाव में वे ही जीत गये। ग्राम-सुधार योजनाओं से संबंधित सभी चर्चायें उनके ही घरों में हुआ करती थीं। कलक्टर से लेकर बड़े-बड़े अफसरों तक उनके ही यहाँ ठहरते थे। उनके ही चाल-चलन से बातें आगे बढ़ती थी। परिणाम यह निकला कि किसान शोषित ही रह गये। किसानों की आँखों में धूल छिड़काकर ज़मीन हड़पनेवाले ठाकुर की चाल कहानी में दोना महतो की वाणी से स्पष्ट है—“तुम नहीं जानते बाबा, यह पीछे से नाक पकड़ने की चाल है। भूय पहले तो थोड़ी दे देंगे और फिर सबकी मिला कर जब बड़ी जायदाद बन जाएगी तो कुमेटी बनाकर उसके

1. मार्कण्डेय-भूदान-मार्कण्डेय की कहानियाँ-2002-पृ.278

सभापति बन जाएँगे, फिर जिसे मरजी होगी देंगे।¹ ग्रामीण जनता की सबसे बड़ी विवशता यह है कि ज़मींदारों और बड़े बड़े अफसरों की चालाकी और कूटतंत्र को जानकर भी वे इनके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते। साहित्यकार दरअसल इनकी वाणी बन जाती है। मार्कण्डेय अपनी अनेक कहानियों द्वारा मूक किसानों के वक्ता बन गये हैं। गरीब और असहाय किसानों की परवरिश न कर सकनेवाली नयी शासन-नीति और असमानता की खाई को न मिटा सकनेवाली जनतांत्रिक व्यवस्था मार्कण्डेय की कटु आलोचना के विषय बन गये।

सांस्कृतिक चेतना

ग्रामीण संवेदनाओं को उनकी गहराई से चित्रित करती हुई सामने आती हैं फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ। उन्होंने लोक जीवन के सहज लोक पक्ष को रेखांकित किया है। लोक जीवन की विभिन्न भंगिमायें ग्रामीण कहानियों की सौन्दर्यात्मकता की अभिव्यक्ति से संबंधित है। समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करते समय लोक जीवन की भंगिमायें मात्र सौन्दर्य तत्वों की छवियाँ प्रस्तुत नहीं कर रही हैं बल्कि लोक जीवन के भीतर सक्रिय सामाजिक यथार्थ को भी परखता है। भारतीय ग्राम जीवन को साक्षात् प्रस्तुत कर देने की कला में रेणु सिद्धहस्त हैं। वे गाँव की भाषा से लेकर जीवन की बारीकियों से ऐसे परिचित हैं मानो वे स्वयं चरित्रों के बीच खड़े होकर कहानी कह रहे हों।

1. मार्कण्डेय-भूदान-मार्कण्डेय की कहानियाँ-2002-पृ.276

बिहार सोशलिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य होने के नाते आम जनता के बीच में रहने का मौका उन्हें प्राप्त हुआ है। एक बार मधुकर सिंह से उन्होंने कहा भी है— "किसान-मज़दूरों में काम करने से मुझे कम फायदे नहीं हुए — बल्कि सच पूछिए तो राजनीति ने मुझे बहुत दिया: अपने जिले के गाँव-गाँव घूमा, लोगों से मिला, उनके सुख-दुख से परिचित हुआ, चन्दे वसूले। अपनी सक्रियता के कारण साथियों के साथ गाँवों में रात के वक्त भी डेरा डालना पड़ता था..... रात में दूर से कभी ढोलक-झांझ पर नाच-गान की स्वर-लहरी मंडराती आती और मैं अपने साथियों को सोते छोड़ वहाँ चल देता। कभी 'विदेशिया', कहीं "जालिमसिंह सिपाहिया", और किसी गाँव में "ननदी भउजिया' के नाच-गान। मैं नाच देखने से ज़्यादा नाच देखनेवालों को देखकर अचरज से मुग्ध हो जाता। जहाँ तक बोली और भाषा का प्रश्न है, इन्हीं गाँवों में घूमकर भाषा की शक्ति को समझने का मौका मिला। मैं यह मानता हूँ कि वे लोग ही—गाँव के किसान-मज़दूर ही मुझसे लिखवाते थे।"¹ सचमुच उनकी कहानियाँ ग्रामीण संस्कृति का दस्तावेज़ हैं।

रेणु ने अपनी रचनाओं में इन खूबियोंको शब्दबद्ध किया है। उनकी कहानी "पंचलाइट" इसका साक्ष्य है। इसमें उन्होंने एक विशेष टोले के लोगों की ज़िंदगी का जिक्र किया है जो किसी भी मूल्य पर अपना आत्माभिमान खोना नहीं चाहता।

1. मधुकर सिंह-सारिका-मार्च-1971-पृ.87

कहानी इस तरह आगे बढ़ती है—पन्द्रह महीने के जुमाने से जुटाई गई रकम से रामनवमी के मेले के अवसर पर एक पेट्रोमेक्स खरीद जाते हैं जिसे गाँव के लोग पंचलाइट कहते हैं। कल-कब्जेवाली चीज़ को पुन्याह के बिना उपयोग न करने के विचार से पूजा-कर्म की चीज़ें भी वे खरीदते हैं। पूजा-कीर्तन की तैयारी के बाद जब मालूम होता है कि उसे जलाने की कला उनकी बिरादरी में कोई नहीं जानता तो उनके दुख का पारावार नहीं रहता। तब मुनरी अपनी सहेली से गोधन का नाम पंचों को बताने के लिए कहती है जिसे पंचलाइट जलाना आता है। लेकिन मुश्किल तो यह है कि पंचों ने उसे बिरादरी से बाहर रखा है। उसकी गलती तो यह है कि वह मुनरी को देखकर सिनेमा का गीत गाता था। लेकिन आज यह जानकर कि उसे गैस बत्ति जलाना आता है तो पंच उसकी गलती माफ कर देते हैं और गोधन उनके सम्मान का रक्षक बन जाता है।

कहानी में ऐसे अनेक मुहूर्त हैं जो आंचलिक समाज की निरीहता को व्यक्त करते हैं। टोलियों की आपसी स्पर्धा और ईर्ष्या, सचमुच इन ग्रामीणों की निरीहता का द्योतक है। ब्राह्मण टोली के उपहास पर महतो टोली के जवाब में इसका गुंजाइश है— "बामन टोली के लोग ऐसी ही बात करते हैं। अपने घर की ढिबरी को भी बिजली-बत्ती कहेंगे और दूसरों के पंचलाइट को लालटेन।"¹ रेणु की कहानियाँ, दरअसल, भीतरी सत्य का दृष्टांत न होकर बाह्य जगत में विचरण करनेवाले भिन्न भिन्न लोगों की ज़िंदगी का परिचायक है।

1. फणीश्वर नाथ रेणु-पंचलाइट-सं.मार्कण्डेय-कथा धारा-1999-पृ.31

रेणु की "रसप्रिया" लोक जीवन का और एक यथार्थ है। पंचकौड़ी मिरदंगिया की ऊँगली का टेढ़ी हो जाना किसी डायन के बान मारने का कारण बता देना लोक संस्कृति में अन्तर्लीन पारंपरिक विश्वास है। इसको पवित्र प्रेम को धोखा देने का शाप भी बता देता है- "रमपतिया आकाश की ओर हाथ उठाकर बोली थी-"हे दिनकर! साच्छी रहना। मिरदंगिया ने फुसलाकर मेरा सर्वनाश किया है। मेरे मन में कभी चोर नहीं था। हे सुरुज भगवान! इस दसदुआरी कुत्ते का अंग-अंग फूटकर।"¹ शुद्ध रसपिरिया सुनकर ऊँगली का सीधा हो जाना भी यही विश्वास है। लोक जीवन में नाच और गान हिल मिल गये हैं। नाच-गान को लेकर गाँव की टोली-टोली में स्पर्धा भी होती है। गाँव के बच्चों से लेकर बूढ़ों तक नाच-गान में भाग लेते हैं। यह उनकी ज़िंदगी बन गयी है। रसप्रिया को इस प्रेम कहानी का आधार बनाने का कारण भी यही है।

इसके साथ ही साथ कहानीकार ने एक सामाजिक यथार्थ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। मिरदंगिया का रमपतिया से झूठा प्रेम करने के पीछे एक सामाजिक यथार्थ है। वह है कट्टर जातिभेद की भावना। गुरु जोधन से असली जाति को छिपाकर ही मिरदंगिया मूलगैनी सीखने गया था। पर गुरुजी ने जब उससे रमपतिया के चुमौना की बात चलायी तो उसे सब कुछ छोड़कर रातों रात भाग जाना पड़ा। दरअसल, पंचकौड़ी मिरदंगिया और रमपतिया की विच्छृंखलित ज़िंदगी की वजह ग्राम जीवन में व्याप्त जाति-भेद

1. फणीश्वर नाथ रेणु-रसप्रिया-टुमरी (क.सं) - 1959-पृ.16

की भावना ही है। कहानी का मूल स्वर इसे कहा जा सकता है। कहानीकार ने और एक प्रसंग में भी इसका जिक्र किया है—"परमानपुर में उस बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से 'बेटा' कह दिया था। सारे गाँव के लड़कों ने उसे घेर कर मारपीट की तैयारी की थी— बहरदार होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा? मारो साले बुड़्ढे को घेरकर।.....मृदंग फोड़ दो।"¹ ग्रामीण परिवेश की सुंदरता के बीचों बीच पायी जानेवाली वर्गीय भिन्नता ने उसकी सुंदरता को कितना विकृत बना दिया है, रेणु ने इसे प्रत्यक्षीकृत किया है।

रेणु की "ठेस" नामक कहानी में एक कलाकार का चित्रण है जो बेगार काम करता है। वह एक ऐसा कुशल कारीगर है जो पैसे से ज़्यादा कदर को प्रमुखता देता है—"बिना मज़दूरी के पेट-भर भात पर काम करनेवाला कारीगर। दूध में कोई मिठाई न मिले, कोई बात नहीं, किंतु बात में ज़रा भी झाल वह नहीं बरदाश्त कर सकता।"² सिरचन जाति का कारीगर है और आवारा भी। वह एक ऐसा कलाकार है जिसकी सर्जनात्मकता का मुकाबला करने में गाँव में और कोई नहीं है—"मोथी घास और पटेर की रंगीन शीतलपाटी, बाँस की तीलियों की झिलमिलाती चिक, सतरंगे डोर के मोढ़े, भूसी-चुन्नी रखने के लिए मूँज की रस्सी के बड़े-बड़े जाले, हलवाहों के लिए ताल के सूखे पत्तों की छतरी टोपी तथा इसी तरह के बहुत-से काम हैं, जिन्हें सिरचन के सिवा गाँव में और कोई नहीं जानता।"³

-
1. फणीश्वर नाथ रेणु-रसप्रिया-ठुमरी (क.सं) -1959-पृ.9
 2. फणीश्वर नाथ रेणु-ठेस-ठुमरी (क.सं) -1959-पृ.52
 3. वही-पृ. 52-53

बेगार काम करनेवाला होने पर भी अपनी मान-प्रतिष्ठा पर वह ध्यान देता है। इसीलिए ही जब मझली भाभी तथा चाची से भली-बुरी सुननी पड़ी तो उसे ठेस पहुँचती है। वह काम अधूरा छोड़कर चला जाता है- "बबुआजी! अब नहीं। कान पकड़ता हूँ, अब नहीं।.....मोहर छापवाली धोती लेकर क्या करूँगा?कौन पहनेगा?...ससुरी खुद मरी, बेटे-बेटियों को ले गयी अपने साथ। बबुआजी, मेरी घरवाली ज़िंदा रहती तो मैं ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतलपाटी उसी की बनी हुई है। इस शीतलपाटी को छूकर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा।.....गाँव भर में तुम्हारी हवेली में मेरी कदर होती थी।....अब क्या?"¹

मगर एक कलाकार की संवेदनशीलता उसमें पर्याप्त मात्रा में है। मन पर लग गयी चोट कभी भी उसकी ईमानदारी को घटित नहीं करती। ससुराल जानेवाली मानू को सब चीज़ें-शीतलपाटी, चिक और कुश की एक जोड़ा आसनी-बना देता है। सिरचन उन लोगों का प्रतिनिधि है जो अपनी कला के माध्यम से ग्रामीण सौन्दर्य को पटना, कलकत्ता जैसे महा नगरों में फैला देता है-"मानब को याद आयी, विवाह में सिरचन के हाथ की शीतलपाटी दी थी माँ ने। ससुरालवालों ने न जाने कितनी बार खोलकर दिखलाया था पटना और कलकत्ता के मेहमानों को।"²

1. फणीश्वर नाथ रेणु-ठेस-ठुमरी(क.सं)-1959-पृ.56

2. वही-पृ.56

सिरचन जैसे लोगों के बिना लोक संस्कृति ज़िंदा नहीं रह सकती है। फिर भी वे भी मनुष्य हैं, उनका भी अपना व्यक्तित्व है। आवारेपन या जाति के छोटेपन के कारण उन्हें समाज की मुख्यधारा से अलग कर देना उचित नहीं है। वास्तव में सिरचन की ज़िंदगी हाशिये पर रखे लोगों की ज़िंदगी है। इस सामाजिक यथार्थ का अंकन इस कहानी में हुआ है।

रेणु की "लाल पान की बेगम" नामक कहानी में पूर्ण रूप से ग्रामीण संस्कृति की सुंदरता झलकती है। बैलगाड़ी पर बैठकर बलरामपुर का नाच देखने के लिए तैयार होनेवाले एक परिवार के माध्यम से रेणु ने एक ओर ग्रामीण परिवेश की सुंदरता को उसकी संपूर्णता में इस तरह पिरोये गये हैं कि पूरा इलाका आँखों के सामने उभर आता है। बैलगाड़ी के आने में हुई देरी का प्रसंग ही देखिए— "सूरज भगवान डूब गये। दीया-बत्ती की बेला हो गयी। आभी तक गाड़ी...."

चम्पिया बीच में ही बोल उठी— "कोयरीटोले में किसी ने गाड़ी नहीं दी मैया! बप्पा बोले, माँ से कहना सब ठीक-ठाक करके तैयार रहें। मलदहियाटोली के मियाँजान की गाड़ी लाने जा रहा हूँ।"

सुनते ही बिरजू की माँ का चेहरा उतर गया। लगा, छाते की कमानी उतर गयी घोंडे से अचानक। कोयरीटोले में किसी ने गाड़ी मंगनी नहीं दी! तब मिल चुकी गाड़ी! जब अपने गाँव के लोगों की आँख में पानी नहीं तो मनदहियाटोली के मियाँजान की गाड़ी का क्या भरोसा! न तीन में, न तेरह में!

क्या होगा शकरकन्द छीलकर! रख दे उठाके!.....यह मर्द नाच दिखायेगा!
बैलगाड़ी पर चढ़कर नाच दिखाने ले जायेगा! चढ चुकी बैलगाड़ी पर, देख
चुकी जी-भर नाच....पैदल जानेवाली सब पहुँचकर पुरानी हो चुकी होंगी।"¹

जब बिरजू की माँ की चिड़चिड़ाहट और निराशा खुशी में बदल
जाती है तो वह अपनी खुशी दूसरों में इस तरह बाँट देती है- "अरी
टीशनवाली, तो रोती है काहे!" बिरजू की माँ ने पुकारकर कहा, "आ जा झट
से कपड़ा पहनकर। सारी गाड़ी पड़ी हुई है! बेचारी!.....आ जा जल्दी!"

बगल के झोंपड़े से राधे की बेटी सुनरी ने कहा, "काकी, गाड़ी में
जगह है? मैं भी जाऊँगी।"

बाँस की झाड़ी के उस पार लरेना खवास का घर है। उसकी बहू भी
नहीं गयी है। गिलट का झुनकी-कडा पहनकर झमकती आ रही है।

"आ जा! जो बाकी रह गयी है, सब आ जायें जल्दी!"

जंगी की पुतोहू, लरेना की बीवी और राधे की बेटी सुनरी, तीनों
गाड़ी के पास आयीं।"²

इस ग्रामीण परिवेश के भीतर बहती जीवन की सच्चाई की खोज ही
समाजशास्त्रीय प्रकरण है। रेणु की कहानियाँ, दरअसल, बाह्य जगत में
विचरण करनेवाले भिन्न भिन्न लोगों की ज़िंदगी का परिचायक है।

1. फणीश्वर नाथ रेणु-लाल पान की बेगम-ठुमरी(क.सं.)-1959-पृ.146

2. वही-पृ.154

मार्कण्डेय ने भी लोक जीवन पर आधारित कहानियों की रचना की है। उनकी कहानी "सहज और शुभ" ग्रामीण संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। गँवार लोगों के जितने ही विशेष विचार और विश्वास हैं, वे अनोखे और दिलचस्प हैं। पशु-पक्षियों को पालना केवल जीवन-यापन का माध्यम है, उनके रंग और सौन्दर्य के कारण नहीं। कोई भी ऐसी चीज़ जो काम की न हो उसे पालना उनके लिए असंभव है। बकरे को दो रुपये में खरीद लाते, मोटे बनाकर आठ दस रुपयों में बेच डालते। रंगी-विरंगी पंछियाँ गाँव में बहुत से थे; मगर उनके रंग और बोलियों की तारीफ किसी के मूँह से कथावाचक या उनके जैसे लड़के अपने लड़कपन में नहीं सुना था। हालाँकि उसकी काकी ने तोते को पाल रखा है, पर इसका अवश्य ही एक कारण रहा है— "सुबह उठते ही सीताराम, सीताराम पढ़ता है"।² शौक की बात गाँववाले नहीं जानते हैं, क्योंकि वे सचमुच गरीब थे। ज़िंदगी की ज़रूरतों ने उनमें रूखापन पैदा किया— "उनकी नस में उपयोगिता और संसारी संस्कार का खून बहता था।"³ बुढ़िया रमीला के पिंजरे की चहकती, फुदफुदाती चिड़ियों को आँखें भर देखने की लालसा के पीछे गाँववालों की यही मानसिकता थी। सविता के हाथों में अचानक रमीला दादी की चिड़िया को देख, कथावाचक के दिल में खुशी की जगह तनाव और अवसाद भर आने का कारण भी इसी मानसिकता है।

वास्तव में गरीबी मनुष्य को भीरू और शक्तिहीन बना देता है। गरीबी गाँवों का मुहर है। गरीबी असहाय जनों की सृष्टि करती है। मन को दुर्बल बना देती है। इस असहायता और दुर्बलता को पार करने के लिए उन्होंने

भगवान पर शरण पा ली। ज़िंदगी का दुख-दर्द, देव-देवताओं का कोप माननेवाले इनके पास, इन सबका निवारण हेतु एक ही मार्ग है, देव प्रीति—
 "एक ओर बकरे को काट कर देवी को चढाते थे, दूसरी ओर चींटी को सत्तू बाँटा करते थे।"¹ एक लड़के के हाथ से एक नन्ही चिडिया का मर जाना, ऐसी हालत में बड़ा पाप बन जायेगा। अतः चिडिया हाथ आने पर भी उसे खुशी नहीं हुई।

मार्कण्डेय जी ने बहुत गहराई से अपने गाँववासियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है—"सच भी यही है, ये लोग भीतर से बहुत कम सोचते हैं। जानने के लिए, मन की क्रिया वाली सारी गति बचपन से एक जगह खड़ी-खड़ी ठप हो जाती है। जितना सुना, उतना ही जानना और उस पर आचरण करना इन्हें मालूम है। जो कुछ पीछे होता रहा है, वही इनके लिए मुख्य हैं, जो होना चाहिए वह नहीं, और क्यों का इस्तेमाल तो ये बहुत कम करते हैं। इसलिए जो इनका काम है, वह भी इनका नहीं है, इनके पूर्वजों का था। हल वही चलाते थे जो इनके दादा ने चलाया था। खुरपी का नाम वही रखते थे और उसी के लिए बहस भी करते थे। काम ये काम के लिए करते थे। जहाँ सोते, वहीं थूकते और वहीं चिलम पीकर राख गिरा देते। ऐसा नहीं कि ये सुस्त थे, बल्कि यह कि ये जीवन के बारे में सोच ही नहीं पाते थे।"²

1. मार्कण्डेय- सहज और शुभ—मार्कण्डेय की कहानियाँ—2002-पृ.435-436

2. वही-पृ.437

शिवप्रसाद सिंह ने "कर्मनाशा की हार" नामक अपनी कहानी में गाँव भर में प्रचलित एक अन्धविश्वास और उस अन्धविश्वास को तोड़ने की एक गाँवार की कोशिश को चित्रित किया है। कर्मनाशा नदी के बारे में लोगों में ऐसा एक विश्वास प्रचलित था कि यदि उसमें बाढ़ आये तो बिना मनुष्य बलि लिये लौटती नहीं। यह अंधविश्वास युगों से उनके मन में जम गयी है। अब की बार जब बाढ़ आयी तो गाँव के मुखिया विधवा फुलमत को बलि देने का निर्णय लेता है, क्योंकि उसने एक बच्चे को जन्म दिया है। असल में फुलमत पांडे का छोटा भाई कुलदीप से गर्भवती हो जाती है। पर कायर होने से वह उसको छोड़कर चला जाता है। गाँव के मुखिया के विरुद्ध आवाज़ उठाने का धैर्य किसी में नहीं होता। अपने छोटे भाई के प्रति क्रुद्धित होने के बावजूद, भौरों पांडे का विद्रोह एक बच्चा तथा उसकी माँ की ज़िंदगी की रक्षा-कवच बन जाता है। मात्र यही नहीं, प्रचलित एक विश्वास के खोखलेपन को व्यक्त करने में भी यह घटना सहायक निकली। गाँव में सम्मानित भौरों पांडे का निर्णय ही इसका सहायक बनता है—"तुम्हारी क्या राय है भौरों पांडे!" मुखिया बोला, "सारे गाँव ने फैसला कर दिया—एक के पाप के लिए सारे गाँव को मौत के मूँह में नहीं झाँक सकते। जिसने पाप किया है उसका दंड भी वही भोगे.....।"

एक बीभत्स सन्नाटा। पांडे ने आकाश की ओर देखा, आगे बढ़े, फुलमत भय से चिल्ला उठी। पांडे ने बच्चे को उसकी गोद से छीन लिया। "मेरी राय पूछते हो मुखिया जी? तो सुनो, कर्मनाश की बाढ़ दुध मूँहे बच्चे और एक अबला की बलि देने से नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर

बाँधों को ठीक करना होगा.....कुलदीप कायर हो सकता है, वह अपने बहु-बच्चे को छोड़कर भाग सकता है, किंतु मैं कायर नहीं हूँ, मेरे जीते जी बच्चे और उसकी माँ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता....।" उसकी बातों ने सारे गाँववासियों को लीक से हटकर सोचने की प्रेरणा दी। शिवप्रसाद सिंह जी की प्रगतिवादी चेतना यहाँ प्रस्फुटित हुई है।

अंधविश्वास का प्रभाव केवल गाँव में ही नहीं, अपितु पूरा भारत देश इसके चंगुल में फँस गया है। पश्चिमी देशों के बीच भारत "अंधविश्वासों का देश" माना जाता है। जादू-टोना, मंत्र-तंत्र से लेकर बलि चढ़ाने— पशु बलि से लेकर नर बलि— तक के कर्म धार्मिक अनुष्ठान माने जाते थे। व्यक्ति के साथ साथ समाज के विकास की गति में रुकावट देती हुई, सदियों, इसने तांडव नृत्य रचा। अशिक्षा और कट्टर धार्मिक विश्वास ने इसे गाँववासियों की रोज़ाना ज़िंदगी के भाग बना दिया। नदियों को देवी मानने की संकल्पना भारतीय संस्कृति का ही हिस्सा है। उसमें बाढ़ आना या उसका सूखा हो जाना देवी-कोप माना जाता था। मनुष्य द्वारा किये जानेवाला पाप इसका कारण माना जाता है। फिर इसका प्रायश्चित भी किया जाता है, वह कभी कभी पूजा-कर्म के द्वारा हो जाता है या कभी कभी पशु या नर बलि द्वारा। कर्मनाशा में बाढ़ आयी है। गाँववासी इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि यह एक विधवा के गर्भवती हो जाने के पाप से हुआ है। इसका समाधान भी वे ढूँढ निकालते हैं कि जिसने पाप किया है उसे दंड भी भोगना पड़ेगा। फुलमत और उसके बच्चे

1. शिवप्रसाद सिंह-कर्मनाशा की हार-अन्धकूप (क.सं.)-1985-पृ.73

को नदी में फेंक देने के इरादा के पीछे यही मानसिकता है। भैरों पांडे का विद्रोह इस मानसिकता के प्रति है। वह गाँववासियों को ललकारता है- "किंतु मैं एक-एक के पाप गिनाने लगूँ तो यहाँ खड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा.....है कोई तैयार जाने को....."¹

ग्रामीण लोगों पर अब भी वर्चस्वी वर्गों का शोषण चल रहा है। सरकारी अफसर हो या राजनैतिक नेता, या गाँव के मुखिया ही हो, अज्ञान और अशिक्षित ग्रामीण जनता उनके शोषणों के शिकार हो जाते हैं। उचित शिक्षा के अभाव के कारण वे कायर दीख पड़ते हैं। शोषणों के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस उनमें नहीं है। ग्रामीण ज़िंदगी में सदियों से प्रचलित अंधविश्वास के पीछे भी ताकतवर लोगों की स्वार्थ-लिप्सा या नीचता काम करती है। अज्ञान बहुसंख्यकों को उनकी बात माननी पड़ती है।

ज़िंदगी की विडंबनाओं से भरी हुई कहानियों के बावजूद ग्रामीण जनता की आत्म-संवेदनाओं को भी स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने अपनी कहानियों में उजागर किया है। ये संवेदनायें ग्रामीण संस्कृतियों का मूल हैं। चाहे उन्हें अंधविश्वास कहे या रूढ़ि, इनके बिना ग्रामीण ज़िंदगी अधूरी रहेगी। ज़िंदगी के हर क्षेत्र में इस लोक-संस्कृति का गहरा प्रभाव है। लेखक का सामाजिक-बोध अनुभव के धरातल पर हुआ है। अनुभव से उद्भूत इस संवेदना ने जब कला का रूप पहन लिया तो वह आस्वादकों के लिए अनुभूति

1. शिवप्रसाद सिंह-कर्मनाशा की हार-अन्धकूप(क.सं.)-1985-पृ.75

की सुन्दरता बन गयी। मार्क्स के मत में "कलात्मक सृजन यथार्थ को प्रतिबिंबित करने, उसे अनुभव करने तथा पहचानने का एक साधन भी है। यह एक ऐसा शक्तिशाली प्रकाश-स्तंभ है जिससे मानव-जाति के आत्मिक-प्रभाव पर प्रकाश डाला जा सकता है।"¹ ग्रामीण कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन हमें तत्कालीन भारतीय ग्रामीण यथार्थ से जोड़ता है।

ग्रामीण कहानियों के समाजशास्त्र पर विचार करते समय दो बातें अक्सर स्पष्ट होती हैं। एक, ग्रामीण जीवन की अहमियत जो कि लोक विन्यास के रूप में बहिरंगता लक्षित होती है, पर अंतरंगतः वह ग्रामीण यथार्थ का अंतरंग पक्ष ही है। दो, बदलते ग्रामीण जीवन के चित्र। इसमें शोषण के विरोध में खड़े होनेवाले लोगों का यथार्थ है और अपने स्वत्व बोध से जागृत लघु मानव का यथार्थ है। ग्रामीण सामाजिकता का समाजशास्त्र सामान्य सा प्रतीत हो सकता है, लेकिन भीतर ही भीतर वह उद्वेलन से भरे यथार्थ का स्थित्यंकन है।



1. मधुर उप्रेती-कला पर मार्क्स की नज़रें-वर्तमान साहित्य-जून 2008

उपसंहार

उपसंहार

अपने आरंभ काल से कहानी की सामाजिकता स्वीकृत रही है। भारतीय मौखिक परंपरा में कथा का जो आदान-प्रदान रहा है वह प्रमुख मात्रा में प्रचलन में रहा। उस परंपरा में कथा कथन की नैतिकता प्राकारान्तर से सामाजिकता का प्रतिफलन है। बाल-कथाओं से लेकर वयस्क लोगों के लिए लिखी गयी समस्त कथाओं में नैतिकता से ओत-प्रोत सामाजिकता देखने को मिलती है। इस तरह पुरानी कथाओं में से दो बातें मिलती हैं- एक जो सही है, दो, सही नहीं है। सही में समाज का स्वस्थ रूप और सही नहीं में समाज का विसंगत रूप रहा है। अन्ततः सामाजिक गतिविधियों की अन्दरूनी समाजशास्त्रीय बारीकियाँ पुरानी कथा परंपरा में किसी न किसी मात्रा में मिलती है।

आज की जो कहानी है वह अपने रूपाकार में पश्चिमि कहानियों से अवश्य प्रभावित है या यों कहना चाहिए पश्चिम के प्रभाव से ही भारतीय भाषाओं में कहानी का आरंभ हुआ है। हिंदी की स्थिति इससे भिन्न नहीं है। अतः प्रेमचंद से कहानी की जो स्वस्थ परंपरा शुरू होती है वह आकार-सौष्ठव में पश्चिमि तो है, लेकिन वस्तु-चयन में तथा संवेदनात्मक संभावनाओं में भारतीय है। स्थानीयता से लेकर बृहत्तर परिदृश्य तक वह भारतीय ही है। इस तरह पश्चिमी तथा भारतीय समन्वय से आधुनिक कहानी का आरंभ माना जा

सकता है जिसमें भारतीय समाज अपने कई रूपों में विन्यसित तथा विश्लेषित है। यह सही है। कहानी का मूल उद्देश्य समाज का विश्लेषण न हो, फिर भी कहानी में व्यक्ति, व्यक्ति-मन, व्यक्ति तथा समाज का परस्पर संबंध, सामाजिक गतिविधियाँ, उसके सांस्कृतिक पक्ष तथा राजनीति की निगूढ़ स्थितियाँ कहानी में अलग-अलग मात्राओं में विश्लेषित होने के लिए बाध्य है।

जैसे कहा गया है हिंदी में जो "नई कहानी" है, उसके लिए ही "आधुनिक कहानी" के शब्द का प्रयोग हुआ है। "नई कहानी" और "आधुनिक कहानी" का शब्दार्थ एक ही है। लेकिन नयेपन के प्रति जो जोर कहानी के साथ लगता तो है, सवाल यह है कि "नया" क्या है। यह "नया" शब्द हमारे नये समाज की त्वरित स्थितियों से सम्बन्धित है। भारत आज़ाद हुआ। नये नये परिवर्तन आने लगे। समाज का अंतरंग स्वभाव न बदलने के बावजूद, उसका बाह्य रूप काफी कुछ बदल गया। वह नया होता जा रहा था। नयी नयी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही थीं। प्रेमचंद ने जो समाज अपनी कहानियों में सृजित किया था उससे भिन्न समाज आधुनिक कहानी में मिलता है। अतः यह कहना ज़रूरी है कि आधुनिक कहानी ने नये समाज के नये जीवन की नब्ज़ को पकड़ने का कार्य ही किया है। पुराने समाज की निरंतरता तो आधुनिक कहानी में मिलता है। मगर नयी मानसिकता जो नये समाज की उपज थी, आधुनिक कहानी के केंद्र में थी। वस्तुतः यह नयापन सरसरी दृष्टि से देखने योग्य कोई मामूली विषय नहीं है। इसका अपना समाजशास्त्र है जो बाह्यतः सरल दीखते हुए भी अंतरंगतः अतिगंभीर है। इसको नज़रअंदाज़

करने का तात्पर्य यह है कि हम अपने को तथा अपने बृहत्तर समाज को अनदेखा कर रहा है। यह कतई संभव नहीं है। आधुनिक हिंदी कहानी कहानी-कला की सौन्दर्यात्मकता पर पूरा ज़ोर देने के साथ साथ समाज के समाजशास्त्र पर भी आधुनिक कहानी ने वांचित ज़ोर दिया। इसलिए आधुनिक कहानी के ये दो पक्ष हैं, हमेशा विचारणीय होते हैं।

आधुनिक कहानी का पूर्वकाल शुष्क नहीं है। वह सौ फीसदी ऊर्वर रहा है। इसका श्रेय प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, यशपाल, अज्ञेय सरीखे कहानीकारों को जाता है। इनके द्वारा तैयार की गयी ऊर्वर भूमि आधुनिक कहानी के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। प्रेमचंद की हल्की सी लगनेवाली "पूस की रात" अपने समाजशास्त्रीय संदर्भ में इतना बृहत्तर है कि हमारा पूरा सामंतीय ढाँचा सामने खुलता है। इस कहानी का सही पाठ तभी संभव है जब हम भारतीय कृषि संस्कृति का अध्ययन करेंगे। यह कहानी सिर्फ पूस की सर्दी की कहानी नहीं है और एक किसान की मामूली मज़बूरी की कहानी भी नहीं है। इस तरह पूर्वकाल की रचनाओं ने समाज की परत को बारी बारी से देखने-पहचानने का कार्य किया है। यहीं से आधुनिक कहानी अपने लिए हवा-पानी ले रही है।

आधुनिक कहानी अपनी नयी सामाजिकता में तथा नये व्यक्तीपन के प्रकरण में बहुलार्थी है। यह कहना अधिक उचित होगा कि आधुनिक कहानी एक नहीं, अनेक प्रवृत्तियों का निरंतर आकलन करना चाहती है। वह महानगरीय सच्चाई को सामने लाती है तो ग्रामीण कथा को भी। राजनीति की गंभीर स्थितियों को सामने लानेवाली आधुनिक हिंदी कहानी कभी कभी व्यक्ति

के अन्तर्मन में गोता लगाती है। आधुनिक कहानी ने दरअसल, व्यक्ति के सच को भी अनदेखा नहीं किया है। उसका भी एक समाजशास्त्र है। वह कभी कभार दार्शनिकता से भी प्रभावित है तो अधिकतर प्रकरणों में व्यक्ति की स्वतंत्रता की गुंजाइश पर बल देती है। आधुनिक समाज के व्यक्ति-संपर्क पर नये नये अणु परिवारों के संबंध-विघटन पर सैकड़ों कहानियाँ हमें मिली हैं। अर्थात् आधुनिक हिंदी कहानी का अंतरंग संसार बहुरंगी और वैविध्यमय रहा है।

आधुनिक समाज ने ही मध्यवर्ग को जन्म दिया है। मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के बीच में आधुनिक समाज ने इस वर्ग को स्थान दिया। शिक्षा में, चित्त में, दृष्टिकोण में, संवेदना में यह वर्ग उच्च वर्ग और निम्न वर्ग से भिन्न है। एक तरफ इस वर्ग में अनगिनत संभावनायें दिखाई देती हैं। इसकेलिए हमारे समाज में अनेक साक्ष्य मिलते हैं। दूसरी तरफ इस वर्ग में ऐसी कमज़ोरियाँ भी दिखायी देती हैं जिनका भी साक्ष्य भरपूर मात्रा में मिलता है। एक तरफ से मध्यवर्ग हमारे समाज का विधाग्रस्त वर्ग है। वह विभाजित मनवाला वर्ग है। वह गतिशील वर्ग है। वह संगठित वर्ग भी है। आधुनिक हिंदी कहानी ने दरअसल, इस वर्ग के सच को अपने केंद्र में रखा है। कमलेश्वर से लेकर मुक्तिबोध तक, अमरकांत से लेकर कृष्ण बलदेव तक, मन्नू भंडारी से लेकर उषा प्रियंवदा तक के कहानीकारों ने इस वर्ग को महत्व दिया है। अतः आधुनिक हिंदी कहानी में मध्यवर्गीय समाजशास्त्र का पूरा मानचित्र हमें प्राप्त होता है। वस्तुतः यह वर्ग विशेष की सच्चाइयाँ नहीं है या कहानी के लिए चयनित इक्के-दुक्के पात्रों की कथायें मात्र नहीं है, बल्कि इन सबके बहाने

हमारा समाज बुलंद दीख रहा है। आधुनिक हिंदी कहानी की सबसे बड़ी देन यह है कि उसने मध्यवर्ग की असंख्य परतों को समाजशास्त्रीय प्रकरण में समझने का प्रयास किया है।

राजनीति से मुक्त कोई समाज नहीं है और सही अर्थों में कोई भी राजनीतिक नहीं है। स्वातंत्र्योत्तर समाज में हमारी व्यावहारिक राजनीति ने अपना सत्ता-लोलुप, विघटनवादी तथा आत्मकेंद्रित स्वभाव को प्रदर्शित करने का कार्य शुरू किया। दरअसल, व्यावहारिक राजनीति कहानी का विषय नहीं है। लेकिन जब व्यावहारिक राजनीति अपने अस्पृहणीय विधि-विधानों के कारण सामान्य जीवन पर असर करने लगती है और उसे अन्दर ही अन्दर झुलसने के लिए बाध्य करती है। उसकी सूक्ष्म संवेदनाओं को सदा के लिए अवरुद्ध कर देती है तो आधुनिक कहानी के सामने यह मज़बूरी सी हो जाती है कि वह व्यावहारिक राजनीतिक विसंगतियों को विषय के रूप में स्वीकार करें। प्रकारांतर से सभी कहानीकारों ने राजनीतिक सी कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। इसका कारण भी उपरोक्त सूचित है। मनुष्य-मात्र को अपने स्व में परिकल्पित करके उसे अपने गतिशील रास्ते में ले चलने की इच्छा रखनेवाली आधुनिक हिंदी कहानी अंततः राजनीतिक ही हो सकती है। लेकिन आधुनिक हिंदी कहानी इन राजनीतिक विसंगतियों को "ग्लोरिफाई" नहीं करती है। इसलिए बहुत सी कहानियाँ हल्की-फुल्की और व्यंग्यात्मक प्रतीत होती हैं। चाहे वह "'बस्ती" (अमरकांत) हो, या "जार्ज पंचम की नाक" (कमलेस्वर) हो या "परमात्मा का कुत्ता" (मोहन राकेश) हो। राजनीति के इस बृहत्तर पक्ष को समाजशास्त्रीय विश्लेषण का तथ्य बनाया गया है।

हिंदी-पट्टी प्रदेश इतना विशाल है और अब भी कई प्रदेश अविकसित एवं पिछड़े हैं। तब पचासोत्तर-साठोत्तर कहानियों में गाँवों और अंचलों का उभर आना सहज था। आधुनिक हिंदी कहानी में इसके लिए एक नया शब्द भी चल पड़ा है और वह है आंचलिकता। उसके समाजशास्त्रीय पक्ष पर विचार करते समय ग्रामीण यथार्थ ही मुख्य हो जाता है। बदलते गाँव या बदलते ग्रामीण लोग, बदलती ग्राम्य दृष्टियाँ आदि इन कहानियों में दर्ज हैं। एक तरफ से आधुनिक हिंदी कहानी ने अपनी लोक-संवेदना को पहचाना है। लोक के बिना कोई भी साहित्य टिक नहीं सकता है। ग्रामीण कहानियों को लोक के पक्ष में रखकर ही समस्त ग्रामीण कहानीकारों ने कहानियाँ रची हैं।

समाजशास्त्रीय अध्ययन किसी भी विधा के लिए आरोपित स्थिति नहीं है। समाजशास्त्र भले ही साहित्य से अलग और भिन्न अनुशासन है। फिर भी समाजशास्त्रीय दृष्टि की अनिवार्यता इसलिए है कि कहानी की तह तक जाने के लिए तथा उसकी कलात्मकता को उसके बृहत्तर परिवेश में आंकने के लिए अनिवार्य है। यह भी एक तथ्य है कि कोई भी अनुशासन अपने में पूर्ण नहीं है। अतः समाजशास्त्रीय अध्ययन को कहानी के संदर्भ में अन्तर-अनुशासन-परक प्रकरण में ही लिया गया है। व्यक्ति केंद्रित कहानी से लेकर व्यापक समाजकेंद्रित कहानी भी इसके अन्तर्गत विचारणीय हो सकती है। इस तरह कहानी मात्र के आभ्यंतर को समुचित सांगोपांग तथा प्रासंगिक विश्लेषण के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन सिद्ध हो जाता है।



संदर्भ ग्रन्थ

1. आज की राजनीति और भ्रष्टाचार
नरेंद्र मोहन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. - 1997
2. आधुनिक हिंदी कहानी
गंगा प्रसाद विमल
ग्रन्थलोक, दिल्ली
प्र.सं. - 2002
3. आधारशिला
डॉ. ए. अरविंदाक्षन
कुंज बिहारी पचौरी, मथुरा
प्र.सं. - 2001
4. आलोचना की सामाजिकता
मैनेजर पाण्डेय
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 2005
5. एक साहित्यिक की डायरी
गजानन माधव मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1996

6. कथाभारती
डॉ. त्रिलोकी नाथ
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 2002
7. कहानी: नई कहानी
नामवरसिंह
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1994
8. कहानी: स्वरूप और संवेदना
राजेन्द्र यादव
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1977
9. कहानी की समाजशास्त्रीय समीक्षा
रमेश उपाध्याय
नमन प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1999
10. कहानी-कला, विकास और इतिहास
डॉ. श्रीपती शर्मा त्रिपाठी
नंद किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी
प्र.सं. - 1962
11. कहानियों का अस्तित्ववादी संदर्भ
पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1995
12. गद्य विहार
डॉ.सरोज सिन्हा
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 2006

13. छठे दशक की कहानी में राजनैतिक मूल्य
डॉ. अरुणा गुप्ता
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. - 1989
14. जातीय संदर्भ और प्रेमचंद
डॉ. अरुण कुमार मिश्र
राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर
प्र.सं. - 1997
15. जार्ज पंचम की नाक
कमलेश्वर
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. - 1998
16. द स्टडी ऑफ इंडियन सोसाइटी
हान्स नागपॉल
एस. चन्द एण्ड कंपनी, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1972
17. नयी कहानी - प्रतिनिधि हस्ताक्षर
डॉ. वदेप्रकाश अमिताभ, डॉ. रंजना शर्मा
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्र.सं. - 1988
18. नयी कहानी की भूमिका
कमलेश्वर
शब्दाकार, दिल्ली
प्र.सं. - 1978
19. नयी कहानी: संदर्भ और प्रकृति
देवी शंकर अवस्थी
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्र.सं. - 1973

20. नयी कहानी: पुनर्विचार
मधुरेश
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
प्र.सं. - 1999
21. प्रेमचंद: कहानी का रफनुमा
जाफर रज़ा
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 2005
22. प्रेमचंद-परिचर्चा
कल्याणमल लोढा और रामनाथ तिवारी
लोकभारती प्रेस, इलाहाबाद,
प्रेमचंद शताब्दी - 1979-80
23. प्रेमचंद: विविध प्रसंग
अमृतराय
खण्ड-दो
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1919
24. प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन
शंभूनाथ
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1988
25. प्रेमचंद: साहित्य और संवेदना
पी.वी. विजयन
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्र.सं. - 2005

26. भारतीय समाज और अपराध
श्रीकृष्ण शर्मा
नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. - 2003
27. मुक्तिबोध की आत्मकथा
विष्णुचंद्र शर्मा
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्र.सं. - 1984
28. मुक्तिबोध रचनावली: चार
नेमीचंद्र जैन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1980
29. मुक्तिबोध रचनावली: पाँच
नेमीचंद्र जैन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1980
30. यशपाल: रचनात्मक पुनर्वास की एक कोशिश
मधुरेश
आधार प्रकाशन, हरियाणा
प्र.सं. - 2006
31. राइटर एण्ड क्रिटिक
जार्ज लूकाच
मर्लिन प्रेस, लंदन
प्र.सं. - 1970
32. रूरल सोशियोलजी इन इंडिया
ए. आर. देशाई
पोपुलर प्रकाशन, मुंबई
प्र.सं. - 1969

33. सतह से उठता आदमी
मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1971
34. सार्थक कहानियाँ
दूधनाथ सिंह
सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1987
35. साहित्य, समाज और जनतंत्र
प्रफुल्ल कोलख्यान
आनंद प्रकाशन, कोलकत्ता
प्र.सं. - 2003
36. सोशियोलजी
विद्याभूषण और डी. आर. सचदेव
किताब महल, अलाहाबाद
प्र.सं. - 2005
37. सोशियोलजी ऑफ इंडियन लिटरेचर इन डैवेर्सिटीस
डी.पी. मुखर्जी
प्यूपिल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1958
38. सोशियोलजी- बेसिक कन्सेप्टेस
एच. के. रावत
रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
प्र.सं. - 2007
39. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में ग्राम्य जीवन और संस्कृति
डॉ. राजेंद्र कुमार
पार्थ प्रकाशन, अहमदाबाद
प्र.सं. - 1988

40. हिंदी कहानी का विकास
मधुरेश
सुमित प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1996
41. हिंदी कहानी परंपरा और प्रगति
डॉ. हरदयाल
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 2005
42. हिंदी कहानी अंतरंग पहचान
रामदरश मिश्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
प्र.सं. - 1977
43. हिंदी कहानी: अपनी ज़बानी
इंद्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. - 1968
44. हिंदी उपन्यास-सामाजिक चेतना
कुँवरपाल सिंह
पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं.- 1976
45. हिंदी उपन्यासों में राजनैतिक चित्रण
डॉ. सुकुमार भंडारे
विकास प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. - 2007

पत्रिकायें

1. आजकल
फरवरी - 1980
2. नया खून
जनवरी - 1956
3. युवा
अक्टूबर - 1974
4. वाङ्मय
जनवरी-मार्च - 2008
5. वर्तमान साहित्य
जून - 2008
6. संचेतना
जुलाई-सितंबर - 1975
7. सारिका
मार्च - 1971
8. सारिका
सितंबर - 1971
9. सारिका
सितंबर - 1981
10. हंस
जनवरी - 2004

मूल कृतियाँ

1. अकेला मकान
रामदरश मिश्र
नमन प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1999
2. अकेली
राजेंद्र यादव
लाइब्ररी संस्करण
3. अज्ञेय की संपूर्ण कहानियाँ
अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. - 1975
4. अन्धकूप (संपूर्ण कहानियाँ) भाग - 1
शिवप्रसाद सिंह
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1985
5. अशक की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ
उपेंद्रनाथ अशक
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1960
6. आठ अच्छी कहानियाँ
मार्कण्डेय
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1991

7. आन्द्रे की प्रेमिका तथा अन्य कहानियाँ
गिरिराज किशोर
किताबघर, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1995
8. इक्यावन श्रेष्ठ कहानियाँ
मुंशी प्रेमचंद
दिनमान प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. - 1987
9. इंसान पैदा हुआ
रांगेय राघव
किताब महल, अलाहाबाद
लाइब्रेरी संस्करण
10. एक अमूर्त तकलीफ
रमेश बक्षी
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1972
11. एक और ज़िंदगी
मोहन राकेश
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. - 1961
12. एक धनी व्यक्ति का बयान
अमरकांत
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. , नई दिल्ली
प्र.सं. - 1997
13. कथा धारा
मार्कण्डेय
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1999

14. कस्बे का आदमी
कमलेश्वर
शब्दकार, दिल्ली
दू.सं. - 1982
15. कहानी विविधा
देवीशंकर अवस्थी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. - 1963
16. काठ का सपना
मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता
प्र.सं. - 1967
17. कोहरा
कमलेश्वर
राजपाल एण्ड सन्स. दिल्ली
प्र.सं. - 1994
18. जीत में हार
विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
प्र.सं. - 1959
19. जैसे उनके दिन फिरे
हरिशंकर परसाई
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता
ती.सं. - 1969
20. चुनी हुई कहानियाँ
मार्कण्डेय
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1989

21. टूटना
राजेंद्र यादव
अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. , दिल्ली
प्र.सं. - 1966
22. ठुमरी
फणीश्वरनाथ रेणु
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1959
23. ढोल और अपने पार
राजेंद्र यादव
अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. ,नयी दिल्ली
प्र.सं. - 1968
24. तीर्थयात्रा
सुदर्शन
सुदर्शन वोरा एण्ड कंपनी, बंबई
प्र.सं. - 1961
25. नायक, खलनायक, विदूषक
मन्नू भंडारी
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. - 2002
26. पचास कहानियाँ
प्रेमचंद
सरस्वती प्रेस, इलहाबाद
प्र.सं. - 1963
27. पहचान
मोहन राकेश
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
द्वि.सं. - 1974

28. प्रतिनिधि कहानियाँ
अमरकांत
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. ,नई दिल्ली
प्र.सं. - 1984
29. प्रतिनिधि कहानियाँ
यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ
प्र.सं. 1962
30. प्रसाद की संपूर्ण कहानियाँ
जयशंकर प्रसाद
भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. - 1988
31. प्रासंगिक कहानियाँ
मार्कण्डेय
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 2004
32. पिंजरे की उड़ान
यशपाल
विप्लव कार्यालय
लखनऊ
प्र.सं. - 1963
33. बादलों के घेरे
कृष्णा सोबती
राजकमल प्रकाशन प्र.लि., नई दिल्ली
प्र.सं. - 1980

34. भेडिये
शिवप्रसाद सिंह
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1977
35. मार्कण्डेय की कहानियाँ
मार्कण्डेय
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 2002
36. मेरी प्रिय कहानियाँ
कमलेश्वर
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. - 2004
37. मेरी प्रिय कहानियाँ
भीष्म साहनी
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. - 2004
38. मेरी प्रिय कहानियाँ
मन्नू भंडारी
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. - 1977
39. मेरी प्रिय कहानियाँ
मोहन राकेश
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
ती.सं. - 1976
40. मेरी प्रिय कहानियाँ
राजेंद्र यादव
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
ती.सं. - 1976

41. मेरी प्रिय कहानियाँ
रामदरश मिश्र
साहित्य सहकार, दिल्ली
प्र.सं. - 199049
42. यही सच है
मन्नू भंडारी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1966
43. सदाचार का तावीज़
हरिशंकर परसाई
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता
प्र.सं. - 1967
44. संपूर्ण कहानियाँ (भाग 1)
यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ
प्र.सं. - 2002
45. साथ के लोग
शेखर जोशी
संभावना प्रकाशन, हापुडा
द्वि.सं. - 1981
46. सार्थक कहानियाँ
दूधनाथ सिंह
सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. - 1987
47. सुदर्शन की श्रेष्ठ कहानियाँ
सुदर्शन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्र.सं. - 1977

48. सुदर्शन सुमन
सुदर्शन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
द्वि.सं. - 1961
49. हिंदी कहानी संग्रह
भीष्म साहनी
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
प्र.सं. - 1988
50. हिंदी गद्य मंजूषा
डॉ.भारतभूषण
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली
प्र.सं. - 1998

